मरू कृषि चयनिका

मृदा विशेषांक

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
आई.एस.ओ. 9001 : 2008
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर 342 003, राजस्थान

शीत शुष्क क्षेत्र हेतु लेह, लद्दाख (जम्मू-कश्मीर) में क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, काजरी का शिलान्यास

कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापना दिवस और किसान मेला काजरी क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भुज

मरु कृषि चयनिका

मृदा विशेषांक

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर - 342 003, राजस्थान, भारत

भाग 14–15 : मृदा विशेषांक

(2012-2013)

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. एम.एम. रॉय

निदेशक

संपादक

श्रीमती मधुबाला चारण

सहायक निदेशक (राजभाषा)

संपादक मंडल

डॉ. एम.एम. रॉय	:	निदेशक
डॉ. आर.के. कौल	:	प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. महेश कुमार	:	वरिष्ठ वैज्ञानिक
श्रीमती मधुबाला चारण	:	सम्पादक एवं सहायक निदेशक (राजभाषा)
डी.टी.पी.	:	रूपाराम चौहान
फोटोग्राफी	:	विजेन्द्र कुमार, देवाराम
मुद्रक	:	एवरग्रीन प्रिण्टर्स, जोधपुर

मरुस्थल का कायाकल्प
काजरी का है संकल्प

प्रकाशन वर्ष : सितम्बर, 2014

लेखकों के विचारों से संपादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सत्यमेव जयते

डा. एस. अय्यपन
सचिव एवं महानिदेशक
Dr. S. AYYAPPAN
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE, KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel.: 23382629; 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

संदेश

राजस्थान एक रेगिस्तानी प्रदेश है जहॉ तीव्र वायु वेग से होने वाले कटाव से बहुत सी समस्याएँ आती है। के.शु.क्षे.अ.सं., जोधपुर इस क्षेत्र के किसानों हेतु बहुत उपयोगी शोध कर उन्हें समय समय पर किसानों तक पहुँचा रही है इसी कड़ी में केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान सन् 1997 से किसानों एवं कृषि से जुड़े शोधार्थियों एवं प्रसार कर्त्ताओं हेतु उपयोगी मरू कृषि चयनिका पत्रिका का प्रकाशन कर रहा है। पत्रिका का यह विशेषांक 'मृदा' विशेषांक निकाला जा रहा है।

मृदा पंचभूत तत्वों पृथ्वी, मिट्टी, जल, वायु, आकाश, में से एक सर्वाधिक प्रमुख तत्व है। विभिन्न मानवीय एवं प्राकृतिक–गतिविधियों के कारण मृदा में अवह्रास होता है। मृदा के विभिन्न सूक्ष्म पौषक तत्वों, मृदा की बनावट, मृदा के प्रकार, विभिन्न उपयोगी पद्धतियों से युक्तियुक्त प्रयोग, उसके अपक्षय व अपरदन के कारण व निवारण आदि विभिन्न जानकारी कृषि एवं संबंधित कर्मियों को होनी परम आवश्यक है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि इतने उपयोगी विषय पर विभिन्न विषय विशेषज्ञों की जानकारी सरल हिन्दी भाषा में मरू कृषि चयनिका पत्रिका द्वारा किसानों तक पहुँचाई जा रही है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह अंक किसानों एवं अन्य प्रसार कर्ताओं हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध होगा एवं पत्रिका इसी प्रकार किसानों व वैज्ञानिकों के बीच कड़ी का कार्य करती रहेगी।

पत्रिका के मृदा विशेषांक के लिए मैं संस्थान निदेशक एवं सम्पादक मण्डल को बधाई देता हूँ तथा इस पत्रिका की सफलता की शुभकामना करता हूँ।

एस. अय्यपन

(एस. अयप्पन)

हार्दिक स्वागत

डॉ. ए.के. सिक्का
उप महानिदेशक (एन.आर.एम.)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

डॉ. ए.के. सिक्का ने फरवरी 5, 2013 को उप–महानिदेशक, एन.आर.एम., भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। डॉ. सिक्का का जन्म फरवरी 21, 1956 को इलाहबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आपने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा एस.के. इन्टर कॉलेज, इलाहबाद से 1972 में ली तथा 1978 में एमटेक की डिग्री, भारतीय तकनीकी संस्थान खड़गपुर से तथा पी.एच.डी. जल विज्ञान में उटाह राज्य युनिवर्सिटी, लोगान, यू.एस.ए. से प्राप्त की। उप–महानिदेशक का कार्यभार ग्रहण करने से पूर्व आपने विभिन्न पदों पर कार्य किया है जिनमें प्रमुख हैः– वैज्ञानिक सी./प्रभारी वैज्ञानिक सूखा संभाग राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रूड़की; अध्यक्ष, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, सी.एस.डब्ल्यू.सी.आर. एवं टी.आई. उड़कमंडलम नीलगिरी; निदेशक भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान रीसर्च कॉम्पलेक्स पूर्वी क्षेत्र हेतु पटना; समन्वयक इंडो–गंगा बेसिन; सी.जी.आई.ए.आर. जल एवं खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम हेतु तकनीकी विशेषज्ञ (जल विकास अतिरिक्त सचिव भारत सरकार की पद में) राष्ट्रीय शुष्क क्षेत्र विकास प्राधिकरण, योजना आयोग भारत सरकार, नई दिल्ली। डॉ. सिक्का को अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया है जिसमें प्रमुख है :– मेरिट सर्टिफिकेट 1989–90; हेम प्रभा – एस.एन. गुप्ता मेडल 2000 (इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियर्स, भारत की ओर से); वसन्त राव नायक एवार्ड 2000; भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् टीम रिसर्च एवार्ड 2001–02; डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार 2005–06 । मरू कृषि चयनिका परिवार डॉ. ए.के. सिक्का का स्वागत करता है और सफलता की हार्दिक शुभकामना करता है।

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
जोधपुर 342 003 (राजस्थान), भारत
CENTRAL ARID ZONE RESEARCH INSTITUTE
(Indian Council of Agricultural Research)
JODHPUR 342 003 (Rajasthan), India

डा. एम.एम. रॉय
निदेशक
Dr. M.M. Roy
Director

Off. +91-(0)291-2786584
Phone: Res. +91-(0)291-2788484
Fax +91-(0)291-2788706
E-mail: director@cazri.res.in
mmroyster@gmail.com

निदेशक की कलम से.....

भारत प्रचुर संसाधनों, विविध जलवायु और पारिस्थितिकीय क्षेत्रों से समृद्ध राष्ट्र है। विविधता एवं विशालता इसकी विशेषता है। राजस्थान शुष्क पारिस्थितिकी वाला रेगिस्तानी प्रदेश है। यह कम व अनियमित वर्षा, अधिकांशतः अकाल की स्थितियाँ, अधिकतम् उच्च व निम्न तापमान जन्य स्थितियाँ, खराब मृदा स्थितियाँ एवं अल्प संसाधनों के लिए जाना जाता है, फिर भी यहाँ के अद्भुत जीवट के धनी किसान ने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपने अनुभव जन्य ज्ञान व तकनीक से उच्चतम् उत्पादन प्राप्त कर अपनी आजीविका एवं पशुधन का पोषण किया है।

राजस्थान की विकट परिस्थितियों को देखते हुए काजरी की स्थापना सन् 1952 में मरू वनीकरण केन्द्र के रूप में हुई तथा तत्पश्चात् शुष्क पारिस्थितिकी के अध्ययन एवं शोध यथा वनीकरण, कृषि, पशुपालन, सौर ऊर्जा आदि की उपयोगी तकनीक के विकास द्वारा यहाँ के पारिस्थितिकी तंत्र एवं रहवासियों के जीवन स्तर को अधिक उन्नत करने हेतु 1959 में इसे पूर्ण अनुसंधान संस्थान का रूप दिया गया।

काजरी के पिछले पाँच दशक की अनुसंधान यात्रा में शुष्क पारिस्थितिकी पर प्राप्त शोध की उपलब्धियों को देखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा अब काजरी को ठण्डे रेगिस्तान की पारिस्थितिकी के अध्ययन व शोध द्वारा विकास की जिम्मेदारी दी गई तथा काजरी का शीत शुष्क क्षेत्र हेतु क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लेह लद्दाख (जम्मू–काश्मीर) में खोला गया। इसके भवन की नींव 18 अगस्त, 2013 को श्री रिगजिन स्पालदार, मुख्य अधिशासी सलाहकार, लद्दाख स्वायत पर्वतीय विकास परिषद् एवं डॉ. एस. अयप्पन महानिदेशक, परिषद् द्वारा रखी गई।

काजरी के अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप ही आज राजस्थान का रेगिस्तान विश्व का सर्वाधिक वैज्ञानिकतः अध्ययनित रेगिस्तान है। काजरी द्वारा सर्वेक्षण, मानचित्रण, मृदा विश्लेषण, मृदा सुधार के उपाय, रेगिस्तानीकरण, कारण व नियन्त्रण के उपाय, टीबा स्थरीकरण पर विशेष ध्यान व अध्ययन किया गया। मृदा से ही खेती–बाडी, पशुपालन, उद्योग आदि सभी जुड़े है। अतः किसी भी कार्य को शुरू करने से पूर्व उस जगह की मृदा की जानकारी होना आवश्यक होता है। इन्हीं सब को ध्यान में रखकर मरू कृषि चयनिका का यह अंक ''मृदा विशेषांक'' के रूप में निकाला जा रहा है। इस मृदा विशेषांक में विभिन्न विषय विशेषज्ञों के विविध संदर्भो पर लेख दिये गये है। मुझे पूरा विश्वास है कि पूर्व की भाँति यह अंक भी कृषक, कृषि अनुसंधानकर्ताओं, प्रसारकर्ताओं के साथ ही जन सामान्य हेतु भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

काजरी का प्रमुख लक्ष्य किसानों की सेवा है। खेती–बाडी से जुड़ी किसी भी समस्या हेतु आप काजरी में सम्पर्क कर सकते है। पत्रिका के संबंध में आपके सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी। आपके सुझाव से ही हमारी प्रेरणा व भविष्य के कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित होती है। आपके सहयोग एवं सुझावों की प्रतीक्षा में।

मुरारी मोहन रॉय

(मुरारी मोहन रॉय)

सम्पादकीय

राजस्थान विकट पारिस्थितिकी जन्य प्रदेश है। जहाँ हर तीसरा वर्ष अकाल का होता है। पानी की कमी साथ ही खराब मृदा स्थितियों के अन्तर्गत किस प्रकार मृदा प्रबंधन द्वारा अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त कर किसान अपनी आजीविका बेहतर कर सकते हैं इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मरू कृषि चयनिका का यह अंक ''मृदा विशेषांक'' के रूप में निकाला जा रहा है।

मरू कृषि चयनिका किसानों व वैज्ञानिकों के बीच पिछले 16 वर्षा से कड़ी का कार्य कर रही है। विभिन्न कृषि तकनीकी जानकारी को सरल हिन्दी भाषा में किसानों तक पहुँचाने के अपने उद्देश्य में यह पत्रिका सफल रही है। यह सभी आपके सहयोग एवं मार्ग–दर्शन से सम्भव हुआ है।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह अंक भी किसानों, कृषि विस्तारकर्ताओं एवं कृषि शोधकर्ताओं हेतु उपयोगी होगा। मृदा विशेषांक के संबंध में अपनी टिप्पणी एवं सुझाव हमें अवश्य भेजे आपके सुझावों से हमारा मार्ग–दर्शन होता है। मैं पत्रिका संपादक मण्डल की तरफ से सुधि–पाठकों, वैज्ञानिकों एवं पत्रिका से जुड़े सभी प्रबुद्धजनों का आभार व्यक्त करती हूँ तथा भविष्य में इसी प्रकार के सहयोग की अपेक्षा करती हूँ।

धन्यवाद।

मधुबाला चारण
संपादक एवं
सहायक निदेशक (राजभाषा)

विषय सूची

क्र.स.	विषय वस्तु	पृष्ठ सं.
1.	**शुष्क एवं बारानी कृषि पारिस्थितिक तंत्र में मृदा गुणवत्ता एवं इसमें सुधार हेतु कारगर तकनीकियाँ** एम.एम. रॉय	1 से 3
2.	**मृदा का अद्भुत संसार** दिनेश चन्द्र जोशी	4 से 5
3.	**राजस्थान की मृदाओं का भू स्थानीय तकनीकों द्वारा अध्ययन : एक विश्लेषण** अ.ति. जेयसीलन, एस. रामासुब्रमण्यम, सुशील बी. रेहपाड़े एवं ए.के. बेरा	6 से 8
4.	**थार मरूस्थल की मुख्य मृदाएँ एवं उनका वर्गीकरण** दिनेश चन्द्र जोशी एवं महेश कुमार	9 से 17
5.	**मिट्टी परीक्षण क्यों, कब और कैसे कराएँ** महेश चन्द मीना एवं ब्रह्म स्वरूप द्विवेदी	18 से 24
6.	**मैग्निशियम नैनो कणों का जैविक संश्लेषण और उसके अनुप्रयोग** जे.सी. तरफदार एवं इन्दिरा राठौड़	25 से 27
7.	**कृषिगत फसलों में सिंचाई की नूतन विधियाँ एवं मृदा सुधार** अनिल कुमार मिश्रा, सुष्मा सुधीश्री, नीलम पटेल एवं रविन्दर कौर	28 से 34
8.	**मरूस्थलीकरण: कारण एवं निवारण** अमल कर	35 से 40
9.	**पश्चिमी राजस्थान में मिट्टी की उर्वरता में जैव विविधता का योगदान** शर्मिला रॉय, महेश कुमार, नव रतन पँवार, दीपांकर साहा एवं प्रियब्रत सांत्रा	41 से 49
10.	**पौधों एवं मृदा में पौषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन** एम.एल. सोनी, सीमा भारद्वाज, वी.एस. राठौड़ एवं एन.डी. यादव	50 से 58

11. **थार रेगिस्तान में लक्षित उपज हेतु उर्वरक अनुशंसा एवं उर्वरक संबंधी सामान्य जानकारी**
आई.जे. गुलाटी, एस.आर. यादव एवं प्रदीप डे. 59 से 69

12. **गुजरात के बनासकांठा जिले की मृदायें एवं उनकी उर्वरा क्षमता : एक आंकलन**
महेश कुमार एवं पी.सी. बोहरा 70 से 72

13. **लवणग्रस्त मृदाओं में अधिक उत्पादन के लिए फसल प्रबंधन**
हनुमान सहाय जाट, प्रबोध चन्द्र शर्मा एवं दिनेश कुमार शर्मा 73 से 87

14. **थार रेगिस्तान में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट युक्त पानी द्वारा सिंचित मृदाओं का सुधार एवं प्रबंधन**
महेश कुमार, राज सिंह, नव रतन पंवार, पी. सान्तरा एवं एस.पी.एस. तँवर 88 से 92

15. **आधुनिक कृषि में सूक्ष्म पौषक तत्वों का महत्व एवं प्रबंधन**
नवरतन पंवार, महेश कुमार एवं प्रिय ब्रत सान्तरा 93 से 99

16. **मृदा एवं जल प्रबंधन द्वारा मरुभूमि में अधिकतम उपज**
आर.के. गोयल एवं प्रवीण कुमार 100 से 106

17. **टिकाऊ खेती में सूक्ष्म जीवों का महत्व**
सत्य प्रकाश त्यागी, संगीता पाल, लिवलीन शुक्ला एवं अनिल कुमार सक्सेना 107 से 113

18. **शुष्क क्षेत्रों में अधिक उपज हेतु समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन**
एस.पी.एस. तँवर एवं राम नारायण कुमावत 114 से 118

19. **शुष्क क्षेत्रों में वैकल्पिक भूमि-उपयोग द्वारा मृदा प्रबंधन**
महेश कुमार गौड़ 119 से 123

20. **मृदा प्रबंधन द्वारा कीट नियंत्रण**
निशा पटेल 124 से 126

21. **मानवीय गतिविधियों द्वारा मृदा अपक्षय**
आर.के. गोयल एवं मीना मांगलिया 127 से 128

22. **स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती: सफलता की एक कहानी**
धीरज सिंह, एम.के. चौधरी, एम.एल. मीणा एवं पी.के. तोमर 129 से 131

23. **काजरी समाचार** 132 से 135

शुष्क एवं बारानी कृषि पारिस्थितिक तंत्र में मृदा गुणवत्ता एवं इसमें सुधार हेतु कारगर तकनीकियाँ

एम.एम. रॉय
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मृदा गुणवत्ता को सामान्यतः मृदा स्वास्थ्य के पर्याय के रूप में देखा जाता है। यह मुख्यतः मृदा के विशेष गुण जैसे मृदा वर्गीकरण, मृदा उपयुक्तता एवं मृदा क्षमता विषयक वर्गीकरण के आधार पर तय होती है। मृदा में होने वाले सामयिक एवं आकाशीय बदलाव मुख्यत मृदा उपयोग नीति एवं प्रबंधन के द्वारा नियमित होते है। मृदा गुणवत्ता मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों द्वारा दर्शायी जाती है। मृदा जैविक कार्बन एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय कारक है। जिसके आधार पर मृदा गुणवत्ता का आंकलन कर सकते है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में फसल उत्पादन एवं उत्पादकता में स्थिरता या कमी मृदा गुणवत्ता में गिरावट की ओर इंगित करती है। शुष्क क्षेत्रों में मृदा का वातीय क्षरण, अकाल एवं रेगिस्तानीकरण, क्षारीयता एवं लवणीयता, भूमि उपयोग में अभूतपूर्व बदलाव एवं पौषक तत्वों के स्तर में कमी मृदा गुणवत्ता में ह्रास के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार होते है। बढ़ती मानव व पशु जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जल एव वानस्पतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन मृदा गुणवत्ता को और अधिक खराब होने की ओर अग्रसर करते हैं। उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए आज के परिपेक्ष में मृदा वातीय क्षरण, वैकल्पिक भूमि उपयोग, फसल अवशेष प्रबंधन, कम से कम जुताई, अन्तराशस्य, पौषक तत्वों एवं जल का समन्वित प्रबंधन एवं फसल विविधीकरण आदि के बारे में कारगर नीति बनाकर उसको खेतों में अपनाकर इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाना होगा।

मृदा गुणवत्ता एक विशेष प्रकार की मृदा की वह क्षमता है जो एक प्राकृतिक एवं प्रबंधित पारिस्थितिक सीमाओं में रहते हुए जल एवं वायु की गुणवत्ता को उन्नत रखने के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य का भी ख्याल रखें। आज 21वीं सदी में मृदा गुणवत्ता ऐसी हो जो निम्नलिखत चार मूलभूत बातों की पूर्ति करें :

- गैर–पारम्परिक संसाधनों की प्रति यूनिट खपत द्वारा दीर्घकालीन उत्पादकता को बढ़ाना।
- वातावरण प्रदूषण का कम से कम खतरा, विशेष रूप से वायु एवं जल गुणवत्ता के लिए।
- भूमि उपयोग में परिर्वतन से होने वाले जल एवं ऊर्जा बजट में संयमित उतार–चढ़ाव।
- पिछले वैश्विक बदलावों की उपयुक्त व्याख्या या प्रतिनिधित्व।

मृदा गुणवत्ता के कारकों में मुख्यतः मृदा जैविक, भौतिक एवं रासायनिक गुण तथा उनके आपसी सह संबंध तथा उस पारिस्थितिक तंत्र में उपयोगिता यह दर्शाती है कि मृदा जैविक कार्बन एक बहुत ही महत्वपूर्ण, बहुमुखी एवं आसानी से निर्धारित किया जा सकने वाला संकेतक है। जिसके आधार पर हम मृदा गुणवत्ता की आसानी से पहचान करके भविष्य में सुधार हेतु आवश्यक कदम उठा सकते है।

इस आलेख में मृदा गुणवत्ता मे कमी के लिए जिम्मेदार मुख्य कारको का तथा मृदा गुणवत्ता में सुधार हेतु आवश्यक रणनीति एंव तकनीकों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

शुष्क एवं बारानी पारिस्थितिक तंत्र में मृदा ह्रास के मुख्य कारक

अकाल एवं रेगिस्तानीकरण : अकाल शुष्क क्षेत्र का एक विशिष्ट गुण है यह सामान्यतः 2.5 वर्षो में एक बार अवश्य आता है। अकाल न केवल फसल अवशेष के पुनः चक्रण को कम करता है बल्कि मृदा वातीय क्षरण की तीव्रता को भी बढ़ाता है। जोधपुर में विगत 1992 से 2002 तक के बरसात के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्षा की कमी वाले क्षेत्रों में मृदा जैविक कार्बन के स्तर में 10.4 प्रतिशत की कमी (1975 से 2002 के बीच) पायी गयी।

मृदा वातीय क्षरण : शुष्क क्षेत्र में वातीय क्षरण से प्रति वर्ष लगभग 12 से 83 टन मृदा/हेक्टेयर का नुकसान होता है तथा यह नुकसान मुख्य रूप से मृदा की ऊपरी सतह का होता है जो कि कृषि हेतु बहुत महत्वपूर्ण एवं उपजाऊ होती है। वातीय क्षरण से मृदा की ऊपरी सतह में विद्यमान जैविक कार्बन एवं अन्य पौषक तत्वों का नुकसान होता है। काजरी द्वारा किये गये एक शोध कार्य के अनुसार वातीय क्षरण से प्रभावित मृदाओं में प्रति वर्ष लगभग 44–48 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर जैविक कार्बन तथा 3–4 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन का नुकसान होता है। इसी प्रकार वातीय क्षरण द्वारा प्रभावित मृदाओं में अन्य विद्यमान सूक्ष्म पौषक तत्वों का भी नुकसान होता है।

उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग : मृदा में पौषक तत्वों के स्तर में लगातार गिरावट मृदा गुणवत्ता बनाये रखने में एक गंभीर समस्या है। शुष्क क्षेत्रों में विभिन्न फसल चक्रो के अर्न्तगत जैविक कार्बन में शुरूआती स्तर की अपेक्षा 0.22 से 6.0 प्रतिशत की कमी पायी गयी। काजरी द्वारा किये गये शोध के अनुसार जोधपुर जिले में फॉस्फोरस एवं पोटाश में शुरूआती स्तर के मुकाबले 7.7 एवं 13.4 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी।

लवणीयता एवं क्षारीयता : पूरे भारत वर्ष में वर्तमान में लगभग 6.7 मिलियन हेक्टेयर भू–भाग लवणीयता एवं क्षारीयता की समस्या से ग्रसित है तथा इस प्रकार की मृदाओं में फसलोत्पादन 10–50 प्रतिशत तक कम होता है। हाल ही काजरी द्वारा किये शोध कार्य यह दर्शाता है कि इस प्रकार की मृदाओं में पौषक तत्व उपलब्ध अवस्था में कम होते है तथा सूक्ष्म पौषक तत्वों में मुख्य रूप से जिंक की कमी होती है। इन मृदाओं में लवण व क्षार की अत्यधिक उपलब्धता भी फसल पैदावार के लिए नुकसान दायक होती है। इन सभी कारणों से इन मृदाओं में फसलोत्पादन सामान्य मृदाओं की अपेक्षा कम होता है।

शहरीकरण एवं औद्योगीकरण: लगातार बढ़ रहे शहरीकरण एवं उद्योगीकरण से मृदा एवं जल की गुणवत्ता पर पड़ने वाले विपरीत प्रभाव सामने आये है। टैक्सटाइल उद्योगों से निकलने वाले अवशिष्ट पानी के प्रयोग से मृदाओं की विद्युत चालकता, सोडियम अवशोषण अनुपात तथा सोडियम विनिमय प्रतिशत की मात्रा क्रमशः 2–5 से 193 डे.सी./मी., 24–48 और 25–87 पायी गयी जो कि किसी भी तरह के फसलोत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं है।

ग्रीष्मकालीन पड़त : मृदाओं को ग्रीष्मकालीन पड़त (गर्मियों में जुताई करके बिना फसल बुआई के खाली रखना) से लगभग 320–350 कि.ग्रा. मृदा जैविक कार्बन का नुकसान होता है। इसी तरह से शुष्क राजस्थान में लगभग 4 महीने

के लिए खेत को पड़त रखा जाता है। जिससे इन मृदाओं से जैविक कार्बन के साथ–साथ अन्य पौषक तत्व जैसे नत्रजन आदि का ह्रास होता है।

मृदा गुणवत्ता बढ़ाने हेतु आवश्यक सस्य तकनीकियाँ

वातीय क्षरण का नियन्त्रण: वातीय क्षरण मृदा गुणवत्ता को बरकरार रखने में एक गम्भीर समस्या है। वायु अवरोधक, छायादार पेड़ एवं टिब्बा स्थिरीकरण शुष्क क्षेत्रों में तथा मेढ़ कृषि और ऊपरी मृदा प्रबंधन बारानी कृषि पारिस्थितिक तंत्र की मुख्य तकनीकियाँ हैं। जिनके द्वारा वातीय क्षरण से होने वाले नुकसान को रोका जा सकता है। एक शोध के अनुसार मृदा जैविक पदार्थ में छायादार पेड़ वाले क्षेत्र में 850–1450 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की वृद्धि पायी गयी तथा इस क्षेत्र में अन्य पौषक तत्व जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के स्तर में भी वृद्धि पायी गयी। अतः इस प्रकार मृदा को संरक्षित करके मृदा गुणवत्ता को होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

वनीकरण : उच्च अह्रासित मृदा का *प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा, ई. टेरेटीकारनिम* एवं *अकेशिया निलोटिका* द्वारा वनीकरण करने से मृदा का पी.एच. मान 10.3 में घटकर 9.13 एवं 9.0 रह गया है तथा साथ ही मृदा जैविक कार्बन की मात्रा भी 0.12% की अपेक्षा 0.21 से 0.31% तक पायी गयी।

फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश : शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में फसल चक्र में दलहनी फसलों के समावेश से भूमि में जैविक मृदा कार्बन में बढ़ोतरी देखी गयी तथा साथ ही वातावरणीय नत्रजन भी जड़ों में संश्लेषित कर पौधों को उपलब्ध कराने के साथ–साथ पौधों की बढ़वार हेतु आवश्यक नत्रजन की मात्रा भी कम देनी पड़ती है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में सुधार : जिप्सम एवं जैविक खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट, लवण एवं क्षार रोधी किस्मों) के संयुक्त प्रयोग से क्षारीय मृदाओं में सुधार कर इन प्रभावित क्षेत्रों में फसलोत्पादकता एवं मृदा गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है। पश्चिमी राजस्थान में किये गये शोध कार्य के अनुसार जिप्सम एवं जैविक खाद के प्रयोग से फसलोत्पादन में 25-55% तक की वृद्धि पायी गयी तथा इन मृदाओं में पी.एच. का मान 1.0 तक यूनिट कम होने के साथ-साथ मृदा में अन्य पौषक तत्वों की उपलब्धता पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

पौषक तत्वों समन्वित प्रबंधन : पौषक तत्वों के सभी स्त्रोत जैसे कार्बनिक, रासायनिक एवं जैविक का समन्वित प्रयोग मृदा गुणवत्ता बढ़ाने में लाभकारी होता है। एक शोध के अनुसार अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में सोयाबीन–गेहूँ, ज्वार–गेहूँ, फिगर मिले–गेहूँ के फसलों में पिछले 5–30 वर्षो में जैविक कार्बन शुरूआती स्तर कार्बन 9.2, 10.0, 12.0 मेगा ग्राम/हे. के ऊपर 0.80, 5.54 एवं 0.16 मेगा ग्राम प्रति हेक्टेयर ज्यादा पाया गया। शुष्क क्षेत्रों में 40 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 5 टन एफ. वाई.एम. के संयुक्त प्रयोग से जैविक कार्बन में बढ़ोतरी पायी गयी।

उपसंहार

मृदा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए जैविक कार्बन को एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक माना गया है। मृदा गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारणों का एक चरणबद्ध रूप से विश्लेषण कर प्रस्तुत किया गया है तथा मृदा गुणवत्ता को बनाये रखने और सुधारने के लिए सभी तकनीकी उपाय इस लेख में प्रस्तुत किये गये। मृदा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, जैविक उर्वरकों के साथ–साथ मुख्य एवं सूक्ष्म पौषक तत्वों का उचित मात्रा भी आवश्यक है। फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश भी बहुत महत्वपूर्ण होगा। यह फसल के लिए आवश्यक नत्रजन की मात्रा को कम करता है। शुष्क क्षेत्रों में मृदा गुणवत्ता सुधारने के लिए वातीय क्षरण प्रबंध एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सभी अच्छी कृषि क्रियाएँ : जैसे अच्छी एवं नवीन किस्में, समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन, समन्वित कीट एवं खरपतवार प्रबंधन, फसल चक्र प्रबंधन जो कि मृदा गुणवत्ता को बनाये रखने एवं सुधारने में सहायक है, इनको प्रोत्साहन देना चाहिए।

★★★

मृदा का अदभुत संसार

दिनेश चन्द्र जोशी*
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

वनस्पति जीव मात्र के लिए भोजन के रूप मे उर्जा का स्त्रोत है। वनस्पति की वृद्धि के लिए मृदा ही एक मात्र माध्यम है। मृदा से उपलब्ध जल व पोषक तत्वो से वनस्पति की वृद्धि व विकास होता है। पर्यावरण मे मृदा–जल–वनस्पति का आपस मे गहन संतुलन रहता है। वास्तव मे मृदा पर्यावरण की आत्मा है। मृदा हमारे चारो तरफ फैली हुई है, परन्तु बहुत कम लोगो ने इसे ध्यान से देखा होगा। हम मृदा की भौतिक व रासायनिक प्रकृति व गुणो एवं सूक्ष्म जीवो द्वारा सम्पादित जैव–रासायनिक क्रियाओं को जानकर ही इसके अदभुत संसार को समझ सकते हैं।

मृदा प्राकृतिक त्रिआयामी पिंडः मृदा पृथ्वी की सतह पर फैला हुआ त्रिआयामी पिंड है, जिसकी गहराई कंकरीली सतह, चट्टान या 1.5 मीटर जो भी पहले हो तक सीमीत है। मृदा का निर्माण, चट्टान के क्षरण पदार्थो पर प्राकृतिक कारको यथा जलवायु, भू–आकारिकी व वनस्पति के प्रभाव से होता है। मृदा विभिन्न रेत, सिल्ट व क्ले कणों से मिलकर बनती है, जिसका एक निश्चित रंग, गठन व संरचना होती है व इन्ही से मृदा की पहचान होती है जो मृदा के क्षैतिज वितरण पर बदलते रहते है।

मृदा रंग व गठनः भूरी, पीली, लाल, काली आदि रंग की मृदाएँ मिलती है। रंग मृदा के विशिष्ठ प्रकृति व गुणो को इंगित करते है। मृदा विभिन्न आकार के कणो के सहयोग से बनी है। आकार के अनुसार मृदा कण तीन प्रकार के है, रेत कण 2–0.06 मि.मि., सिल्ट कण 0.06–0.002 मि.मि., क्ले कण 0.002 मि.मि. से भी छोटे। रेत, सिल्ट व क्ले कणों के प्रतिशत के आधार पर मृदा गठन निर्धारित किया जाता है। गठन प्रायः रेतीली, दुमट, रेतीलीदुमट आदि नाम से संम्बोधित की जाती है। रेतीली गठन वाली मृदा मे रेत कण 85–90 प्रतिशत व क्ले+सिल्ट कण 10–15 प्रतिशत होते हैं। दुमट गठन वाली मृदा मे क्ले+सिल्ट कण 20–30 प्रतिशत व रेत कण 70–80 प्रतिशत होते हैं। रेत कणों की तुलना मे क्ले कण अति सूक्ष्म परन्तु अत्यधिक क्रियाशील हैं। क्ले कणों की सतह पर त्रृणात्मक चार्ज होने के कारण पौध पोषक तत्वों को संग्रहित रखते हैं तथा पौधों को उपलब्ध करते हैं। अधिक क्ले वाली मृदा में ज्यादा जल धारण क्षमता व उपजाऊ होती है।

मृदा संरचनाः रेत कण गोलाकार होते है व एक दूसरे से सटे रहते है। सिल्ट तथा क्ले कण प्लेटनुमा चपटे होते है। सिल्ट व क्ले कण आपस मे तथा रेत कणो पर चिपके रहते हुए एग्रीगेट बनाते है जो मृदा संरचना का निर्माण करते हैं। रेतीलीदुमट व दुमट गठन वाली मृदा संरचना ग्रेनुलर या ब्लोकी होती है। क्ले व क्लेलोम गठन वाली मृदा संरचना प्लेटी/प्रिज्मेटिक है। मृदा संरचना मे खाली जगह सूक्ष्म नलिकाओं के रूप मे रहती है। यह नलिकाऐं इतनी सूक्ष्म होती है कि आंख से नही दीखती। नलिकाओं के रूप मे खाली जगह मृदा संरचना के कुल आयतन के 50 प्रतिशत के बराबर होती है। मृदा में सूक्ष्म नलिकाओं मे मृदा जल संचयित रहता व थोड़ी बड़ी नलिकाओ मे वायु का संचार होता है। अधिक क्ले वालीमृदा मे सूक्ष्म नलिकाएं ज्यादा होने से जल धारण क्षमता अधिक है। पौधे आवश्यकतानुसार मृदा की सूक्ष्म नलिकाओं से जल व वायु ग्रहण करते हैं। जल व वायु नलिकाएं मृदा की जीवन रेखा है, यदि किन्हीं कारणों से यह नलिकाएं अवरूद्ध हो जाती है, तब मृदा से जड़ो को जल व वायु न मिलने के कारण पौधे मुरझाने लगते हैं।

सूक्ष्म जीवो की क्रियास्थली : मृदा में असंख्य आंखों से दिखने वाले सूक्ष्म जीव रहते हैं। इसके साथ साथ केचुएँ, व चींटियां आदि भी मृदा मे निवास करते हैं। सूक्ष्म जीव बेक्टीरिया, फफूँद आदि करोडों की संख्या मे निरंतर क्रियाशील हैं जो भी जैविक सामग्री जैसे फसल का कडबी, गोबर की खाद आदि मृदा में डाली जाती है सूक्ष्म जीव उनका जैव–रासायनिक अपघटन कर पौधो के लिए पोषक तत्व नत्रजन, फास्फोरस, सल्फर आदि उपलब्ध

**सेवानिवृत प्रधान वैज्ञानिक*

करते हैं। इस अपघटन के दौरान उत्पन्न अन्य जैविक पदार्थ मृदा की जल संचयन एवं वायु संचरण क्षमता को मजबूती प्रदान करते है। अतः मृदा निरंतर क्रियात्मक प्राकृतिक संसाधन है।

मृदा जैविक अंश व पोषक तत्वों की उपलब्धता : पौधो को सामान्य वृद्धि व विकासके लिए जिन पोषक तत्वो की आवश्यकता होती है। पौधे वृद्धि व विकास के लिए पोषक तत्व मृदा से ही प्राप्त करतें है। मृदा का अन्य महत्वपूर्ण घटक जैविक अंश है। मृदाओं मे जैविक अंश की मात्रा 1 से 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. होती है। रेतीली गठन वाली मृदा मे जैविक अंश की मात्रा 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. से कम व क्ले व क्लेलोम गठन वाली मृदा मे अधिक है। अधिक जैविक अंश मृदा के भौतिक, रासायनिक गुणो, सूक्ष्म जीवो की संख्या एवं जैव–रासायनिक क्रियाओं को गति देता है।

पोषक तत्वो को उपलब्ध करने की क्षमता ही मृदा उर्वरता है। कार्बन, आक्सीजन व हाइड्रोजन की आपूर्ति, वायु व जल से होती है। मृदा से उपलब्ध पोषक तत्वो को तीन समूहो 1. *मुख्य पोषक तत्वः* नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम, 2. *सामान्य पोषक तत्वः* केलशियम, मेगनिशियम, सल्फर, एवं 3. *सूक्ष्म पोषक तत्वः* लोह, मेंगेनीज, जिंक, कापर मे वर्गीकृत किया गया है। सामान्यतया यह सभी पोषक तत्व पौधे आवश्यकतानुसार मृदा से ग्रहण करते हैं। रेतीले गठन, कम जैविक अंश, क्षारीय/अम्लीय मृदाओं की उर्वरता कम व दुमट मटियार, अधिक जैविक अंश, सामान्य पी.एच. मान वाली मृदाओं की उर्वरता अधिक होती है।

सतही व गहरी मृदा : सामान्यतया सतह की 30 से.मी. गहराई तक को ही मृदा मान लिया जाता है। यह उचित भी है क्यो कि कृषि क्रियाएँ, खाद व उर्वरक, बीज बुवाई, सिंचाई सतही मृदा में ही होती है। सतही मृदा पर वातावरण एवं मानवीय प्रबंधन का सीधा प्रभाव पडता है। सतही मृदा मे सूक्ष्म जीव बेक्टीरिया, फफूँद आदि करोड़ो की संख्या मे निरंतर क्रियाशील हैं। जीवाणु जैविक अंश के साथ जैव रासायनिक क्रिया द्वारा पोषक तत्व उपलब्ध करवाते है व भौतिक गुणों को प्रभावित कर उचित वायु, नमी को नियंत्रित करते हैं। पौधे की प्रारंभिक अवस्था मे सतही मृदा नर्सरी के रूप मे कार्य करती है। सतही मृदा से ही फसली पौधे जल पोषक तत्व व वायु ग्रहण करते हैं परन्तु वृक्षो की जडे गहराई तक जाकर जल, पोषक तत्व व वायु ग्रहण करते हैं। अतः सामान्यतया 1 से 1.5 मी. गहराई तक मृदा की जानकारी उपयोगी रहती है।

सतत भूमि उपयोग के लिए स्वस्थ मृदा

बढ़ती जनसंख्या के भोजन, रहवास व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पिछले वर्षों में सघन खेती के लिए ट्रेक्टर आदि मशीनों का उपयोग तेजी से बढा है। अनउपयुक्त भूमियों जैसे कि ढलान, कंकरीली, टिब्बेवाली भूमि पर खेती का चलन बढ़ने से रेतीली मृदा का वातीय क्षरण व महीन गठन वाली मृदा का जलीय क्षरण तेजी से हो रहा हैं। सिंचित व नहरी क्षेत्रो मे उर्वरकों का उपयोग अधिक होने से मृदा मे जैविक अंश व उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वो मे कमी, लवणीय व क्षारीयता मे वृद्धि, मृदा नमी–वायु मे असंतुलन के फल स्वरूप लाभदायक सूक्ष्म जीवो की संख्या मे तेजी से कमी आई है, मृदा अस्वस्थ होने के कारण फसलों की उपज मे गिरावट चिन्ता का विषय है। बढ़ता शहरीकरण व औद्योगिकीकरण उपजाऊ मृदाओं को लील ही नही रहा वरन इनसे निस्तारित रसायन मृदा व भू–जल को प्रदूषित कर मृदा को अनुर्वरा बना रहे हैं। हमारा यह परम कर्तव्य है कि भावी पीढी के लिए स्वस्थ उपजाऊ मृदा छोड कर जाएं। यह तभी संभव है जब हमारी कृषि पर्यावरण अनुकूल, सामाजिक रूप से संवेदनशील व आर्थिक दृष्टि से लाभकारी तकनीकों पर आधारित हो। फसल मे उर्वरक, खाद, फसल चक्र, सिंचाई आदि का मृदा उर्वरता पर सीधा प्रभाव पडता है। फसल की अधिक पैदावार लेने के लिए खाद व उर्वरक के रूप मे पोषक तत्व देना होता है। हर खेत की मृदा उर्वरता अलग होती है। सही उर्वरता मृदा परीक्षण प्रयोगशाला से जांच से ही ज्ञात होती है। मृदा संसाधन संरक्षण आन्दोलन का रूप ले रहा है। हम सभी इस आन्दोलन के महत्वपूर्ण भागीदार है। इस की सफलता के लिए जरूरी है कि हम मृदा संसाधन व पर्यावरण की जटिल प्राकृतिक प्रणाली को समझे ताकि हम प्राकृतिक शक्तियों से छेडछाड़ न कर, प्रदूषण मुक्त मृदा पर्यावरण के भागीदार बने।

★★★

राजस्थान की मृदाओं का भू स्थानीय तकनीकों द्वारा अध्ययन : एक विश्लेषण

अ.ति. जेयसीलन, एस. रामासुब्रमण्यम, सुशील बी. रेहपाड़े एवं ए.के.बेरा
प्रादेशिक सुदूर संवेदन केन्द्र, इसरो, अंतरिक्ष विभाग, जोधपुर

प्रस्तावना

किसी भी जमीन की पूरी तरह से उपयोगिता, व्यवस्थापन और जतन करने के लिये उस जमीन की भौतिक, रासायनिक गुण तथा उसका वितरण का तरीका इसके बारे में जानना और समझना, ये सबसे महत्वपूर्ण बात है। इससे हमें योग्य प्रकार की जमीन का उपयोग और पौधों के चयन में भी मदद मिलती है। राजस्थान की मृदा काफी हद तक जटिल तथा बदलाव वाली है। इसमें वर्षा का प्रभाव एवं वितरण, जमीन की भौतिकता और मूल तत्व अंश का समावेश है। इस सबको समावेश में लेते हुए राजस्थान की मृदाओं को पाँच स्तर में बाँटा गया है, जैसे – हल्की मृदा या बालुमय, हल्की मध्यम मृदा या बालुमय लोम, मध्यम या लोम, मृतीका लोम या भारी मृदा, कंकर मृदा या पथरीली और पर्वतीय मृदा।

कृषि विकास और जमीन के संधारण की क्षमता जानने के लिये जमीन का सर्वेक्षण करना काफी मुख्यतम माना जाता है। जमीन का ऐसा सर्वेक्षण सिर्फ जमीन की उत्पादकता के लिये ही नहीं बल्कि जमीन को किसी वजह से अप्रयुक्त या दुर्लक्षीत रही हो और उस जमीन को अभी, समस्याग्रत मृदा में वगीकृत किया गया है, इसमें भी सर्वेक्षण का काफी हद तक उपयोग होता है।

सुदूर संवेदन और उसका मृदा संधारण में उपयुक्तता

जब सूर्य की किरणें धरती पर टकराती है तो वहाँ मौजूद प्रत्येक वस्तु अलग–अलग तरंगदेर्ध्य की किरणें सोखती है एवं परावर्तित करती है इन्ही परावर्तित एवं सोखी हुई विद्युत चुम्बकीय प्रकाशपुंज किरणों के संवेदीकरण से हम अलग–अलग भू–आवरण एवं भू–उपयोग का पता लगा सकते है। प्रत्येक वस्तु का किरणों को परावर्तित एवं सोखने का एक बेजोड़ क्रम होता है, जिसे वर्णकर्मी हस्ताक्षर कहते है। इन उपग्रह प्रतिबिम्बों का विद्यमान वर्णकर्मी हस्ताक्षर की मदद से स्थलाकृति का वर्गीकरण, भू–आवरण एवं भू–उपयोग मानचित्र तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार के मानचित्रों में उस स्थानों पर वनों, कृषि, आवास एवं भौतिक रूप से जुड़े अन्य प्रभाग दर्शायें जाते है।

वातावरण और परिस्थिति के अनुसार मृदा का अध्ययन करने के लिये सुदूर संवेदन और भौगौलिक सूचना प्रणाली का उपयोग किया गया है। विभिन्न प्रकार की मृदा और उसके संवर्ग की पहचान वर्णक्रमीय हस्ताक्षर से संभव है। ये तकनीक विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रमीय के विभिन्न भागों का उपयोग करता है जैसे दृश्य, अवरक्त, तापीय अवरक्त और सूक्ष्म तरंगीय विभाग। मृदाओं और उसके सम्बन्धित जानकारी के बारे में पूरे जगत में काफी सारा अध्ययन सुदूर संवेदन के द्वारा हुआ है। समय के अनुसार स्थानीक विभेदन और वर्णक्रमीय विभेदन अर्थ निर्वचन के तकनीकों में भी काफी बदलाव आ चुका है।

भू–स्थानीक तकनीक का उपयोग भारत में अभी कुछ साल पहले से सभी राष्ट्रीय स्तर के अध्ययनों में पाया गया है जैसे जमीन निम्नीकरण मापना, अपशिष्ट मृदा मापना (भू मापन) मृदा आर्दता मापन (मानचित्रण आदि)।

शुष्क और निम्नशुष्क भागों में एरीडीसोल और एन्टीसोल दो प्रमुख मृदा भाव वातीय क्षरण/हवा कटाव के प्रभाव में आते है। रूखे प्रभाग और कोई भी स्थिर संरचना हवा कटाव के प्रभाव में आते है। कुछ प्रतिकूल परिस्थिति में रेत की अपवाह गतिशीलता शुरू हो जाती है, जहाँ रेत के टीले ना हो वहाँ रेत अपवाह होकर उस जमीन की उत्पादकता कम कर देती है। वातीय क्षरण की वजह से कई ढ़ाँचागत सुविधाओं का नुकसान हो जाता है, जैसे – रास्ते रेल पटरिया, नहर, बस्तियाँ वातीय क्षरण की वजह से ढ़क जाती है। शुष्क और निम्न शुष्क

भागों की मृदा अपने आप में ही अपर्दन के लिये बुलावा है। थार मरूस्थल में थोड़ें समय में भारी वर्षा के कारण पानी अपर्दन/कटाव भी हो जाता है, जैसे – चादर, नाला और गली अपर्दन।

जमीन की ऊपरी बहाव में ज्यादा ढलान होने के कारण चादर कटाव होता है और जहाँ ऊपरी बहाव थम जाता है वहॉ नाला अपर्दन शुरू होता है। वही आगे बढ़े होते हुए गली अपर्दन का नाम धारण कर लेती है। जमीन के प्रकार की तरह जमीन की ढलान भी बहते पानी से होने वाले मृदा क्षरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जितनी ज्यादा और लम्बी ढलान रहेगी उतना ही मृदा क्षरण ज्यादा मृदा क्षरण रहेगा। जमीन के अपर्दन में वर्षा अपर्दन, जमीन अपर्दन, स्थलाकृति, फसलों का आवरण व्यवस्थापन और संसाधन परीरक्षण के तरीकों का मुख्य भाग है।

राजस्थान में किया गया कार्य

भू अपक्षयन के बारे में पूरे राजस्थान का नक्शा 1:50,000 के पैमाने पर आई.आर.एस.–पी–6 लिस–III की मदद से बनाया हुआ है, जिसका भू–स्थानीय विभेदन 23.5 मीटर का है और इसके लिये वर्ष 2005–06 को आधार वर्ष माना गया है। उपग्रह के माध्यम से लिया हुआ स्थानिक व कालीय विभिन्नताओं का विवरण और उसका दृश्य अर्थ विर्वचन की विधि का उपयोग करते हुए तीन स्तरों में जानकारी जमा की गयी है – अपक्षयन की प्रकिया, प्रकार और तीव्रता। अपक्षयन के वर्गो की तीव्रता की जानकारियों को मृदा रसायनिक विश्लेषण तथा वास्तविक सत्यता को देखकर अनुरूपीत किया हुआ है। उपग्रह की भू अपक्षयन की प्रकिया को देखरेख करने के लिये उपग्रह की पुनरावृति प्रकिया का इस्तेमाल किया जाता है। किसान इस डाटाबेस के जरिये अपने जमीन के भू अपक्षयन को देख सकते है।

पूरे राजस्थान का वेस्टलेण्ड का नक्शा 1:50,000 के पैमाने पर की जानकारी लेकर बनाया गया है। आई. आर.एस.–पी 6 लिस–III उपग्रह के द्वारा उसमें सभी बंजर भूमि के प्रवर्गों को भौतिक, रासायनिक और जैविक अपक्षयन का निरूपण या सीमांकन करना तथा देखना संभव हुआ है।

भारत सरकार के अंतरिक्ष विभाग ने राष्ट्रीय नैसर्गिक संसाधन सूचना प्रणाली के अंतर्गत पूरे नैसर्गिक संसाधनों की जानकारी प्राप्त की हुई है, जिसमें नियोजन और निर्णय अधिकारी, जिला, राज्य तथा केन्द्र स्तर पर जानकारी हासिल करके अमल कर सकते है। सभी जानकारी सुदूर संवेदन की मदद से तैयार की हुई है, जिसमें आधुनिकता व्यवस्थापन तथा निर्माण के उपरोक्त साफ्टवेयर की जरूरत पड़ती है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली एवं सुदूर संवेदन की मदद से पूरे राजस्थान की मृदा, जमीन का उपयोग/क्षेत्र, तालाब, झील, जलसंभर, बंजर जमीन, भूजल मापन, पानी की गुणवता, रास्ते, कुऍं, रेल, ढलान, बस्तियॉ आदि सभी की जिला, तहसील, पंचायत समिति, ग्राम पंचायत और गॉव की जानकारी बनाई गयी है। 216 पंचायत समिति के जमीन उत्पादकता के नक्शे जोकि जी.आई.एस. की मदद से बनाये हुए है वे अब राजस्थान राज्य सरकार के पास उपलब्ध है, जिसमें किसानों को अपनी जमीन में उपलब्ध नाइट्रोजन फॉस्फोरस और पोटेशियम के नक्शें प्राप्त करके समझ सकते है तथा उसके अनुसार अपने जमीन में खादों की मात्रा बढ़ा एवं कम कर सकते है। राज्य सरकार ने राजस्थान के अधिकतम जलसंभरों के लिये एकीकृत जलग्रहण विकास कार्यक्रम का कार्यान्वयन किया हुआ है। इसकी मदद से जल और मृदा संधारण के कई तकनीक अपनाये गये है, इसमें भी कई प्रकार के नक्शें – भू उपयोग/क्षेत्र, मृदा भू स्थिरता एवं कार्य योजना की मदद से बनाये गये है। जी.आई.एस. के जरिये अपने उपयोगी क्षेत्र का चयन करके उसमें उपलबध संसाधनों की मदद से अच्छे और कुशल कार्य की तरफ कदम बढ़ा सकते है।

मानचित्रण में दिखाये गये उपग्रह छायाचित्र बांसवाड़ा जिले के जगपुरा जलग्रहण क्षेत्र की है यह रिसोर्ससेट उपग्रह लिस–4 से लिया गया है। उसमें जल निकायों फसल भूमि खनन क्षेत्र निपटान, परती भूमि, बंजर भूमि, वन

क्षेत्र की तरह सभी सुविधाएँ वर्णित है। जलग्रहण तकनीक का उपयोग करके जल में और फसल क्षेत्र में बढ़ोतरी दिखयी गयी है। ये रोकबॉध के योगदान के कारण हो सकता है।

निष्कर्ष / परिणाम

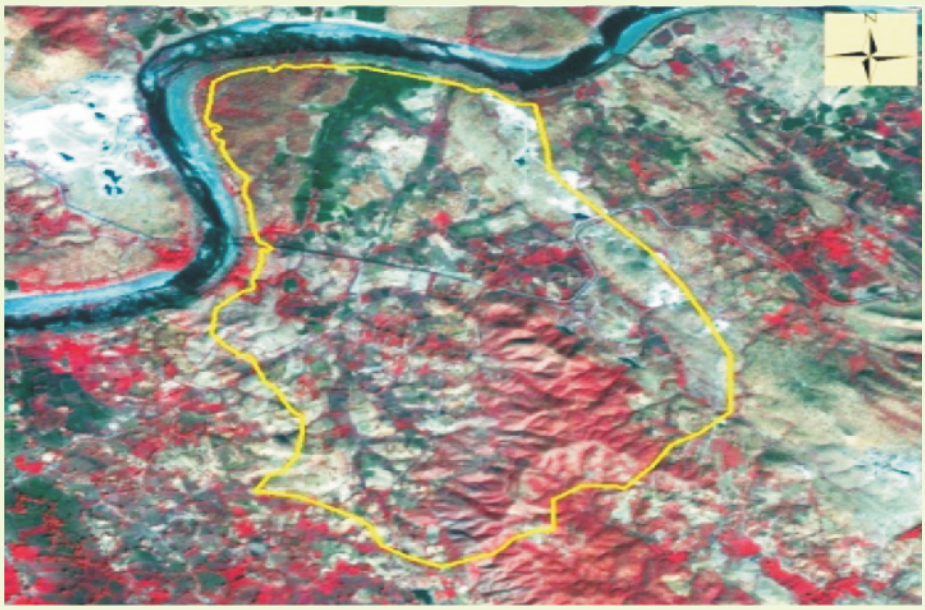

बांसवाड़ा जिले के जगपुरा जलग्रहण क्षेत्र का उपग्रह

भूमि पर ज्यादा चराई एवं वृक्षों की कटाई तथा वनस्पति के विनाश की वजह से भूमि का आवरण नष्ट हो चुका है और उसकी बदौलत जमीन का अर्पदन/कटाव ज्यादा हो रहा है। जिस भूमि पर स्थिरता एवं समुच्यता होती है उसमें अर्पदन कम होता है क्योंकि समुच्यता पानी के बहाव को रोककर छनन प्रक्रिया को बढ़ावा देती है। जैसे ही वनस्पति नष्ट हो जाती है भू अपनी जैविकता खो देती है। भूमि में खादों/उर्वरकों को डालना, जैविक पदार्थो का मिश्रण एवं व्यवस्थापन वाली प्रक्रिया कुछ हद तक अपर्दन को बचा सकती है। मगर अपर्दन ऊपरी सतह एवं नीचे कठिन पालाश को ऊपरी प्रक्रिया के द्वारा बचाया नहीं जा सकता। पवन अपर्दन भू के ऊपरी सतह से जैविक पदार्थ तथा मृत्तिका एवं सील्ट को निकाल कर पूरी सतह को स्थूल बना देती है जिससे अपर्दन को बढ़ावा मिलता है।

भविष्यता

हाल ही के अध्ययन में हायपरस्पेक्ट्रल सुदूर संवेदन के द्वारा मृदाओं का भौतिक एवं रासायनिक गुणमापन महत्वपूर्ण है। मृदा परावर्तकता लाइब्रेरी का विकास करना एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है और उसके साथ में ही हायपरस्पेक्ट्रल परिछेदन के सुमेलन कलन विधि भाषा का भी विकास करना होगा। 0–10 सेमी तक ऊपरी सतह की मृदा आर्द्रता की स्थानीय वितरणता को मापने के लिये, सूक्ष्म तरंग सुदूर संवेदन की उपयोगिता का इस्तेमाल करना होगा। मृदाओं के तत्व और फसलों की गुणों के मापन के लिये सत्य समय संवेदक एवं पुनर्निवेश नियंत्रण प्रणाली का उपयोग करके खेतों में उवर्रकों की मात्रा को नियंत्रण करने वाले संकेत का ईस्तेमाल किया जाना चाहिये। जी.आई.एस. एवं सुदूर संवेदन तकनीकें वनस्पतियों का लगातार संचालन एवं इससे जुड़े जोखिमों को सही तरीकें से आंकने में सहायता करती है और इनमें होने वाले तनाव व पैदावार का सही पूर्वानुमान लगाने में सहायता करती है, जिससें हमें योजना बनाने व सही प्रबन्धन करने का मौका मिलता है।

संदर्भ

- राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केन्द्र की भू अपक्षयन रिपोर्ट
- राजस्थान राज्य सरकार की वेबसाईट
- राज्य सुदूर संवेदन उपयोग केन्द्र की वेबसाईट

★★★

थार मरूस्थल की मुख्य मृदाएँ एवं उनका वर्गीकरण

दिनेश चन्द्र जोशी* एवं महेश कुमार

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

देश का उतर पश्चिमी गर्म शुष्क क्षेत्र 286 लाख हेक्टर मे फैला है। इस शुष्क क्षेत्र का विस्तार पश्चिमी राजस्थान (69 प्रतिशत), दक्षिण पश्चिमी पंजाब व हरियाणा (10 प्रतिशत) व उतर पश्चिमी गुजरात (21 प्रतिशत) मे है। इस शुष्क प्रदेश की पूर्वी सीमा अरावली पर्वत श्रेणी व पश्चिमी पाकिस्तान के साथ अर्न्तराष्ट्रीय सीमा है। वार्षिक वर्षा, पूर्वी सीमा पर 400 मि.मी. से कम होती हुई पश्चिमी सीमा पर 100 मि.मी. ही रह जाती है। वर्षा से प्राप्त जल की मात्रा मे स्थानीय व वार्षिक अन्तर अधिक रहता है। वर्ष भर उच्च तापक्रम व अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन के कारण जलवायु शुष्क बनी रहती है। राजस्थान मे फैला शुष्क क्षेत्र थार मरूस्थल के नाम से जाना जाता है।

थार मरूस्थल की मृदाओं के अपने विशिष्ट लक्षण है। यह हल्की भूरी, रेतीली व दुमटरेतीली गठन, कणीय व मृदु ढेले संरचना वाली हैं। इनमें केलशियम कार्बोनेट, लवणीयता, क्षारीयता व जिप्सम की प्रधानता होती है। अन्य क्षेत्रो की मृदाओं की तुलना में कम मात्रा मे जैविक अंश व उपलब्ध पौध पोषण तत्व है। इन मृदाओं की कम जल धारण क्षमता व वातीय क्षरण के प्रति संवेदनशीलता को उचित प्रबंधन की आवश्यकता रहती है। यह मृदाएँ वर्षा के पश्चात सीमित समय तक ही फसल को नमी उपलब्ध करवा पाती है। वर्ष के अधिकांश समय मृदाएँ शुष्क एवं गर्म रहती है। उपरोक्त लक्षणों के संदर्भ मे शुष्क क्षेत्र की मृदाओं को कम उपज देने वाली माना जा सकता है, परन्तु सामान्य वर्षा या सिंचाई उपलब्ध होने पर इन मृदाओं से बहुत अच्छी उपज ली जा सकती है। शुष्क मृदाओं पर उगने वाली घास, झाड़ियाँ व वृक्षो की पतियाँ पशुओं के लिए अच्छा पौष्टिक आहार है।

मृदा निर्माण के कारक

मृदा पृथ्वी की सतह पर फैला हुआ त्रिआयामी पिंड है, जिसकी गहराई कंकरीली सतह, चट्टान या 1.5 मीटर जो भी पहले हो तक सीमित है। इस त्रिआयामी पिंड 'पेडोन' की क्षैतिज परतो के मृदा रंग, गठन, संरचना, गहराई, लवणीयता क्षरीयता आदि मे अंतर के अनुसार ए, बी, सी संस्तर कहलाते है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो की मृदाओं मे बी संस्तर का अच्छा विकास होता है परंतु थार मरूस्थल की मृदाओं मे कम वर्षा व उच्च तापक्रम के कारण इस प्रकार के निर्माण प्रक्रिया बाधित रहती है। विभिन्न ए, बी, सी संस्तर के लक्षण ही मृदा प्रोफाइल या पेडोन के लक्षण है। एक ही प्रकार के पैतृक पदार्थ से विकसित समान रंग, गठन, संरचना, गहराई, लवणीयता क्षारीयता लक्षणो वाले विभिन्न पेडोन्स को एक मृदा सीरिज नामांकित किया जाता है जो कि मृदा वर्गीकरण व मानचित्रण की निम्नतम इकाई है। प्रकृति ने थार मरूस्थल की मृदाओं मे पर्याप्त अन्तर प्रदान किया है। इस अन्तर का मुख्य कारण प्राचीन जलवायु के प्रभाव मे धरातल निर्माण, वर्तमान शुष्क जलवायु एवं भू–आकृति के अन्तर मे निहित है। क्वाटरनरी के समय शुष्क व आर्द्र जलवायु मे अनियमित परिवर्तन से थार मरूस्थल मे जलीय एवं वातीय मैदानों का निर्माण हुआ। क्वाटरनरी के दौरान, वर्तमान से 60 से 40 हजार वर्षों पहले आर्द्र जलवायु की प्रधानता के कारण अरावली पर्वत श्रेणी से लूनी व सहायक नदियो व हिमालय से सरस्वती–द्रिशदावती नदियो के थार मरूस्थल से बहने के कारण विस्तृत जलीय मैदानो का निर्माण हुआ। इसके बीच मे शुष्क जलवायु के दौर भी आते रहे जिनमे वातीय मैदानो का निर्माण हुआ। प्रमुख शुष्क जलवायु का दौर करीब 10 हजार वर्षों पहले समाप्त हुआ जिसके दौरान पश्चिमी राजस्थान, दक्षिण पश्चिमी पंजाब व हरियाणा मे रेत के टिब्बो व रेतीले मैदानों का निर्माण हुआ। सौराष्ट्र व कच्छ क्षेत्र मे बेसाल्ट चटानो व तटीय अलुवियम पर जलवायु व अन्य कारको के प्रभाव से मृदा का निर्माण हुआ है। बाद के वर्षो मे शुष्क जलवायु की प्रधानता रही, जिसके कारण गहन मृदा निर्माण प्रक्रिया का अभाव ही रहा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि थार मरूस्थल मे मृदा निर्माण के लिए पुरातन नदियो से प्राप्त सामग्री पैतृक पदार्थ आसमान (रेतिली, सिल्टी) थी । इनमे क्वार्टज आदि खनिज कणो की बहुतायत के कारण क्ले का

* सेवानिवृत प्रधान वैज्ञानिक

निर्माण नहीं हुआ। विभिन्न पुरातन व वर्तमान शुष्क जलवायु के दौरान रेतीले टिब्बो व रेतीले मैदानों का निर्माण हुआ। वर्तमान शुष्क जलवायु के दौरान, पेडोन अवमृदा मे सीमित महीन कणों का प्रवाह, केल्शियम कार्बोनेट व लवणों का एकत्रीकरण, विशेषकर अर्न्तटिब्बा क्षेत्रों व लूनी बेसिन की मृदाओं मे जारी रहा।

भू–आकृति व मृदा संबंध

थार मरूस्थल की मृदाएँ विभिन्न भू–आकृतियों जैसे कि टिब्बा व अर्न्त टिब्बा क्षेत्र, रेतीले मैदान, घग्गर–सतलज व लूनी के जलीय मैदान तथा पहाड़ियों पर मिलती है। इन स्थानीय भू–आकृति का मृदा अभिलक्षणो यथा रंग, गठन, संरचना आदि पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। थार मरूस्थल की भू–आकृति व मृदा वर्गीकरण सम्बधं तालिका 1 मे प्रस्तुत है।

सारणी 1. थार मरूस्थल की भू–आकृति व मृदा वर्गीकरण संबंध

भू–आकृति	मृदा वर्ग	विस्तार (जिला)
टिब्बा व अर्न्त टिब्बा क्षेत्र	टोरीसामेन्टस (टिब्बे), पेटोजिप्सिडस, केल्सिजिप्सिडस	जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर नागौर, सीकर व चूरू, झुंझुनु
रेतीले मैदान पर छितरे टिब्बे (वर्षा 300 मि.मी. से कम)	टोरीसामेन्टस (मैदान,टिब्बे)	जोधपुर, बाड़मेर, बीकानेर, नागौर जालोर
रेतीले मैदान पर छितरे टिब्बे (वर्षा 300 मि.मी. से अधिक)	टोरीसामेन्टस (मैदान, टिब्बे), हेप्लो केम्बिडस, केल्सिजिप्सिडस	चूरू, झुंझुनु, गंगानगर, नागौर हनुमानगढ, सीकर
कठोर पटल की मृदाएँ	पेटो केलसिडस	जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर,
लूनी बेसिन के जलीय मैदान	कोर्सलोमी/फाइनलोमी हेप्लो केम्बिडस, हेप्लो केलसिडस, हेप्लो सेलिडस, टोरी फलुवेन्टस	पाली, जोधपुर, नागौर, जालोर, बाड़मेर, सीकर
घग्गर–सतलज–जलीय मैदान	टोरीसामेन्टस(मैदान), कोर्सलोमी/फाइनलोमी टोरी फलुवेन्टस, हेप्लो केम्बिडस, हेप्लो केलसिडस, हेप्लो सेलिडस, केल्सिजिप्सिडस	गंगानगर, हनुमानगढ,
अरावली पर्वत श्रेणी व अन्य पहाड़ियों की तलहटी	स्केलेटल लिथिक टोरी आर्थेन्टस, लोमी स्केलेटल लिथिक हेप्लो केम्बिडस	जोधपुर, नागौर, पाली, जालोर, सीकर, झुंझुनु

थार मरूस्थल की मृदाओं का वर्गीकरण

मृदा लक्षणों रंग, गठन, संरचना, गहराई, लवणीयता क्षारीयता व जल धारण क्षमता, उर्वरता मे अन्तर के कारण भूमि की फसल/जैविक उत्पादकता मे बहुत फर्क रहता है। अतः मृदा की फसल/जैविक उत्पादन क्षमता का अनुमान लगााने के लिए मृदा वर्गीकरण बहुत आवश्यक है। मृदा वर्गीकरण के आधार पर ही सरकार लगान वसूली करती है। पिछले 50– 60 वर्षों में शुष्क क्षेत्रों का सर्वेक्षण द्वारा मृदा के आकारिकी, भौतिक, रासायनिक व उर्वरता की विस्तृत जानकारी एकत्र की गई। मृदा का आकारिकी लक्षण तथा रंग, गठन, संरचना, गहराई, लवणीयता क्षारीयता आदि लक्षणों के आधार पर सामान्य मृदा वर्गो मे वर्गीकृत किया गया। इसके पश्चात 'मृदा वर्गीकरण' पद्धति अपनाई गई। मृदा वर्गीकरण पद्धति मे वैज्ञानिक तरीके से आकारिकी लक्षणो के साथ–साथ मृदा पेडोन निर्माण प्रक्रिया को आधार बना कर पेडोन का वर्गीकरण आर्डर, सब–आर्डर, ग्रेटग्रुप, सब–ग्रुप, फेमिली व मृदा सीरिज मे किया जाता है। थार मरूस्थल की मृदाओं को 'मृदा वर्गीकरण (1994)' के अनुसार आर्डर एरीडीसोल्स व आर्डर एन्टीसोल्स मे वर्गीकृत किया गया है। इन आर्डर्स का वर्गीकरण के विभिन्न स्तरो पर विवरण प्रस्तुत है।

आर्डर एरीडीसोल्स (78.25 लाख हेक्टर, 40.34%)

वह मृदाएँ है जो वर्ष के अधिकांश समय शुष्क व गर्म रहती है आर्डर एरीडीसोल्स की सदस्य है। इनका एरिडिक नमी व हाइपर थर्मिक तापक्रम रेजिम रहता है। एरिडिक नमी वाली पेडोन के कन्टोल सेक्शन (रेतीली 30–90 से.मी., कोर्सलोमी 20–60 से.मी. व फाइनलोमी 10–30 से.मी. गहराई) मे वर्ष मे लगातार 90 से कम दिनो तक ही नमी उपलब्ध होती है व शेष दिनो मे सूखी बनी रहती है। हाइपर थर्मिक तापक्रम वाली मृदा मे 50 से.मी. गहराई पर वार्षिक औसत तापक्रम 22 सेन्टिग्रेड या अधिक तथा औसत गर्मी व सर्दी महिनो के तापक्रम मे 5 सेन्टिग्रेड से अधिक का अन्तर रहता है। सतही मृदा 'ओक्रिक एपीपेडोन' मे हल्का रंग व कम जैविक अंश है। अवमृदा मे केम्बिक, केलसिक, जिप्सिक व सेलिक होराइजन मिलते है जिनके आधार पर इनको क्रमशः सब–आर्डर्स केम्बिडस, केलसिडस, जिप्सिडस व सेलिडस मे वर्गीकरण किया गया है। तालिका 2 मे आर्डर एरीडीसोल्स का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

सब आर्डर केम्बिडस: (58.78 लाख हेक्टर, 30.3%)

आर्डर एरीडीसोल्स की वह मृदाएँ जिनके पेडोन मे केम्बिक होराइजन मिलता है सब आर्डर केम्बिडस की सदस्य है। केम्बिक होराइजन का निर्माण सतही मृदा से महीन कणो का अतःप्रवाह अवमृदा मे होने से होता है। इससे सतही मृदा की तुलना मे केम्बिक होराइजन मृदा का रंग थोड.ा गहरा, गठन महीन व मृदु ढेले संरचना होती है। केम्बिडस को मृदा गहराई के आधार पर ग्रेटग्रुप हेप्लो केम्बिडस (50 से.मी. से अधिक) व ग्रेटग्रुप लिथिक हेप्लो केम्बिडस (50 से.मी. से कम) मे वर्गीकृत किया गया है।

सारणी 2. आर्डर एरीडीसोल्स का वर्गीकरण व विस्तार लाख हेक्टर (ब्रेकेट मे कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत)

सब–आर्डर / विस्तार	सोइल टेक्सोनोमी वर्गीकरण	सामान्य वर्गीकरण	विस्तार
आर्डर एरीडीसोल्स (78.241लाख हेक्टर) 40.34%			
केम्बिडस 58.78 (30.30)	कोर्सलोमी टिपिक हेप्लो केम्बिडस	भूरी दुमट मृदाएँ	43.80 (22.58)
	फाइनलोमी टिपिक हेप्लो केम्बिडस	धूसर भूरी दुमट मृदाएँ	6.26 (3.23)
	लोमी स्केलेटल लिथिक हेप्लो केम्बिडस	क्म गहरी मृदाएँ	8.72 (4.49)
केलसिडस 16.56 (8.54)	कोर्सलोमी टिपिक हेप्लो केलसिडस	भूरी दुमट मृदाएँ	12.54 (6.46)
	फाइनलोमी टिपिक हेप्लो केलसिडस	धूसर भूरी दुमट मृदाएँ	1.44 (0.74)
	कोर्सलोमी टिपिक पेटो केलसिडस	केलशियम कार्बोनेट की कठोर पटल मृदाएँ	2.58 (1.33)
जिप्सिडस 1.27 (0.66)	कोर्सलोमी टिपिक केल्सिजिप्सिडस	जिप्सम व केलशियम कार्बोनेट वाली मृदाएँ	0.70 (0.36)
	कोर्सलोमी टिपिक / लिथिक पेटोजिप्सिडस	जिप्सम की कठोर पटल की मृदांए	0.56 (0.29)
सेलिडस 1.64 (0.85)	कोर्सलोमी टिपिक हेप्लो सेलिडस	लवणीय व क्षारीय मृदाएँ (मोटा गठन)	1.37 (0.71)
	फाइनलोमी टिपिक हेप्लो सेलिडस	लवणीय व क्षारीय मृदाएँ (महीन गठन)	0.27 (0.14)

हेप्लो केम्बिडस: (58.78 लाख हेक्टर, 30.3%): ग्रेटग्रुप हेप्लो केम्बिडस के सबग्रुप टिपिक हेप्लोकेम्बिडस व लिथिक हेप्लोकेम्बिडस (50 से.मी. से कम) मे वर्गीकृत है।

टिपिक हेप्लोकेम्बिडस: टिपिक हेप्लोकेम्बिडस सबग्रुप की मृदाओं को गठन के आधर पर कोर्सलोमी (क्ले 18% से कम) व फाइनलोमी (क्ले 18–35%) मे वर्गीकृत किया गया है।

कोर्स लोमी टिपिक हेप्लोकेम्बिडस : (43.8 लाख हेक्टर, 22.58%) यह भूरी दुमट मृदा के नाम से जानी जाती है। पेडोन पीली भूरी, दुमट रेतीली, व रेतीलीदुमट गठन की बिना केल्शियम कार्बोनेट वाली गहरी मृदाएँ इस वर्ग की सदस्य है। ढेले मृदु व आसानी से कणिका में बिखरने वचले है। मृदा बहुत तीव्र जल निकास वाली है। मृदा में जल संचयन क्षमता (60–70 मि.मी./मीटर) है। सतह पर रेत की तह या गिरिकाएं तथा छोटे टिब्बे मिलते है। वातीय क्षरण के प्रति संवेदन शील है। पारंपरिक रूप से यह मृदाएँ वर्षा आधरित खरीफ फसलो बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार, तिल की खेती मे है। यह मृदाएँ जोधपुर, नागौर, सीकर, झुंझुनू तथा जालोर जिलों में फैली है।

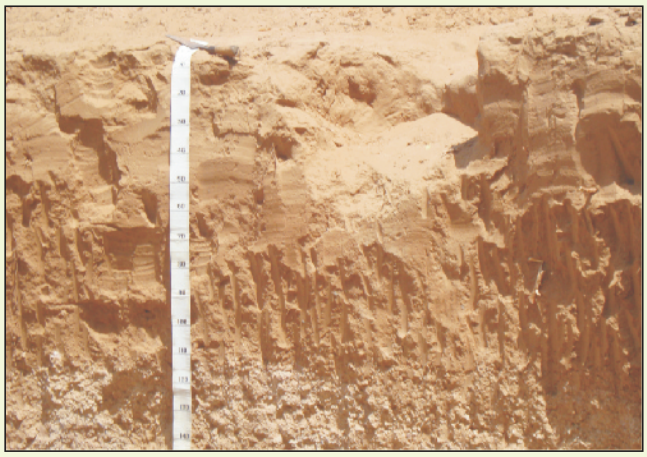

टिपिक हेप्लोकेम्बिडस सबग्रुप की मृदाओं आदश मृदा परिच्छेदीका

सब-आर्डर जिप्सिडस की मृदाओं आदश मृदा परिच्छेदीका

फाइनलोमी टिपिक हेप्लोकेम्बिडस (6.26 लाख हेक्टर, 3.23%) : यह धूसर भूरी, दुमट मृदा के नाम से जानी जाती है। पेडोन मे धूसर भूरी से भूरे रंग, दुमट, मटियार गठन, उपकोणीय खंड संरचना वाली 60–90 से.मी. गहराई की यह मृदाएँ बिना केल्शियम कार्बोनेट वाली है। पेडोन में जल संचयन क्षमता भी अधिक (80–120 मि.मी./मीटर) है। यह मृदा बहुत उपजाऊ है नलकूप से सिंचित क्षेत्रों में गेहूं, रायड़ा, जीरा व सब्जियों की अच्छी पैदावार मिलती है। मृदा क्षरण व लवणीयता की समस्या सामान्यतः इस वर्ग की मृदाओं में नहीं पाई जाती है। यह मुख्यतया जोधपुर व नागौर, पाली, जालौर जिलों में मिलती है।

लिथिक हेप्लोकेम्बिडस: सबग्रुप लिथिक हेप्लोकेम्बिडस (गहराई <50 से.मी.) को फेमिली स्तर पर लेामी स्केलेटल लिथिकहेप्लो केम्बिडस में वर्गीकृत किया गया है।

लोमी स्केलेटल लिथिकहेप्लो केम्बिडस: (8.72 लाख हेक्टर, 4.49%) यह मृदाएँ 50 से.मी. से कम गहराई वाली हल्के भूरे रंग, दुमट रेतीली गठन की है। मृदा मे कंकड़ की मात्रा अधिक है। पहाड़ियों के ढलान व पथरीले मैदानो में मिलती है। जलीय क्षरण से सतही मृदा बहने से कृषि योग्य नही। इनका विस्तार जोधपुर, नागौर, पाली जिलो में अधिक है।

केलसिडस (16.56 लाख हेक्टर 8.54%)

आर्डर एरीडीसोइल्स की वह मृदाएँ जिनके पेडोन में केलशियम कार्बोनेट चूर्ण, कंकरी या कठोर पटल रूप में मिलता है सब आर्डर केलसिडस की सदस्य है। सबआर्डर केलसिडस को ग्रेटग्रुप हेप्लोकेलसिडस व पेट्रो–केलसिडस मे वर्गीकृत किया गया है। हेप्लोकेलसिडस ग्रेटग्रुप मृदाओ के पेडोन में केल्सिक संस्तर मिलता

है। केल्सिक संस्तर में कैल्शियम कार्बोनेट चूर्ण, कंकरी या कठोर पटल रूप मे एकत्रित होता है। ग्रेटग्रुप पेट्रो कैल्सिडस में कैल्शियम कार्बोनेट कठोर परत के रूप में मिलता है।

हेप्लोकेलसिडस (13.98 लाख हेक्टर, 7.20%) ग्रेटगुेप हेप्लोकेलसिडस के सबग्रुप सदस्य टिपिक हेप्लोकेलसिडस को फेमिली स्तर पर कोर्सलोमी टिपिक हेप्लोकेलसिडस व फाइनलोमी टिपिक हेप्लोकेलसिडस में वर्गीकृत किया गया है।

कोर्सलोमी टिपिक हेप्लोकेलसिडस (12.54 लाख हेक्टर, 6.46%) यह भूरी दुमट मृदा के नाम से जानी जाती है। पेडोन महीन रेतीली से दुमट रेतीले गठन वाली यह मृदाएँ भूरे से पीले भूरे रंग व कणीय से मृदुकणीय संरचना का है, जिसमें क्ले (5–7%) तथा सिल्ट (4–5%) की मात्रा कम है। पेडोन की अवमृदा कुछ अधिक क्ले एंव सिल्ट वाली केल्सिक है। 70 से 90 से.मी. गहराई पर चूने के कंकड़ो वाली तह मिलती है। इनकी सतह पर रेत की परत छितरी होती है। इन मृदाओं की जल धारण क्षमता 60 से 90 मि.मी. प्रति मीटर है। इस वर्ग की मृदाएँ प्रायः बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर, बीकानेर, जालोर जिलों में मिलती है।

फाइनलोमी टिपिक हेप्लो केलसिडसः (1.44 लाख हेक्टर, 0.74%) यह धूसर भूरी दुमट मृदा के नाम से जानी जाती है। पेडोन की मृदा धूसर भूरी, गहरी धूसर भूरी रंग, दुमट, दुमट–मटियार गठन की, मध्यम आकार के उपकोणीय खंड तथा केल्शियम कार्बोनेट वाली है। पेडोन की गहराई सामान्यतया 50 से 70 से.मी. है। पेडोन में क्ले (22–25%) एवं सिल्ट (9–14%) की मात्रा अधिक पायी जाती है। पेडोन की जल संचयन क्षमता बहुत अधिक (150 से 200 मि.मी. प्रति मीटर) है। यह मृदा बहुत उपजाउ है छोटे बांधों व नलकूप से सिंचित क्षेत्रों में गेहूं, रायड़ा, जीरा व कपास की अच्छी पैदावार मिलती है। भूजल प्रायः लवणीय है इससे सिंचित मृदाओं से अच्छी उपज लेने के लिए लवणीयता–क्षारीयता का प्रबंधन करना होता है। इस मृदा वर्ग में कहीं कहीं जल क्षरण से मृदा ह्रास देखा जाता है। फाइनलोमी हेप्लोकेलसिडस जोधपुर व नागौर जिलों के दक्षिण पूर्वी भाग, पाली व जालौर जिलो में मिलती है।

कोर्सलोमी टिपिक/लिथिक पेटोकेलसिडसः (2.58 लाख हेक्टर, 1.33%) जिन मृदाओ मे केलशियम कार्बोनेट कठोर पटल (हार्ड पान सोइल) मिलता है वह पेटोकेलसिडस ग्रेटग्रुप की सदस्य है। पेटोकेलसिडस ग्रेटग्रुप को सबग्रुप स्तर पर केलशियम कार्बोनेट कठोर पटल की गहराई के अनुसार टिपिक/लिथिक मे वर्गीकृत किया जाता है। पेटोकेलसिडस का पेडोन हल्की पीली, भूरी रेतीली, दुमट रेतीली, व रेतीली दुमट, उथली मृदाएँ, जिनमें 30 से 90 से.मी. नीचे केलशियम कार्बोनेट के कठोर पटल है। इस कठोर पटल में जल का रिसाव नही होता है और वनस्पति की जड़ें भी प्रवेश नहीं कर पाती। रेतीली एवं कम गहरी होने के कारण मृदा में संचयीत नमी की मात्रा भी कम (40 से 60 मि.मी. प्रति मीटर) है। इस कारण झाड़िया व घास कम समय मे ही सूख जाते है, वृक्ष पनप ही नही पाते। वातीय क्षरण से भी मृदा का ह्यस होता है तथा कहीं–कहीं पर कैल्शियम कार्बोनेट की कठोर पटल सतह पर ही दिखाई देने लगता है। यह मृदाएँ खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। बाड़मेर जैसलमेर व बीकानेर जिलों के विस्तृत क्षेत्रों व जोधपुर, नागौर जिलों में इस प्रकार की मृदाएँ मिलती है।

जिप्सिडस (1.27 लाख हेक्टर, 0.66%)

सब–आर्डर जिप्सिडस को ग्रेटग्रुप केल्सिजिप्सिडस व पेट्रोजिप्सिडस मे वर्गीकृत किया गया है। ग्रेटग्रुप केल्सिजिप्सिडस के जिप्सिक संस्तर में 5 प्रतिशत या अधिक जिप्सम पावडर/क्रिस्टल्स होते है। ग्रेटग्रुप पेट्रोजिप्सिड के पेट्रोजिप्सिक संस्तर में जिप्सम पावडर/क्रिस्टल्स कठोर पटल के रूप मे होता है।

केल्सिजिप्सिडसः ग्रेटग्रुप केल्सिजिप्सिडस के सबग्रुप टिपिक केल्सिजिप्सिडस की कोर्सलोमी मृनाएँ थार मरूस्थल मे मिलती है।

कोर्सलोमी टिपिक केल्सिजिप्सिडसः (0.70 लाख हेक्टर, 0.36%) : यह हल्की पीली भूरी रेतीली, दुमट रेतीली, व रेतीलीदुमट गठन की मृदु कोणीय संरचना की है। जिप्सिक होराइजन 60–70 से.मी. गहराई पर मिलता है। केल्सिजिप्सिडस पेडोन के जिप्सिक होराइजन मे जिप्सम पावडर/क्रिस्टल्स के साथ केल्शियम कार्बोनेट भी मिलता है। बाड़मेर, जैसलमेर, नागौर, हनुमानगढ, बीकानेर, चुरू जिलों के रेतीले मैदानो व अर्न्त टिब्बा क्षेत्रों में केल्सिजिप्सिडस मिलते है। जिप्सिक होराइजन गहराई में होने के कारण बारानी फसल पर दुष्प्रभाव नहीं होता।

पेट्रोजिप्सिडसः ग्रेटग्रुप पेटोजिप्सिड के सबग्रुप टिपिक/लिथिक पेट्रोजिप्सिडस का फेमिली स्तर पर कोर्सलोमी टिपिक/लिथिक पेट्रोजिप्सिडस मे वर्गीकरण किया गया है।

कोर्सलोमी टिपिक/ लिथिक पेट्रोजिप्सिडसः (0.56 लाख हेक्टर, 0.29%) : सतही मृदा हल्की पीली भूरी, रेतीली, कणीय, 30 से 50 से.मी. गहराई पर पेडोन में जिप्सम की कठोर पटल मिलती है। कठोर पटल वनस्पति की जड़ों व पानी के रिसाव के लिए अवरोधक है। बाड़मेर के कवास, नागौर के जायल, बीकानेर के जामसर, जैसलमेर के नाचना व हनुमानगढ में इसका व्यावसाइक खनन किया जाता है। इन्दिरा गांधी नहर सिंचित क्षेत्र की पेट्रोजिप्सिडस मृदा क्षेत्र में जलप्लावन की समस्या रहती है।

सेलिडस (1.640 लाख हेक्टर, 0.85%)

प्राकृतिक प्रक्रियाओं से निर्मित लवण प्रभावित थार की मृदाएँ सेलिडस सब–आर्डर की सदस्य है। सेलिडस के पेडोन मे सेलिक होराइजन मिलता है जो लवण की अधिक मात्रा होने मे एकत्रित होने से बनता है। पेडोन सख्त होने से जल का अन्तःस्त्राव कम है। अधिक लवणीयता के कारण कृषि के उपयोग मे नही है। लवण सहन करने वाली वनस्पतियाँ ही पनप पाती है व प्रोसोपिस जुलिफलोरा से ढकी रहती है। सब–आर्डर सेलिडस के ग्रेटग्रुप सदस्य हेप्लोसेलिडस थार मे मिलता है।

हेप्लोसेलिडसः को सबग्रुप टिपिक हेप्लो सेलिडस व फेमिली स्तर पर कोर्सलोमी टिपिक हेप्लोसेलिडस व फाइनलोमी टिपिक हेप्लोसेलिडस मे वर्गीकृत किया गया है।

कोर्सलोमी टिपिक हेप्लोसेलिडस (1.37 लाख हेक्टर, 0.71%) : मोटे गठन की लवणीय मृदाएँ उप फेमिली की सदस्य है। पेडोन मे दुमटरेतीला व रेतीलादुमट गठन वाली, मध्यम आकार के उपकोणीय खंड संरचना वाली लवण प्रभवित मृदाएँ हैं। पड.त भूमि के रूप मे कोर्सलोमी हेप्लोसेलिडस बाड़मेर, हनुमानगढ, जैसलमेर व जालौर जिलो मे विस्तृत क्षेत्रो मे फैली है।

फाइनलोमी टिपिक हेप्लोसेलिडस (0.27 लाख हेक्टर, 0.14%) : महीन गठन वाली लवण प्रभवित मृदाएँ इसकी सदस्य है। इनका पेडोन मुख्यतया दुमट, दुमट मटियार गठन, धूसर भूरी, गहरी धूसर भूरी, मध्यम आकार के कोणीय, प्रिस्मेटिक व प्लेटी संरचना एवं कैल्शियम कार्बोनेट युक्त होता है। इस प्रकार की लवण प्रभवित मृदाएँ पाली, जोधपुर नागौर, बाड़मेर जिलो मे सामान्यतया मिलती है।

आर्डर एन्टीसोल्स (115.410 लाख हेक्टर, 59.48%)

टिब्बेदार रेतीले मैदानो, नदियो के बाढ. क्षेत्र, पहाड़ी ढलान व पथरीला मैदान की मृदाएँ एन्टीसोल्स आर्डर की सदस्य है। आर्डर एन्टीसोल्स के पेडोन मे प्राकृतिक कारणों, (1) रेतीले टिब्बेदार मृदाओं मे विगलन न होने वाले खनिज कणों (क्वार्टज) की बहुतायत, एवं (2) बाढ़ग्रस्त क्षेत्र व पहाड़ी ढलान की मृदाओं के निरंतर बहाव के कारण मृदा निर्माण प्रक्रिया अवरूद्ध रहने से विशिष्ट संस्तरों का निर्माण नही होता है। आर्डर एन्टीसोल्स को सब आर्डर सामेन्टस, फलुवेन्टस व आर्थेन्टस मे वर्गीकृत किया गया है। तालिका 3 में आर्डर एन्टीसोल्स का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

सामेन्टस (103.2 लाख हेक्टर, 53.2%)

सब आर्डर सामेन्टस के पेडोन के सभी संस्तर मे रेतीली या दुमटरेतीली गठन की मृदाएँ हैं। सब आर्डर सामेन्टस के सदस्य सभी जलवायु मे मिलते है। रेतीली गठन के कारण जल धारण क्षमता कम होती है व वायु के प्रभाव से रेत उड़ती है। सामेन्टस के ग्रेट ग्रुप टोरी टोरीसामेन्टस शुष्क क्षेत्रों में मिलते है।

टोरीसामेन्टस

शुष्क क्षेत्र की रेतीली मृदाएँ मुख्यतया टिब्बों व रेतीले मैदानों में मिलने वाली मृदाओं को टोरीसामेन्टस ग्रेट–ग्रुप में वर्गीकृत किया गया है। पौधों के लिए उपलब्ध जल वर्ष में लगातार 90 से कम दिनो तक ही रहता है। टिब्बों व रेतीले मैदान की इन टोरीसामेन्टस मृदाओं की नमी संग्रह क्षमता कम व वायु क्षरण के प्रति संवेदन शील है। ग्रेटग्रुप टोरीसामेन्टस को सबग्रुप टिपिक टोरी टोरीसामेन्टस (टिब्बे) व टिपिक टोरीटोरीसामेन्टस (मैदानी) में वर्गीकृत किया गया है।

सारणी 3. आर्डर एन्ओसोल्स का वर्गीकरण व विस्तार लाख हेक्टर (ब्रेकेट मे कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत)

सब–आर्डर विस्तार	सोइल टेक्सोनोमी वर्गीकरण	सामान्य वर्गीकरण	विस्तार
आर्डर एन्टीसोल्स 115.41लाख हेक्टर (59.48)			
सामेन्टस 103.2 (53.20)	टिपिक टोरीसामेन्टस (टिब्बे)	टिब्बेदार बलुई मृदाएँ	48.60 (25.02)
	टिपिक टोरीसामेन्टस (मैदान 300 मि.मी. से कम)	भूरी रेतीली मृदाएँ	54.60 (28.17)
	टिपिक टोरीसामेन्टस (मैदान 300 मि.मी. से अधिक)		
फलुवेन्टस 4.34 (2.24)	कोर्सलोमी टिपिक टोरी फलुवेन्टस	बाढ़ कृत मैदान की मृदाएँ	3.54 (1.82)
	फाइनलोमी टिपिक टोरी फलुवेन्टस	बाढ़ कृत मैदान की मृदाएँ	0.79 (0.41)
आर्थेन्टस 7.87 (4.06)	सेन्डी स्केलेटल लिथिक टोरी आर्थेन्टस	पहाड़ी, पथरीला मैदान की मृदाएँ	7.87 (4.1)

टिपिक टोरी टोरीसामेन्टस (टिब्बे) (48.55 लाख हेक्टर, 25%) टिब्बे थार मरूस्थल के विशिष्ट भू प्रारूप हैं। टिब्बों का निर्माण थार मे दो अलग अलग शुष्क जलवायु के दौरान हुआ। पहले शुष्क जलवायु वर्तमान से 18 से 10 हजार वर्ष पूर्व के दौरान पेराबोलिक, लोंजिट्यूडिनल, टान्सवर्स टिब्बों का निर्माण हुआ। यह टिब्बे 10 से 60 मीटर उचाई, 250 से 350 मीटर लम्बाई व 500 से 1500 मीटर चोड़ाई के है तथा वह स्थिर है। इसके बाद का शुष्क जलवायु 3800 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ इस दौरान चन्द्राकार (बरखान) टिब्बो का निर्माण हुआ, जो वायु वेग के साथ चलायमान है। विभिन्न प्रकार के टिब्बों व अन्तर्टिब्बा क्षेत्रों की मृदाएँ महीन रेतीली है। टिब्बे श्रृंखला रूप मे 4से 8 कि.मी. लम्बाई तक जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर व बीकानेर जिलों के पश्चिमी भाग तथा नागौर, सीकर व चूरू जिलों में मिलते है। सामान्यतया स्थिर टिब्बों पर झाड़िया, घास, पेड़ आदि प्राकृतिक वनस्पति पाई जाती है। टिब्बों वाली मृदाएँ पीली भूरी व हल्की पीली भूरी, रेतीली, एक कणीय, संरचना की है। उसमें मुख्यतः महीन व अति महीन रेत (0.11–0.12 मि.मी.) के कण (88–92 प्रतिशत) होते है। क्ले (2–4 प्रतिशत) तथा सिल्ट (1–3 प्रतिशत) की मात्रा बहुत कम है। यह सामान्यतया कैल्शियम कार्बोनेट रहित है। बलुई मृदाओं की जल संचयन क्षमता कम (50 से 80 मि.मी. प्रति मीटर) होती है, परन्तु उसका 80 प्रतिशत भाग पौधों को उपयोग के लिए

उपलब्ध रहता है। टिब्बेदार मृदाएँ वातीय क्षरण के लिए बहुत संवेदनशील है। अपेक्षाकृत अर्न्तटिब्बा क्षेत्रों की मृदा में क्ले तथा सिल्ट की मात्रा क्रमशः 4–6 एवं 3–5 प्रतिशत तक होती है। जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर के अर्न्तटिब्बा क्षेत्रों में जिप्सम वाली मृदा कहीं कहीं मिलती है।

टिपिक टोरीसामेन्ट्स (मैदानी) (54.64 लाख हेक्टर, 28.17%) : थार के रेतीली मैदानों में मिलने वाली यह महीन रेतीली व दुमट रेतीली गठन, भूरे व हल्के भूरे रंग, एक कणीय व मृदु कणीय संरचना की मृदाएँ है। पेडोन 100 से.मी. से अधिक गहरा परन्तु किन्ही विशिष्ट संस्तर का निर्माण नहीं होने से विभिन्न गहराई की मृदा के रंग, गठन, संरचना मे अन्तर नहीं होता है। मृदा में क्ले व सिल्ट की मात्रा कम है। इन मृदाओं की जल संचयन क्षमता (60 से 90 मि.मी. प्रति मीटर) व उर्वरा क्षमता कम होती है। सतह पर रेत की परत, गिरिकाएं व टिब्बे छितरे हुए प्रायः सर्वत्र देखे जाते हैं। थार मरूस्थल मे इन मृदाओ का विस्तार सर्वाधिक है तथा सभी जिलो मे मिलती है। पारंपरिक कृषि विधियों से वर्षा आधारित खरीफ फसलें ली जाती है। जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर व बीकानेर जिलों (300 मि.मी. से कम वर्षा) की मृदाओं मे केलशियम कार्बोनेट चूर्ण मिलता है परन्तु नागौर, सीकर, झुंझुनु व चूरू जिलों (300 मि.मी. से अधिक वर्षा) मे मिलने वाली इन मृदाओं का गठन महीन रेतीला है परन्तु यह लाल भूरे रंग की व केलशियम कार्बोनेट चूर्ण रहित है।

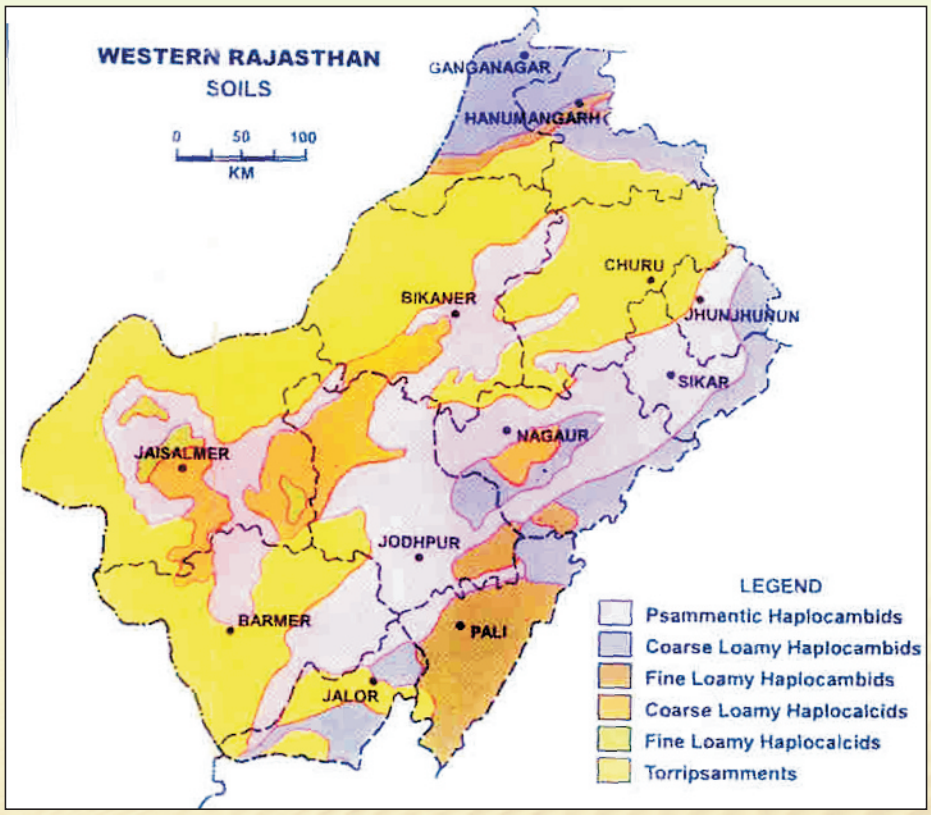

पश्चिमी राजस्थान मे पायी वाली मुख्य मृदाएँ एवं उनका वर्गीकरण

फ्लुवेन्टस (4.340 लाख हेक्टर, 2.24%)

नदियों के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में जमा तलछट से फ्लुवेन्टस का निर्माण होता है। मृदाओं के निरंतर बहाव के कारण समय–समय पर जमा तलछट की प्रकृति मे अंतर व आवश्यक समयाभाव के कारण, मृदा निर्माण प्रक्रिया अवरूद्ध रहने से पेडोन मे विशिष्ट संस्तर का निर्माण नहीं होता। महीन दुमटरेतीली, दुमटरेतीली व दुमट

गठन वाली सब–आर्डर फ्लुवेन्टस के सदस्य सभी जलवायु में मिलते हैं। सबआर्डर फ्लुवेन्टस के शुष्क क्षेत्र के सदस्यों को ग्रेटग्रुप टोरीफलुवेन्टस में वर्गीकृत किया गया है।

टोरीफ्लुवेन्टस : थार में पाई जाने वाली टोरीफलुवेन्टस ग्रेटग्रुप की सदस्य मृदाएँ हर वर्ष/लम्बे समय तक जल मग्न नहीं रहती। लूनी व सहायक नदियों के किनारे स्थित होने के कारण उपलब्ध भूजल से सिंचित फसलें ली जाती है। यह थार क्षेत्र की सर्वाधिक उपज देने वाली मृदाएँ है। ग्रेटग्रुप टोरीफलुवेन्टस का सबग्रुप स्तर पर टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस सदस्य हैं।

टिपिक टोरीफ्लुवेन्टस : टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस को फेमिली स्तर पर कोर्सलोमी टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस व फाइनलोमी टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस मे वर्गीकृत किया गया है।

कोर्सलोमी टिपिक टोरीफ्लुवेन्टस (3.541 लाख हेक्टर, 1.82%) : लूनी व सहायक नदियों के किनारे बाढ क्षेत्र की मृदाएँ आकारिकी में असमान हैं। जोधपुर व नागौर जिलो मे यह पीला भूरा से भूरा रंग, रेतीलादुमट गठन, मृदु उपकोणीय खंड संरचना व 100 से 150 से.मी. गहराई की है। लूनी के किनारे बाड़मेर जिले में रेतीले गठन की व जालोर जिले में सिल्टीदुमट गठन की मृदाओं की प्रचुरता है। नदियों के किनारे भूजल उपलब्ध होने से रबी फसले अच्छी उपज देती है। खरीफ में भी इस क्षेत्र की सभी फसलें ली जाती है।

फाइनलोमी टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस (0.799 लाख हेक्टर, 0.41%) : प्रदेश के उत्तरी भाग में घघर व इसकी सहायक नदियों के द्वारा जमा किये तलछट से बने मैदान में भूरे, धूसर भूरे रंग की गहरी मृदाएँ मिलती है। यह मृदाएँ बहुत महीन रेतीली, रेतीलीदुमट, दुमट व मटियार गठन, कणीय व उपकोणीय खंड वाले ढेले संरचना की है। शुष्क क्षेत्र की अन्य मोटे गठन की मृदाओं की अपेक्षा घग्घर बाढ़कृत मैदान की मृदाओं मे रेत के कण बहुत बारीक है। इन मृदाओं की जल संचयन क्षमता अधिक (180–230 मि.मी./मीटर) है। कहीं कही बाढ़कृत मैदान की मृदाओं के साथ रेतीली टिब्बिया सतह पर छितरी हुई मिलती है। घग्घर बाढ़कृत मैदान की मृदाएँ बहुत उर्वरा है। इन्दिरा गांधी नहर के पानी से सिंचाई तथा उर्वरकों के समुचित प्रबन्ध से यह क्षेत्र अन्न भंडार बनता जा रहा है। इनका विस्तार गंगानगर, हनुमानगढ. जिलों तथा बीकानेर जिले के उत्तरी पश्चिमी भाग में है। सांचोर के नेहड. क्षेत्र में मिलने वाली फाइनलोमी टिपिक टोरी फ्लुवेन्टस सामान्यतया लवणग्रस्त है।

आर्थेन्टस (7.87 लाख हेक्टर, 4.1%)

सब–आर्डर आर्थेन्टस के सदस्य पहाड़ियों के ढलान पर व पथरीला मैदान में मिलने वाली मृदाएँ है। पहाड़ियों के ढलान पर लगातार जलीय क्षरण के कारण सतही मृदा का बहाव जारी रहने के कारण पेडोन में विशिष्ट होराइजन का निर्माण नहीं होता। मृदाएँ कम गहरी व कंकरीली है। सब–आर्डर आर्थेन्टस के सदस्य सभी जलवायु में मिलते है। थार में मिलने वाले आर्थेन्टस को ग्रेटग्रुप टोरी आर्थेन्टस व सबग्रुप लिथिक टोरी आर्थेन्टस में वर्गीकृत किया गया है।

सेन्डी स्केलेटल लिथिक टोरी आर्थेन्टस : यह मृदाएँ कंकरीली दुमटरेतीले से दुमट गठन की 30–50 से.मी. गहराई की है। कृषि के लिए अनुपयुक्त शुष्क क्षेत्र की यह मृदाएँ झाड़ियों से ढ़की रहती है।

★★★

मिट्टी परीक्षण क्यों, कब और कैसे कराएँ

महेश चन्द मीना एवं ब्रह्म स्वरूप द्विवेदी
मृदा एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में मिट्टी परीक्षण सेवा

मिट्टी परीक्षण की बहु आयामी उपयोगिता को देखते हुए वर्ष 1955–56 में मृदा उर्वरता आकलन एवं उर्वरक उपयोग' पर भारत–अमेरिकी समझौते के अन्तर्गत देश में 16 मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई। यह देश में मिट्टी परीक्षण सेवा की शुरूआत थी। इन प्रारंभिक प्रयोगशालाओं में केवल प्राथमिक पोषक तत्वों के परीक्षण की सुविधा थी, तथा नमूना विश्लेषण क्षमता भी काफी कम थी। तभी से मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं की संख्या व क्षमता में लगातार वृद्धि होती रही है और वर्तमान में पूरे देश में इस सेवा का एक विस्तृत तंत्र खड़ा हो गया है। इस समय विभिन्न राज्य सरकारों और उर्वरक उद्योग के अधीन 1200 सें अधिक स्थायी और सचल मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएँ हैं जिनकी कुल वार्षिक नमूना विश्लेषण क्षमता लगभग 12 मिलियन लाख है। इस प्रकार लगभग हर जिले में एक मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला कार्यरत है। इन प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्रों में भी मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई हैं। लगभग सभी कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के कुछ शोध संस्थानों में भी मिट्टी परीक्षण सेवा सीमित स्तर पर उपलब्ध है।

यह विडम्बना ही है कि मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं का इतना विस्तृत जाल होने के बावजूद अधिकांश किसानों के उर्वरक उपयोग का आधार उनका बजट और बाजार में उर्वरकों की उपलब्धता होता है न कि मिट्टी परीक्षण। अतः यह विचारणीय है कि इस वृहद् तंत्र का लाभ किसानों को क्यों नहीं मिल पाता, जबकि तकनीक के रूप में मिट्टी परीक्षण की उपादेयता में कोई संदेह नहीं है। स्पष्ट है कि इस सेवा की नीतियों व कार्य प्रणाली में हर स्तर पर व्यापक सुधार की आवश्यकता है, अन्यथा भविष्य में प्रयोगशालाओं की संख्या में और अधिक विस्तार होने के बावजूद भी किसान और भारतीय कृषि मिट्टी परीक्षण के लाभ से सदैव वंचित ही रहेंगे।

मिट्टी परीक्षण के द्वारा मिट्टी में उपस्थित पौधों के पोषक तत्वों का समुचित प्रबंधन संभव है। विभिन्न मिट्टी–विकारों को दूर करने तथा उर्वरकों का सही प्रयोग करने के लिए मिट्टी परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। फसलों की लाभकारी उपज लेने तथा बाग लगाने के लिए मिट्टी परीक्षण विशेष रूप से लाभदायक है।

मिट्टी परीक्षण के मुख्य उद्देश्य

- विभिन्न मृदा विकारों जैसे अम्लीयता, लवणीयता, क्षारीयता (रेह, कल्लर) तथा प्रदूषण आदि का पता लगाना तथा सुधार के उपायों के सुझाव देना।
- मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का पता लगाना तथा उसी के अनुसार खादों व उर्वरकों की मात्रा की सिफारिश करना।
- उर्वरकों के प्रयोग से होने वाले लाभ का आकलन करना तथा संबंधित भावी योजना में सहायता करना।
- मिट्टी की उर्वरता के मानचित्र बनाना तथा उसी आधार पर क्षेत्र विशेष में मिट्टी की उर्वरा शक्ति में समय के साथ–साथ होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना और उर्वरक वितरण में मार्गदशन करना।

नमूना लेने की सही विधि

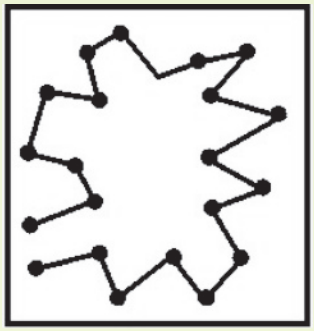

खेत का सर्वेक्षण : सर्वप्रथम खेत का सर्वेक्षण करके उसे ढलान, रंग फसलोत्पादन तथा आकार के अनुसार उचित भागों में बांट लें। इसके बाद प्रत्येक भाग में टेढ़े–मेढ़े चलते हुए 16–20 निशान लगा लें। प्रत्येक खेत का आकार अर्थात् एक नमूना का क्षेत्र एक एकड़ से अधिक न रखें। यदि पूरा खेत बहुत अधिक समानता वाला हो तो एक हेक्टेयर (2½ एकड़) से केवल एक नमूना भी बनाया जा सकता है।

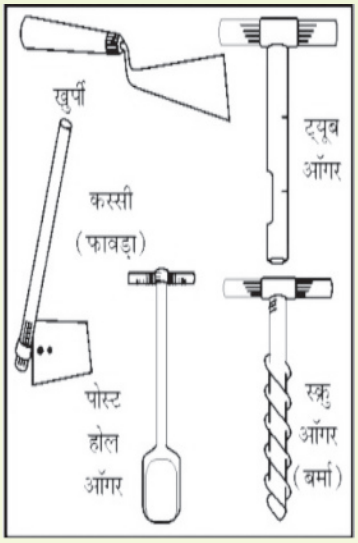

औजारों का चयन : ऊपरी सतह से नमूना लेने के लिए खुर्पी या ट्यूब ऑगर, अधिक गहराई से या गीली मिट्टी से नमूना लेने के लिए पोस्ट होल ऑगर तथा सख्त मिट्टी से नमूना लेने के लिए बर्मे (स्क्रू ऑगर) का प्रयोग करें। गड्ढे खोदने के लिए कस्सी, फावड़े अथवा लम्बी छड़ वाले ऑगर का प्रयोग करें। अगर नमूने में सूक्ष्म तत्वों की जांच की जानी हो तो स्टील वाले ऑगर या जंग रहित खुर्पी व कस्सी का उपयोग किया जाना चाहिए।

नमूने की गहराई : धान्य फसलों, दलहन, तिलहन, गन्ना, कपास, चारे, सब्जियां तथा मौसमी फूलों आदि के लिए ऊपरी सतह (0–15 से.मी.) से 15–20 स्थानों से नमूना लें। बाग या अन्य वृक्षों के लिए 0–30, 30–60 तथा 60–90 से.मी. तक के अलग–अलग नमूने लें। सतह से नमूने लेने के लिए खुर्पी की सहायता से 'V' आकार का गड्ढा 15 से.मी. गहराई तक बनायें तथा एक किनारे से लगभग 2 से.मी. मोटी परत लें। परत लेते समय उसकी मोटाई का विशेष ध्यान रखें जोकि समान होनी चाहिए।

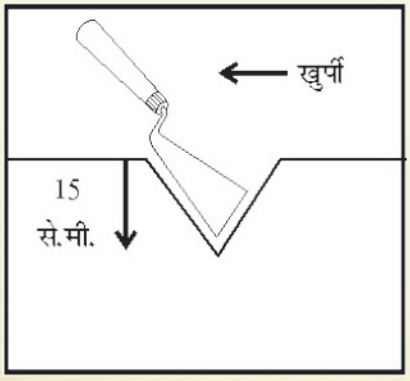

नमूना तैयार करना : एक खेत या भाग से लिये गये सभी नमूनों को एक बिल्कुल साफ सतह पर या कपड़े या पोलीथीन शीट पर रखकर खूब अच्छी तरह मिला लें। पूरी मात्रा को एक समान चौड़ाई में फैला लें तथा हाथ से चार बराबर भागों में बांट लें। आमने–सामने वाले दो भाग हटा दें तथा शेष दो को फिर मिलाकर चार भागों में बांट दें। यह क्रिया तब तक दोहराते रहें जब तक लगभग आधा कि.ग्रा. (400–500 ग्रा.) मात्रा बच जाए।

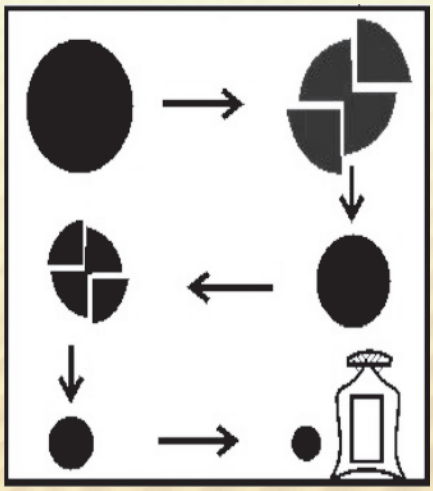

नाम, पता आदि लिखना : अन्त में बची हुई लगभग आधा कि.ग्रा. मिट्टी को कपड़े, कागज़ या पोलीथीन की साफ (नई) थैली में रखकर उस पर किसान का नाम, पता, नमूना संख्या लिख दें। अलग से एक काग़ज़ पर यही विवरण लिखकर थैली के अन्दर भी रख दें। मिट्टी गीली हो तो छाया में सुखाकर थैली में रख दें, तथा यथाशीघ्र (2–3 दिन में ही) प्रयोगशाला में भेज दें।

अन्य आवश्यक जानकारी भी दें : नमूनों पर पहचान चिह्न, नमूने की गहराई, फसल प्रणाली, प्रयोग की गई खादों व उर्वरकों की मात्रा तथा समय, सिंचाई सुविधा, जल–निकास आदि की जानकारी के अतिरिक्त वांछित फसल का नाम भी लिखें।

सावधानियां : नमूना खेत का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए। रंग, ढलान, उर्वरा शक्ति की दृष्टि से भिन्न लगने वाले भागों से अलग–अलग नमूने लें। प्रयोग में लाये जाने वाले औजार, थैलियां आदि बिल्कुल साफ होनी चाहिए। नमूनों को खाद, उर्वरक, दवाइयों आदि के सम्पर्क में न आने दें। नमूना लेते समय सतह पर पड़ा हुआ कूड़ा, खरपतवार, गोबर आदि पहले ही हटा दें। पेड़ों के नीचे, खाद के गड्ढों के आस–पास तथा खेत की मेड़ों से लगभग 2 मीटर दूरी तक नमूने में न लें।

मिट्टी परीक्षण का सही समय : फसल बोने या रोपाई करने के एक माह पूर्व, खाद व उर्वरकों के प्रयोग से पहले ही मिट्टी परीक्षण करायें। आवश्यकता हो तो खड़ी फसल में से भी कतारों के बीच से नमूना लेकर परीक्षण के लिए भेज सकते हैं, ताकि खड़ी फसल में पोषण सुधार किया जा सके।

पुनः परीक्षण कब करायें : साधारण फसलों के लिए एक या दो वर्ष में एक बार मिट्टी परीक्षण अवश्य करा लेना चाहिए। फसल अत्यधिक कमजोर होने पर अथवा किसी विशेष प्रकार के लक्षण प्रकट होने पर तुरंत समाधान के लिए बीच में भी परीक्षण कराया जा सकता है। फसल के बोआई करने से पूर्व फार्म की मिट्टी (तथा सिंचाई जल) का परीक्षण करा लेना बहुत आवश्यक है।

मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएँ कहाँ-कहाँ हैं ?

इस समय देश के लगभग प्रत्येक जिले में मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला है। इसके लिए अपने निकटतम कृषि विकास अधिकारी अथवा विकास खण्ड अधिकारी से सम्पर्क करें। पूसा संस्थान स्थित मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में किसान तथा उद्यमी देश के किसी भी भाग से कभी भी सम्पर्क करके मिट्टी परीक्षण तथा वैज्ञानिकों द्वारा दी जा रही जानकारी का पूरा लाभ उठा सकते हैं।

क्या मिट्टी परीक्षण स्वयं भी कर सकते हैं ?

कुछ परीक्षणों के लिए मिट्टी परीक्षण किट का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इसके द्वारा केवल सीमित जानकारी ही मिल पाती है। परीक्षण परिणामों की व्याख्या का सबसे महत्वपूर्ण कार्य किसान स्वयं नहीं कर सकते। अतः पूरी जानकारी तथा अधिक लाभ के लिए यथा संभव मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं से ही सम्पर्क करना चाहिए।

सिंचाई जल के परीक्षण की आवश्यकता

यदि सिंचाई जल लवणीय है तो खाद व उर्वरक के संतुलित प्रयोग के बावजूद भी अच्छी पैदावार लम्बे समय तक नहीं मिल पाती। साथ ही बहुमूल्य मिट्टी लवणीय या क्षारीय बन सकती है। पहले से ही बनी लवणीय या क्षारीय मिट्टी के सुधार के लिए भी अच्छी गुणवत्ता वाले सिंचाई जल की ही आवश्यकता होती है, अन्यथा सुधार असंभव हो जाता है। अतः मिट्टी के स्वास्थ्य पर सिंचाई जल का पभाव जानने के लिए भी जल की गुणवत्ता का सही–सही ज्ञान होना अति आवश्यक है। नया नलकूप (ट्यूब वेल) लगाते समय ही परीक्षण करा लेने से भविष्य में होने वाली बड़ी मुसीबत से बचा जा सकता है। सिंचाई जल का नमूना बिल्कुल साफ बोतल में लें। इसके लिए बोतल को उसी जल से कई बार धोने के बाद लगभग आधा लीटर मात्रा लें तथा बोतल पर नाम, पता, दिनांक आदि लिखकर जितनी जल्दी संभव हो (अधिकतम 2–3 दिन के अन्दर) परीक्षण के लिए प्रयोगशालाओं मे भेज दें।

मिट्टी परीक्षण के मापदंड

मिट्टी का परीक्षण निम्न मापदंडों के आकंलन के लिए किया जाता है, जैसे :

- **समस्या से संबंधित :** लवणता, अम्लता, क्षारीयता व प्रदूषण की जांच की जाती है जो फसलोत्पादन को प्रभावित करती है।
- **पोषक तत्वों की उपलब्धता :** मिट्टी परीक्षण का यह मुख्य मापदंड है जिसमें विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा का पता लगाया जाता है। जैसे : नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, गंधक, जस्ता, लोह, कॉपर, मैग्नीज़ व बोरोन आदि।
- **सहायक परीक्षण :** इस वर्ग में वे मापदंड आते हैं जो पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं तथा उर्वरक व अन्य सुधारक की मात्रा इन पर निर्भर करती है। इसमें कैल्सियम कार्बोनेट एवं मिट्टी का गणाकार आदि शामिल हैं।
- **विशेष परीक्षण :** इस प्रकार के परीक्षण विशेष परिस्थितियों में किए जाते हैं, जैसे कि मिट्टी के स्वास्थ्य संबंधी कुल जैविक मास बिमारियों के कारक सूत्रकृमि व कुछ रसायन परीक्षण जो कि फसलोंत्पादन में बहुत हानि पहुंचाते हों।

मिट्टी परीक्षण और व्याख्या

मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा परीक्षण के बाद, रिपोर्ट तैयार करके, उनकी व्याख्या एवं उपयोग निम्न प्रकार करें। मिट्टी परीक्षण के आंकडों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके विशेष सिफारिशें की जा सकती हैं जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाकर उससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

विद्युत चालकता (1:2 के अनुपात में) की व्याख्या

विद्युत चालकता	व्याख्या	सिफारिशें
< 1.0	सामान्य मिट्टी, किसी भी फसल के लिए उपयुक्त	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है
1.0–2.0	सीमांत लवणीणता है, फसलों के बीज अंकुरण के लिए हानिकारक हो सकते हैं	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता हो सकती है (हल्की मिट्टी में वांछनीय)
> 2.0	अत्यधिक लवणीय है, फसलों के लिए हानिकारक हो सकते हैं	भारी मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की जरूरत है। विशेष रूप से जब संवेदनशील व अर्ध–लवण–सहनशील फसलें उगानी हों।

मिट्टी अभिक्रिया ;1:2 के अनुपात में) की व्याख्या

अभिक्रिया	व्याख्या	सिफारिशें
< 6.0	अम्लीय मिट्टी है, कुछ फसलों के लिए अनुपयुक्त हो सकती है	चूना व कार्बनिक खादों से सुधार की आवश्यकता होगी।
6.0–8.5	सभी फसलों के लिए उपयुक्त है	कोई सुधार की आवश्यकता नहीं है।
8.6–9.0	क्षारीय है, कुछ फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है	भारी मिट्टियों में सुधार की आवश्यकता होगी। हल्की मिट्टी में वांछनीय। इसके लिए जिप्सम व कार्बनिक खादों के उपयोग की आवश्यकता है।
> 9.0	अत्यधिक क्षारीय हैं, फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है	मिट्टियों में निश्चित रूप से सुधार की आवश्यकता होगी। जिसके लिए जिप्सम, हरी खाद व कार्बनिक खादों का उपयोग किया जाना चाहिए।

मिट्टी उर्वरा (प्राथमिक तत्वों) की व्याख्या

मिट्टी उर्वरा	जैविक कार्बन (%)	उपलब्ध पोषक तत्व (कि.ग्रा./हे.)			व्याख्या
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	
निम्न	< 0.50	< 280	< 11	< 120	पोषक तत्वों की कमी
मध्यम	0.5–0.75	280–560	11–25	120–280	पोषक तत्व सामान्य है
उच्च	> 0.75	> 560	> 25	> 280	पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक है

गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्तर नीचे दिए गए मापदंडों से कम होने पर संबंधित उर्वरक के इस्तेमाल की आवश्यकता हैं।

पोषक तत्व	मिट्टी में कमी के स्तर (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)
गंधक	10
लोह	4.5
मैग्नीज	2.0
जस्ता	0.6
बोरोन	0.5
कॉपर	0.2
मॉलीब्डेनम	0.1

उर्वरकों की संस्तुतियां

मिट्टी उर्वरता के निम्न, मध्यम और उच्च स्तर के आधार पर की जाने वाली संस्तुतियाँ प्रायः किसानों के लिए कम उपयोगी होती है। चूँकि इनमें उपज लक्ष्य का ध्यान नहीं रखा जाता, अधिक उपज के लिए यह संस्तुतियाँ अपर्याप्त साबित होती हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की मिट्टी परीक्षण व फसल अनुक्रिया पर अखिल भारतीय समन्वित शोध परियोजना के अंतर्गत विभिन्न फसलों के लिए उपज लक्ष्य आधारित उर्वरक संस्तुतियाँ विकसित की गयी है। उदाहरणार्थ गेहूँ की 5 टन प्रति हेक्टेयर उपज के लिए गोबर की खाद दिये जाने की दशा में विभिन्न उर्वरता स्तर की मिट्टी के लिए उर्वरक संस्तुतियां रेखाचित्र–1 में दर्शायी गई हैं। यद्यपि इस प्रकार के उपज लक्ष्य आधारित त्वरित गणक सभी मिट्टियों एवं फसलों के लिए अभी उपलब्ध नहीं है, परन्तु जहाँ भी यह उपलब्ध है मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा इनका इस्तेमाल किया जाना चाहिए। व्यापक कमी वाले कम से कम छह पोषक तत्वों के लिए मिट्टी नमूनों का विश्लेषण करके, अगर गौण व सूक्ष्म पोषक तत्कों का स्तर उपर दिए गये स्तर से कम हो तो उर्वरक संस्तुतियों में गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी आवश्यकतानुसार समावेश करना आवश्यक है। ऐसी संस्तुतियां ही सम्पूर्ण व संतुलित कही जायेंगी।

मिट्टी परीक्षण आधारित उर्वरक उपयोग: अधिक उपज व आर्थिक लाभ की गारंटी

मृदा स्वास्थ्य, विशेषतः उर्वरता एवं मिट्टी विकारों के आकलन हेतु मिट्टी परीक्षण एक सर्वमान्य व प्रामाणिक वैज्ञानिक तकनीक है। इससे पर्याप्त एवं संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों तथा मिट्टी सुधारकों की संस्तुति कर पाना संभव होता है। विभिन्न मिट्टियों एवं फसल प्रणलियों में अब तक किए गये अनेक प्रयोगों से यह भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि मिट्टी परीक्षण आधारित पोषक तत्व प्रबंधन से उर्वरक प्रयोग की अन्य विधाओं की अपेक्षा, अधिक उपज और आर्थिक लाभ मिलता है। गुड़गाँव (हरियाणा) में किसानों के खेत पर हाल ही में सम्पन्न हुए प्रयोगों से इस बात की पुष्टि होती है (रेखाचित्र–2)। संकर बाजरा–गेहूँ फसल प्रणाली में किए इन प्रयोगों में मिट्टी परीक्षण के आधार पर उच्च उत्पादकता के लिए अलग–2 खेतों में चार से छह पोषक तत्वों की

आवश्यकता सामने आयी जबकि किसान बाजरे में केवल नाइट्रोजन और गेहूँ में नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की अपर्याप्त मात्राा का इस्तेमाल कर रहे थे। यहाँ तक कि राज्य कृषि विभाग द्वारा की गई संस्तुतियाँ भी अपर्याप्त और असंतुलित पायी गईं। ऐसे में जब उच्च उपज लक्ष्य के लिए वांछित सभी पोषक तत्वों की आपूर्ति की गई तो न केवल फसलोत्पादकता में बल्कि शुद्ध लाभ में भी चमत्कारिक वृद्धि हुई। इसके अलावा मिट्टी उर्वरता–स्तर में भी अपेक्षित सुधार देखा गया। इससे पूर्व विभिन्न राज्यों में स्थित शोध–प्रक्षेत्रा पर धान–गेहूँ और धान–धान फसल प्रणालियों में भी ऐसे ही प्रयोग किए जा चुके हैं जिनके परिणाम भी कमोबेश इसी प्रकार के रहे हैं।

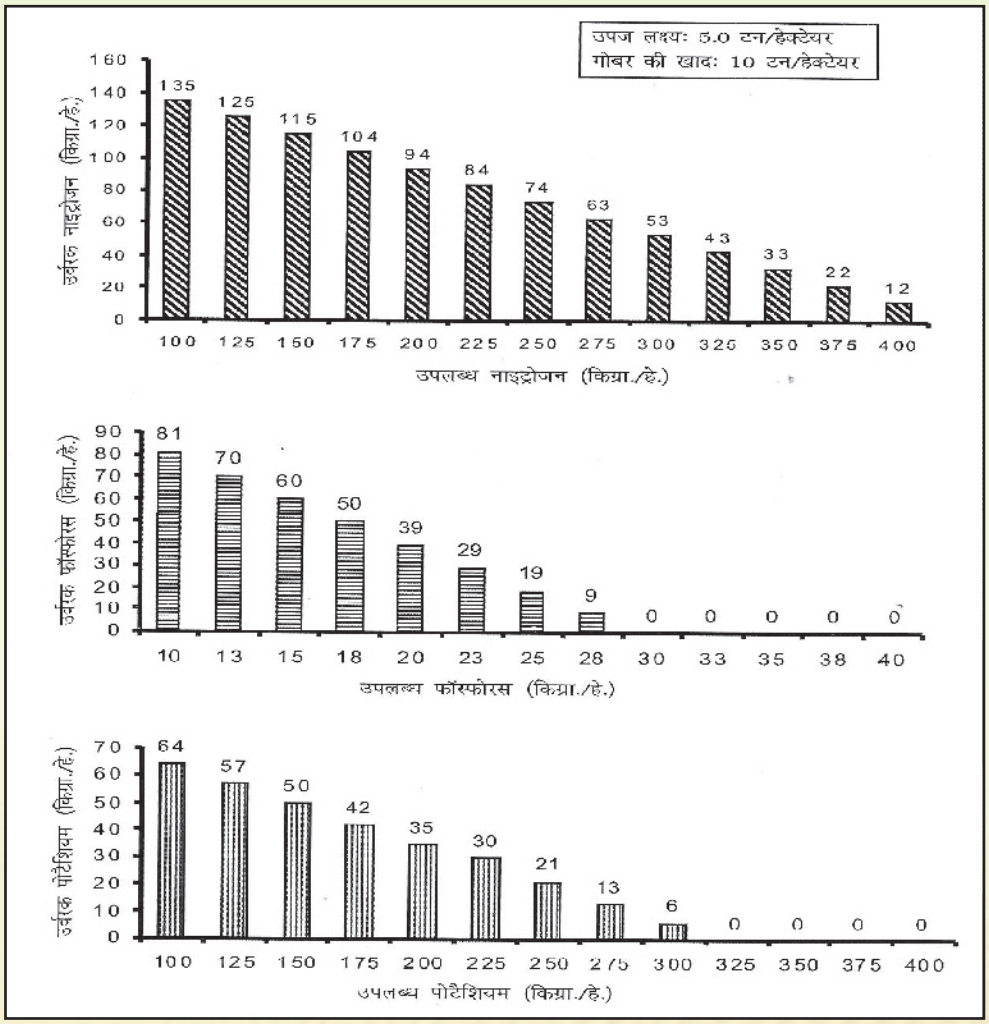

रेखाचित्र-1: राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की बलुई दोमट मृदा में गेहूँ के लिए उपज लक्ष्य आधारित उर्वरक संस्तुतियाँ

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग का तात्पर्य नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटैशियम की किसी निश्चित अनुपात में आपूर्ति करना कदापि नहीं है। वास्तव में मिट्टी परीक्षण के आधार पर जिन पोषक तत्वों की कमी परिलक्षित हो, फसल की पोषक तत्वीय मांग के अनुसार उन सभी तत्वों की पर्याप्त मात्रा, सही स्रोतों द्वारा, सही समय पर और सही तरीके से देना प्रक्षेत्र व फसल विशेष के लिए संतुलित उपयोग कहा जायेगा। मिट्टी परीक्षण आधारित पोषक तत्व प्रबंधन का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इससे उर्वरक जैसे मँहगे कृषि उपादान के अनावश्यक प्रयोग से भी बचा जा सकता है।

पूसा संस्थान की मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला की विशेषताएँ

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (पूसा), नई दिल्ली स्थित मृदा, पौधा व जल परीक्षण केन्द्र विश्वसनीय परीक्षण सेवा के लिए प्रसिद्ध है। यहां मिट्टी व सिंचाई जल के अतिरिक्त कार्बनिक खाद तथा पौधों के विश्लेषण की सुविधा भी उपलब्ध है। इस प्रयोगशाला में विभिन्न संस्थाओं से सेवारत अधिकारियों के लिए प्रतिवर्ष मिट्टी परीक्षण प्रशिक्षण का आयोजन भी किया जाता है। परीक्षण सम्बन्धी जानकारी तथा आवश्यक कदम उठाने के लिए यहां मृदा वैज्ञानिकों से सीधा सम्पर्क हो जाता है तथा वैज्ञानिक खेती हेतु या नई प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए समुचित सुझाव मिल जाते हैं।

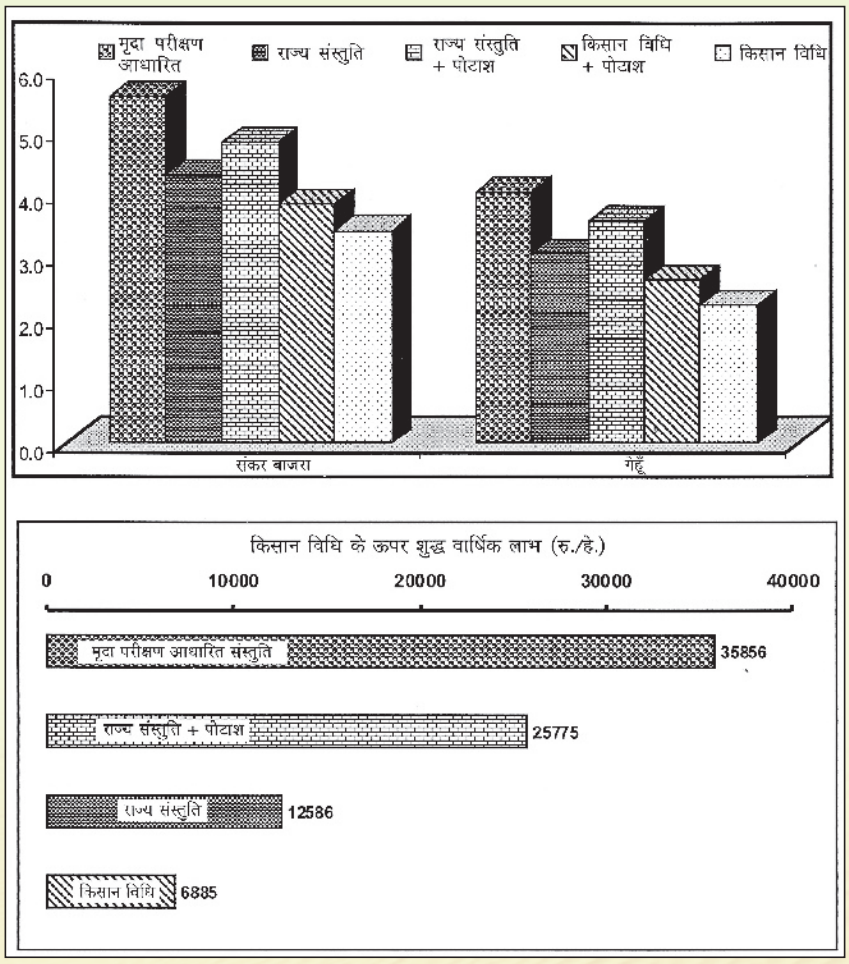

रेखाचित्र-2: मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रयोग से बाजरा-गेहूँ फसल प्रणाली की उत्पादकता एवं आर्थिक लाभ में वृद्धि।

★★★

जिन्दगी जीने का मकसद खास होना चाहिए।
अपने आप में विश्वास होना चाहिए।।
जीवन में खुशियों की कोई कमी नहीं होती।
बस जीने का अंदाज होना चाहिए।।

मैग्निशियम नैनो कणों का जैविक संश्लेषण और उसके अनुप्रयोग

जे.सी. तरफदार एवं इन्दिरा राठौड़

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

यद्यपि नैनो कण बनाने की बहुत सी भौतिक और रासायनिक विधियाँ प्रचलित हैं जिनसे बहुत कम समय में विभिन्न आकार और प्रकार के नैनो कण संश्लेषित किये जा सकते है लेकिन इनसे विषाक्त और हानिकारक अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होते है जो वातावरण के लिए तो नुकसानदायक है साथ ही साथ मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते है। ये विधियॉ बहुत खर्चीली भी है। इसलिए वैज्ञानिकों को नैनो कणों के जैविक संश्लेषण की आवश्यकता महसूस हुई, यह विधि विश्वसनीय है तथा वातावरण के साथ मित्रवत् भी है। इस विधि से नैनो कण बनाने में लागत भी 2 से 4 गुणा कम आती है। जैविक प्रक्रम से उत्पन्न नैनो कण विभिन्न मामलों में रासायनिक नैनो कणों से बेहतर है। जैविक अनुप्रयोगों में तो जैव–संश्लेषित नैनो कण ही अधिक उपयुक्त है।

यहाँ हम जैव–संश्लेषित मैग्निशियम नैनो कणों की चर्चा कर रहे है। चूँकि मैग्निशियम विभिन्न पादप एन्जाइम और हरित लवक संरचना में एक मुख्य घटक हैं। इसलिए ये पादपों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को बढ़ाकर सौर ऊर्जा को अधिक मात्रा में अवशोषित कर सकता है। इस क्रिया विधि के बढ़ने से पादप मूल से स्त्रावित द्रव्यों की मात्रा भी बढ़ जाएगी जिससे मूलावरण में उपस्थित पोषक पदार्थ के अवशोषण की क्षमता भी बढ़ जाएगी।

मैग्निशियम नैनो कणों के उपयोग से पादप और सूक्ष्म जीवों द्वारा स्त्रावित लाभदायक एन्जाइमों की मात्रा को भी बढ़ाया जा सकता हैं। जिससे कि ये स्त्रावित मूल द्रव्य नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर आदि पोषक तत्वों का विघटन कर पादपों के पोषण के लिए इनको सहज अवस्था उपलब्ध करवाते है। इस प्रकार मैग्निशियम नैनो कणों के अनुप्रयोग से पौधों के पोषण के लिए सल्फर, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन और पोटेशियम की उपलब्धता में मात्रात्मक वृद्धि की जा सकती है।

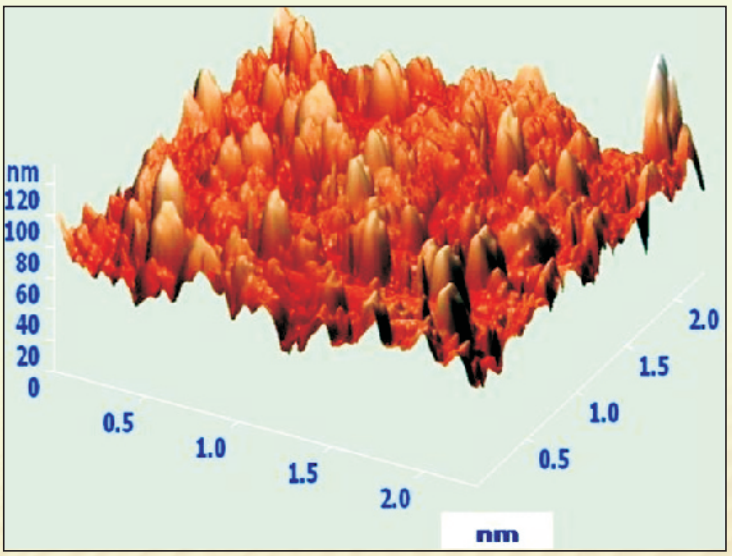

मैग्निशियम नैनो कणों का परमाणवीय बल सूक्ष्मदर्शीय

मरू प्रदेश में सौर ऊर्जा की प्रचुरता हैं लेकिन कुल सौर ऊर्जा का केवल 1% ही पौधों द्वारा उपयोग किया जाता है, शेष भाग ऐसे ही बेकार चला जाता है। मैग्निशियम नैनो कणों के उपयोग से सौर ऊर्जा के अवशोषण की क्षमता में वृद्धि की जा सकती है क्योंकि हरित लवक की संरचना में मैग्निशियम एक मुख्य घटक है, इसलिए ये सौर ऊर्जा को अधिक समय तक बाँध सकता है। नैनो आकार के मैग्निशियम कण सरलता से पत्तियों को भेद सकते है जिससे कि प्रकाश संश्लेषण की गतिविधि बढ़ जाएगी जिससे पौधों द्वारा सौर ऊर्जा का ज्यादा से ज्यादा उपयोग हो सकेगा।

स्पजिलस ब्राजेलिन्सिस नामक एक विशिष्ट फफूँद को मरू प्रदेश की मृदा से पृथक किया गया। इस फफूँद से बॉल के आकार की कॉलोनियाँ एक विशेष प्रकार के पोषक पदार्थ के विलयनो में विकसित की गई। इन फफूँद के समूहो से आसुत जल में बाह्य कोशिकीय प्रोटीन को इकट्ठा किया गया। इसके बाद मैग्निशियम

लवण के तनु विलयन को इस प्रोटीन से उपचारित करवाया गया। 24 घण्टे के इनक्यूबेशन के बाद इस विलयन में मैग्निशियम के नैनो कण पाये गये।

उपकरण इलैक्ट्रॉन संप्रेषण सूक्ष्मदर्शी की भी आवश्यकता है। इस उपकरण से नैनो कणों के सटीक आकार प्रकार का त्रिविमिय चित्र मिल जाता हैं और यह प्रमाणित हो जाता है कि दिये गये नमूने में नैनो कण विद्यमान है। इससे नैनो कणों की विभिन्न प्रकार की आकृतियों का भी पता चलता है। इसके बाद इलैक्ट्रॉन विस्तारित स्पेक्ट्रोस्कॉपी की सहायता से दिये गये नमूने में नैनों कणों, प्रतिशत, मात्रा का भी पता लगा सकते है।

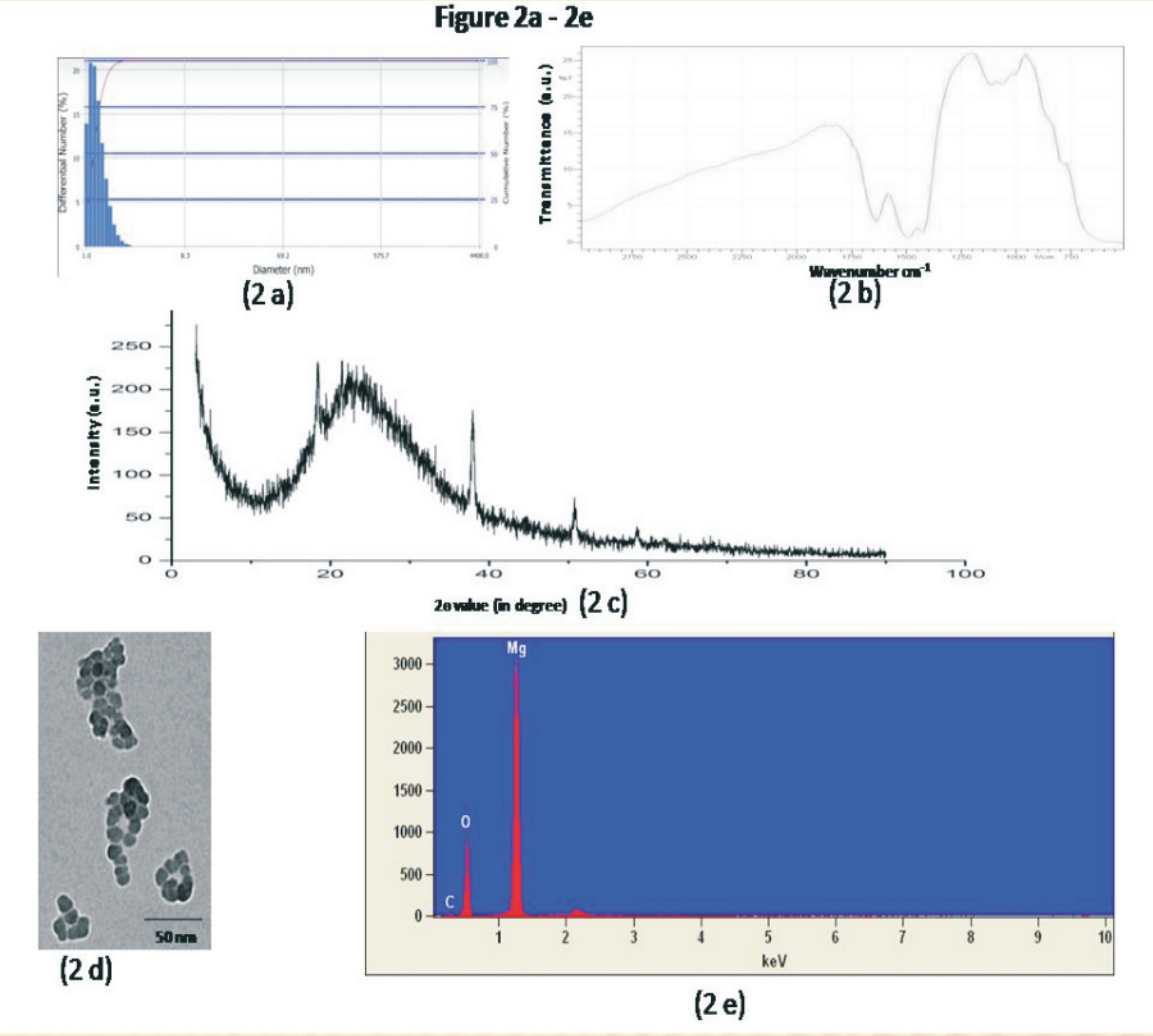

मैग्निशियम नैनो कणों की विभिन्न यन्त्रों द्वारा ली गई आकृतियां

एक अन्य तकनीक जिसे कि फॉरियर अवरक्त रूपान्तरण स्पेक्ट्रॉस्कॉपी कहते है। यह क्रियात्मक समूहों के बंध के स्वभाव के बारे में बताता है। जिससे यह पता चलता हैं कि नमूने में उपस्थित नैनो कण किस क्रियात्मक समूह के है। नैनो कणों के पुष्टिकरण करने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि नैनो कणों को एयरोसॉल तकनीक से छिड़काव किया जाए, जिससे कि नैनो कण व्यर्थ न जाए। नैनो कणों की आकृति भी बेहतर भेदन क्षमता के लिए महत्वपूर्ण है। मैग्निशियम नैनो कण घन–आकृति हो तो तेजी से पादप पत्ती में घुस

जाते है। इसके लिए (अरब का बीसवां हिस्सा) 20 पीपीएम सान्द्रता अधिक उपयुक्त मानी जाती है। नैनो विलयन में हैं या नहीं इसको प्रमाणित करने की विभिन्न तकनीके उपलब्ध है।

इनमें से कणों के आकार को विश्लेषित करने के लिए एक यन्त्र को प्राथमिकता से उपयोग में लेते है। जिसे कण विश्लेषक यन्त्र कहते है। इस यन्त्र के द्वारा हम यह पता करते हैं कि विलयन में उपस्थित कण कितने नैनो मीटर माप के है। नैनो कणों के आकार के साथ यह उपकरण कणों के स्थायित्व तथा इनकी एकल अवस्था का भी अनुमापन करता है।

यदि ये कण आपस में जुड़ कर संयुग्मित हो जाते है तो इनका आकार बड़ा हो जाता है। इसलिए नैनो आकार में बनाए रखने के लिए इनको एकल अवस्था रखना आवश्यक है। इसके लिए एक अन्य उपकरण जिसे कि पराध्वनिक यन्त्र कहते हैं का उपयोग किया जाता है। यह यन्त्र ध्वनि की गति से भी तेज गति से कम्पन्न करता है। जिससे किये सभी अतिसूक्ष्म कण (10^{-8} से.मी.) एक दूसरे से पृथक हो जाते है और एकल अवस्था में आ जाते है। इस परिणाम को साबित करने के लिए और अधिक अध्ययन की आवश्यकता होती है।

इन नैनो कणों का गेहूँ के पौधे की पत्तियों पर छिड़काव किया गया। मैग्निशियम नैनो कणों के छिड़काव से गेहूँ के पौधे में मानक गेहूँ के पौधे की तुलना में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि देखी गई।

विभिन्न कारकों में वृद्धि निम्नानुसार हैः–

पत्तियों द्वारा सौर ऊर्जा के अवशोषण में 7–10% की वृद्धि देखी गई और पादप में हरित लवक में भी 17% की वृद्धि हुई। पादप के शुष्क द्रव्य भार में 33% तक की वृद्धि पायी गई। गेहूँ के कुल उत्पादन में 28% तक की वृद्धि पायी गई। ये परिणाम यह संकेत देते है कि भविष्य में मैग्निशियम नैनो कणों के उपयोग से फसलों के उत्पादकता की मात्रा में महत्वपूर्ण वृद्धि की अपार सम्भावनाएँ है। नैनो पोषक पदार्थ रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कहीं अधिक सस्ते और सुरक्षित है। ये मृदा की उर्वरा शक्ति को भी बनाए रखते हैं।

★★★

अगर कुछ करना चाहते हो तो अच्छा काम करो

सेवा करों	–	माँ बाप की	दूर रहो	–	गुनाहो से
ख्याल रखो	–	पड़ोसियों का	सुधार करो	–	अपने आप का
आदर करो	–	बड़ों का	भरोसा करो	–	भगवान का
दोस्ती करो	–	ईमानदारों से	कद्र करो	–	जिन्दगी की
सब्र करो	–	मुसीबतों से	बचा करो	–	झूठ से

कृषिगत फसलों में सिंचाई की नूतन विधियाँ एवं मृदा सुधार

अनिल कुमार मिश्रा, सुष्मा सुधीश्री , नीलम पटेल एवं रविन्दर कौर

परियोजना निदेशक, जल प्रौद्ययोगिकी केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पौधों की उचित वद्धि व विकास के लिए जल आवश्यक है। जल जीवद्रव्य का अभिन्न भाग है तथा प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में प्रयुक्त होता है। जल पौधों की कोशिकाओं की स्फीति को बनाए रखता है और इस तरह पौधे की बढ़वार के लिए आवश्यक है।

- वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में पौधों द्वारा उड़ाए गए जल की क्षति–पूर्ति के लिए जल आवश्यक है।
- जल, भूमि में पोषक पदार्थों को घुलनशील बनाता है तथा पोषक तत्वों के उद्ग्रहण तथा पोषक पदार्थों के स्थानांतरण में सहायक होता है।
- इसके अतिरिक्त फसलोत्पादन में भूमि की तैयारी, लवण निक्षालन तथा पाले से बचाव के लिए भी जल आवश्यक है। प्रत्येक भूमि की एक निश्चित जल–धारण क्षमता होती है।
- वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन की क्रिया भूमि में संचित जल का ह्रास होता है जिसकी क्षतिपूर्ति के लिए जल की जो व्यवस्था की जाती है उसे सिंचाई कहते हैं।
- फसलोत्पादन में जल एक आगत के रूप में प्रयुक्त होता है और पूरी लागत का एक हिस्सा जल–प्रबन्धन पर व्यय होता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि प्राप्त सिंचाई जल के उपयोग की उत्तम व्यवस्था की जाए।

यह व्यवस्था निम्न कारकों पर आधारित होती है:

- सिंचाई की संख्या
- सिंचाई की गहराई व जल की माप
- सिंचाई की विधि
- वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन को प्रभावित करने वाले कारक
- फसल–विशेष की सिंचाई विषयक आवश्यकता
- लवणीय व क्षारीय भूमि में सिंचाई जल प्रबन्धन
- सिंचाई जल की गुणता
- सिंचाई व उर्वरक उपयोग में संबंध

सिंचाईयों की संख्या

किसी फसल में सिंचाई कितनी बार और कब की जाए, यह एक जटिल प्रश्न है। इसका निर्धारण स्थान विशेष की जलवायु, भूमि व फसल की किस्म पर निर्भर करता है। विभिन्न फसलों की जल की मांग अलग–अलग होती है। उथली तथा अल्प जड़ों वाली फसलों में अधिक संख्या में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। बलुई तथा उथली भूमि में फसलें उगाने पर भी अधिक संख्या में सिंचाई आवश्यक होगी। इसी भांति शुष्क क्षेत्रों वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा अधिक जल–ह्रास के कारण अधिक संख्या में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा ऋतु में उगाई गई फसलों में सिंचाई की संख्या वर्षा की मात्रा तथा उसके वितरण पर निर्भर करेगी। जिन क्षेत्रों में भूमि जल–स्तर भूमि सतह से पास होगा, पानी के कोशिकीय उन्नयन के फलस्वरूप फसलों मे कम मात्रा में सिंचाई की आवश्यकता होगी। फसलों में सिंचाई कब की जाए, इसका निर्धारण मृदा जल की मात्रा, पौधों की जल की आवश्यकता तथा जलवायु के आधार पर किया जा सकता है।

सिंचाई की गहराई व जल की माप

फसलों में उचित मात्रा में पानी डालने के लिए सिंचाई जल को मापना आवश्यक है। जल की माप के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण प्रयोग में लाए जाते है जिनमें रंध्र, वीयर, जलमापक तथा अवनलिकाएं मुख्य हैं। हमारे देश में नहरी क्षेत्रों में सिंचाई जल को मापने की व्यवस्था नही के बराबर है। सरकारी नलकूपों के साथ 'वी' नॉच अवश्य लगाए गए है, जिनकी सहायता से पानी का प्रवाह सरलता से मापा जा सकता है।

सिंचाई की विधियाँ

सिंचाई की अनेक विधियाँ प्रचलित है। इनका चुनाव भूमि की किस्म व ढ़ाल, फसल की किस्म तथा जल स्त्रोत व प्रवाह की मात्रा के आधार पर किया जाता है। सिंचाई की विधियों का मुख्य वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

(क) सिंचाई की प्राचीन विधियाँ, (ख) सिंचाई की आधुनिक विधियाँ

सिंचाई की प्राचीन विधियाँ

- पृष्ठीय सिंचाई
- अवभूमि सिंचाई
- छिड़काव विधि से सिंचाई
- बूंद सिंचाई

सिंचाई की प्राचीन विधियाँ

पृष्ठीय सिंचाई : यह सिंचाई की सबसे अधिक प्रचलित विधि है। इस विधि में फसलों को सिंचाई जल कई प्रकार से दिया जाता है। जैसे भूमि की सतह पर बहाकर, क्यारियों मे एकत्र कर अथवा नालियों द्वारा।

(अ) आप्लावन या तोड़ सिंचाई : इस विधि से सिंचाई मुख्यतः उन अवस्थाओं में की जाती है जहाँ सिंचाई–जल सस्ता हो, जल–प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक हो तथा भूमि समतल हो।

(ब) नकवार सिंचाई : इस विधि से सिंचाई करने के लिए खेत को काफी लंबी व कम चौड़ी पट्टियों में बांट लिया जाता है। दो पट्टियाँ एक दूसरे से एक हल्की मेंड़ द्वारा अलग होती है। यह विधि उन क्षेत्रों में अपनाई जा सकती है जिनमें भूमि का ढाल प्रायः 1.0 प्रतिशत से कम हो तथा जल प्रवाह अधिक हो।

(स) क्यारियों में सिंचाई : इस विधि से सिंचाई करने के लिए खेत को छोटी–छोटी आयताकार क्यारियों में बांट लिया जाता है। प्रत्येक क्यारी सिंचाई की नाली से जुड़ी होती है। यह विधि गेंहूँ तथा कपास जैसी फसलों में सिंचाई के लिए उन स्थितियों में बड़ी लोकप्रिय है जहॉ खेत समतल होते है। इस विधि से सिंचाई करने के लिए क्यारियों का आकार भूमि की किस्म तथा जल प्रवाह पर निर्भर करता है। पानी के छोटे स्त्रोतों के लिए क्यारियों का आकार छोटा रखा जाता है। इसी तरह बलुई भूमि में छोटी क्यारियॉ बनाई जाती है और मटियार भूमि मे बड़ी।

(द) कूंड–सिंचाई : आलू, भाकरकन्द, गन्ना, चुकन्दर जैसी मेंड़ों पर उगाई जाने वाली फसलों में सिंचाई की यह विधि बहुत प्रचलित है यह विधि 0.3 प्रतिशत से अधिक ढाल वाली भूमि के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि अधिक ढाल पर इस विधि को अपनाने में मृदा अपरदन का भय रहता है। इस विधि से सिंचाई करने के लिए कूंड़ की दूरी फसल की किस्म, भूमि की किस्म तथा भूमि की अंतःस्यंदन की दर पर निर्भर करती है। कूंड–सिंचाई विधि से मक्का और कपास की फसलों की पैदावार सारणी–1 में प्रदर्शित की गई है।

अव भूमि सिंचाई : इस विधि से सिंचाई केवल उन्ही क्षेत्रों में संभव है, जहॉ भूमि में कुछ गहराई पर कड़ी परत होने से जल, भौम जलस्तर से लगभग एक या डेढ़ मीटर पर सारे साल बना रहता है। इस विधि में खेत में

निश्चित दूरी पर उपयुक्त गहराई की मुख्य व सहायक नालियाँ बना ली जाती हैं। भौम जलस्तर वांछित गहराई पर बनाए रखने के लिए आवश्यकतानुसार इन्हीं नालियों में पानी चलाया जाता है। भूमि–जलस्तर से केशिकीय उन्नयन द्वारा पानी ऊपर की तरफ बढ़ता है और इस तरह वह फसल की जड़ों को प्राप्त होता है। अवभूमि सिंचाई की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि भूमि पारगम्य हो। इस विधि में नालियाँ कितनी दूरी पर बनाई जाएं तथा भूमि जलस्तर की गहराई क्या हो। यह भूमि की किस्म, उसकी जल–संचारण क्षमता तथा फसल की किस्म पर निर्भर करती है।

सारणी 1. कूंड-सिंचाई विधि से मक्का और कपास की फसलों की पैदावार

फसल	फसल परीक्षण	हर कूंड में सिंचन	एकान्तर कूंड में सिंचन
मक्का	जल की बचत (%)	–	03.0
	पैदावार (क्विं./हे.)	41.3	40.6
	जल उपयोग दक्षता (क्विं./हे.–से.मी.) दक्षता	25.8	36.7
कपास	जल की बचत (%)	–	27.1
	पैदावार (क्विं./हे.)	20.5	19.8
	जल उपयोग दक्षता (क्विं./हे.–से.मी.) दक्षता	6.0	8.0

छिड़काव विधि से सिंचाई : इस विधि में नलिकाओं से जुड़े हुए छिड़काव यंत्र तक दाब के द्वारा पानी भेजा जाता है जिसके फलस्वरूप फब्वारे द्वारा सिंचाई की जाती है। इस विधि से छिड़काव की दर इस तरह से नियंत्रित की जाती है जिससे भूमि सतह पर पानी का बहाव न हो पाए और अधिक से अधिक उसी दर से पानी दिया जाए जिस दर से भूमि उसे सोख सकती है। ऊँची–नीची भूमि में जहॉ पर अन्य विधियों से सिंचाई करना संभव नहीं है। यह विधि अपनाई जा सकती है।

सिंचाई की आधुनिक विधियाँ

बब्लर सिंचाई विधि

स्प्रिंक्लर सिंचाई विधि

स्प्रिंक्लर सिंचाई विधि : इस विधि में जल को बहुत अधिक दबाव पर भेजा जाता है तथा इसमें वर्षा जैसी स्थिति लाने की कोशिश की जाती है। इस विधि में जमीन को समतल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सारणी–2 में विभिन्न सिंचाई विधियों से प्राप्त होने वाली दक्षता को दिखाया गया है।

सारणी 2. विभिन्न सिंचाई विधियों की तुलनात्मक दक्षता

फसल	सिंचाई विधि	पैदावार (क्विं./हे.)	जल उपयोग दक्षता (हे./से.मी.)
मूंगफली	बोर्डर	23.2	25.85
	चेक–बसिन	23.8	26.45
	स्प्रिंक्लर	28.9	46.8
मिर्च	कूंड	18.87	45.03
	स्प्रिंक्लर	24.23	81.57

स्प्रिंक्लर सिंचाई विधि

रैन गन सिंचाई विधि

सेंटर पिवट सिंचाई की विधि

उप सतही बूंद-बूंद सिंचाई की विधि

सतही बूंद-बूंद सिंचाई : सिंचाई की इस विधि में पानी दाब द्वारा प्लास्टिक की पतली नलिकाओं में जिनमें थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बूंद–बूंद पानी निकलने के लिए कपाट लगे होते हैं, भेजा जाता है। यह विधि मुख्यतः उन क्षेत्रों के लिए हितकर पाई गई है जहाँ पर पानी की बहुत कमी हो, जलवायु मरूस्थलीय हो तथा पौधे एक दूसरे से काफी दूरी पर लगाए गए हों। इस निकाय के द्वारा विभिन्न फसलों की पैदावार तथा जल की बचत सारणी–3 में दी गयी है। सतही बूंद–बूंद सिंचाई द्वारा उर्वरक देने की फर्टीगेशन विधि में विभिन्न फसलों की पैदावार तथा उर्वरक की बचत सारणी–4 में दी गयी है।

सारणी 3. सतही बूंद-बूंद सिंचाई विधि में विभिन्न फसलों की पैदावार तथा जल की बचत

फसल	पैदावार में वृद्धि (%)	जल की बचत (%)
अनार	20–40	50–60
आलू	20–30	40–50
गन्ना	50–60	30–50
टमाटर	25–50	40–60
गोभी	60–80	30–40
बैगन	20–30	40–60
पत्ता गोभी	30–40	50–60
भिंडी	25–40	20–30
मिर्च	10–40	60–70
लोकी	20–40	40–50
सेम	55–65	30–40

उप्सतही बूंद.बूंद सिंचाई : इस विधि से सिंचाई इजराइल तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ दक्षिण–पश्चिमी भागों में की जा रही है। इस विधि में पेड़ या पौधे के आस–पास पानी बूंद–बूंद करके नालियों से बाहर आता है और दो पौधों या पेड़ों के बीच की पूरी भूमि की सिंचाई नहीं की जाती जिसके फलस्वरूप सिंचाई दक्षता अधिक होती है और सीमित प्राप्य जल से अधिक क्षेत्र की सिंचाई हो सकती है। इस विधि द्वारा पानी के साथ–साथ घोल के रूप में उर्वरक डालने की उपयोगिता पर भी अनुसंधान किए जा रहे हैं।

सारणी 4. सतही बूंद-बूंद सिंचाई द्वारा उर्वरक देने की फर्टीगशन विधि में विभिन्न फसलों की पैदावार तथा उर्वरक की बचत

परीक्षण	प्याज की पैदावार	टमाटर की पैदावार	भिंडी की पैदावार
फर्टीगशन विधि से 100% उर्वरक	35.12	50.10	28.00
फर्टीगशन विधि से 80% उर्वरक	32.33	47.47	26.12
फर्टीगशन विधि से 60% उर्वरक	30.15	43.11	23.22
फर्टीगशन विधि से 40% उर्वरक	28.65	39.00	20.52
साधारण विधि से 100% उर्वरक	30.12	43.00	23.30

उप्सतही बूंद-बूंद सिंचाई की विधि : वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन को प्रभावित करने वाले कारक किसी भी फसल द्वारा वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में तथा भूमि और पौधों की सतह से वाष्पीकरण की क्रिया में जितने जल का ह्रास होता है उसे वाष्पीकरण–वाष्पोत्सर्जन कहते हैं। इस क्रिया में फसल द्वारा कुल कितने जल का ह्रास होगा यह सुलभ मृदा जल की मात्रा, जलवायु, फसल की किस्म तथा अन्य कृषि–क्रियाओं पर निर्भर करता है।

लवणीय व क्षारीय भूमि में सिंचाई जल प्रबंधन : लवणीय भूमि में घुलनशील लवणों की सान्द्रता अधिक होती है जबकि क्षारीय भूमि में विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा अधिक होती है। कुछ भूमि ऐसी होती है जिनमें घुलनशील लवणों की अधिकता के साथ–साथ विनिमय योग्य सोडियम की भी मात्रा अधिक होती है। ऐसी भूमियों को लवणीय–क्षारीय भूमि कहते है। लवणीय भूमि के सुधार के लिए केवल निक्षालन की आवश्यकता पड़ती है, पर क्षारीय तथा लवणीय–क्षारीय भूमि में जिप्सम अथवा गंधक जैसे रासायनिक पदार्थ मिलाने के बाद निक्षालन की आवश्यकता पड़ती है।

प्लास्टिक के ग्रीन हाऊस में बूंद-बूंद सिंचाई विधि

फग्गर द्वारा सिंचाई

सिंचाई जल की गुणता : सभी जल सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। सिंचाई जल में मुख्य रूप से निम्नलिखित अवगुण पाए जा सकते हैः

- जल में घुलनशील लवणों की अधिकताः घुलनशील लवणों में मुख्यतः कैल्सियम, मैग्नीशियम, सोडियम तथा क्लोराइड, सल्फेट, बाईकार्बोनेट मुख्य है। इसके अतिरिक्त नाइट्रेट व फ्लोरिन की सान्द्रता भी कुछ जिलों में अधिक हो सकती है।
- अन्य धनायनों की अपेक्षा सोडियम की अधिकता ।
- बोरोन, क्लोरीन तथा लिथियम जैसे विषैले तत्वों की अधिकता।
- कैल्सियम व मैग्नीशियम की अपेक्षा सिंचाई जल में बाइकार्बोनेट की अधिकता।

सारणी 4. साधारणतः प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ कार्बनिक पदार्थों में उपलब्ध सकल पोषक तत्व।

कार्बनिक पदार्थ	न.	फ.	पो.	कै.	मैग.	स.	लोहा	मैंग्नीज	जिंक	ताम्बा
	% शुष्क भार						(पी.पी.एम. (मिग्रा./किलो) शुष्क भार			
मुर्गी की खाद	4.4	2.1	2.6	2.3	1.0	0.6	1000	413	480	172
कम्पोस्तीकृत मुर्गी की खाद	2.3	3.5	2.9	15.5	1.3					
डेयरी की खाद	2.4	0.7	2.1	1.4	0.8	0.3	1800	165	165	30
सूअर की खाद	2.1	0.8	1.2	1.6	0.3	0.3	1100	182	390	150
भेड़ की खाद	3.5	0.6	1.0	0.5	0.2	0.2	—	150	175	30
घोड़े की खाद	1.4	0.4	1.0	1.6	0.6	0.3	—	200	125	25
कई जानवरों की मिलीजुली खाद	1.9	0.7	2.0	1.3	0.7	0.5	5000	40	8	2
नई राइ की हरी खाद	2.5	0.2	2.1	0.1	0.5	0.04	100	50	40	5
दाल की डंठल	2.5	0.2	1.8	0.2	0.2	0.2	100	100	50	10
लोबिया की हरी खाद	3.6	0.4	3.5	1.5	0.4					
लूसर्न की हरी खाद	3.8	0.2	1.7	1.1	0.3					
मल तलछट										
बिना वायु के पचित	5.2	0.6	0.6	1.5	0.3	—	15,000	80	1000	400
प्राथमिक	1.8	0.4	0.3	0.8	0.1	—	8000	20	450	300

स्त्रोतः मेरिलेण्ड विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमेरिका (1985–1990)

सिंचाई व उर्वरक उपयोग में संबंध : सिंचाई व उर्वरक उपयोग में घनिष्ठ संबंध है। यदि भूमि में नमी पर्याप्त नहीं है तो पौधे पोषक तत्वों का समुचित प्रयोग नहीं कर पाते। नमी की कमी के कारण भूमि में डाले गए उर्वरक से प्राप्त पोषक तत्वों का उचित घोल नही बन पाता है जिससे पौधों को तत्व सरलता से प्राप्त नहीं हो पाते। नमी की कमी से जड़ों का विकास भी कम होता है जिससे पोषक तत्वों का उद्ग्रहण कम हो जाता है। नमी की पर्याप्त मात्रा होने पर पोषक तत्वों का जड़ों की तरफ विसरण द्वारा संचलन भी अधिक होता है जिससे पोषक तत्व जड़ों को सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। साधारणतः प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ कार्बनिक पदार्थो में उपलब्ध संकल पोषक तत्वों को सारणी–4 में प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि सिंचाई की उत्तम विधियों को अपनाकर एवं मिट्टी में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थो को डाल कर न केवल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है अपितु जल एवं मिट्टी की उत्पादकता भी बढ़ायी जा सकती है। इसी प्रकार से हम अपने संसाधनों का सम्यक उपयोग करते हुये भी उनकी उत्पादन क्षमता बनाये रख सकते है। यह दृष्टिगत हुआ है कि हम भारतीय हमेशा इसी पद्धति से खेती करते रहे हैं जिसको पश्चिमी सभ्यता कहीं आज जान समझ रही और अपनाने का प्रयास कर रही है। इसलिये किसानों को यही सलाह दी जाती है कि वे पुनः अपनी धरोहरों को सम्भालें और सहेजें तो न केवल फसल में अच्छी पैदावार प्राप्त कर सकते हैं वरन अपने संसाधनों को लम्बे समय तक संरक्षित कर पाने में सक्षम हो सकेंगे।

★★★

आज नहीं तो कल बैठेगी, सिंहासन पर जन की भाषा।
पूरी होगी आज नहीं तो, कल स्वतंत्रता की परिभाषा।।
जय होगी, निश्चय जय होगी, भारत की धरती पर इसकी।
जनभाषा की ही जय होगी, जनभाषा की ही जय होगी।।

मरूस्थलीकरण: कारण एवं निवारण

अमल कर*

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मरूस्थलीकरण की परिभाषा रेगिस्तान का फैलना नहीं है। यह एक भू–अवक्षय की प्रक्रिया है, जो कई कारणों से विश्व के अनेक देशों में पाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मरूस्थलीकरण निवारण संगोष्ठी (यूएनसीसीडी) के अनुसार विश्व के शुष्क, अर्द्ध–शुष्क तथा पूर्ण–शुष्क इलाके (जिसको हम सूखा–ग्रस्त इलाका ''ड्राई लेण्ड', भी कह सकते हैं) में घटी भू–अवक्षय को मरूस्थलीकरण कहा जाता है। यह अनेक कारणों से हो सकता है जिसमें जलवायु संबंधित कारणों (जैसे भंयकर सूखे से पेड़ पौधों का विनाश होना, तेज हवा से टीब्बे का सचल होना, अति बारिश/दृष्टि से भूमि का कटाव इत्यादि) तथा मानव द्वारा भूमि पर अत्यन्त दबाव बढ़ाना और असामान्य रूप से भूमि का दोहन करना शामिल है। जलवायु का वर्तमान परिवर्तन मानव निर्मित माना जाता है। यही मरूस्थलीकरण का भी एक कारण हो सकता है जब तेज हवा में अति वृद्धि, सूखा पड़ना इत्यादि का सालों साल बढ़ना इस परिवर्तन की गति के संदर्भ में है। संयुक्त राष्ट्र संघ परिषद् के अनुसार मरूस्थलीकरण के परिणामस्वरूप जमीन की उपजाऊ क्षमता में कमी आ सकती है जिससे भू–उपयोग करने वाले समाज, ग्रामीण समाज तथा पर्यावरण प्रभावित हो जाता है।

मरूस्थलीकरण को समझने का वर्तमान क्रम सन् 1977 में शुरू हुआ जब अफ्रीका महाद्वीप में 4 साल से भंयकर सूखा चल रहा था और महादेश के उत्तरी भाग जिसमें सहारा और साहेल भू–भाग है असमान्य भुखमरी और मृत्यु दर से हाहाकार कर रहा था। साहेल के अनके देशों में अन्न वस्त्र जल का संकट विकट रूप धारण किया हुआ था। संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.) के विभिन्न संस्थान विकसित देशों में गोष्ठीयाँ तथा अनेक (एन.जी.ओ.) संस्थान जो सहायता के लिये प्रयास कर रहे थे, ऐसी स्थिति से योजना बद्ध तरिके से सामना करने के लिये एक विचार गोष्ठी का आयोजन नैरोबी शहर में किया था। वैज्ञानिकों ने उस समय विश्व में मरूस्थलीकरण का एक मानचित्र प्रस्तुत किया था। जिसमें दर्शाया गया कि विश्व के सूखाग्रस्त इलाके के करीब 75 प्रतिशत भू–भाग (39.7 करोड़ हेक्टर) इस समस्या से पीड़ित थे। उस समय काजरी द्वारा संयुक्त राष्ट्र के निर्देशानुसार एवं उनके दिये हुये तकनिकों के आधार पर पश्चिमी राजस्थान का प्रथम मरूस्थलीकरण मानचित्र बनाया गया। हमने उस समय समस्या का विस्तार से विश्लेषण में पाया कि प्राकृतिक कारणों से ज्यादा मरूस्थल में भूमि व जल संसाधनों का अनियत्रिंत ढ़ंग से उपयोग, जिसमें कृषि पद्धति व कृषि विस्तार भी शामिल है, इस दुष्परिणाम का एक मुख्य कारण बना हुआ है। काजरी ने उस समय से सुझाव दिया कि मरू प्रदेश में भू–उपयोग, विशेषकर कृषि, जल और चारागाह भूमि एवं संसाधनों का उपयोग सही वैज्ञानिक पद्धति से किया जाय। ऐसा ना करने से अगले कुछ दशकों में स्थिति धीरे–धीरे और विकट रूप धारण कर सकती है।

नैरोबी के उस विचार गोष्ठी में कई अन्य देशों ने भी मरूस्थलीकरण के मानचित्र प्रस्तुत किये थे। उसके बाद वैज्ञानिकों ने मरूस्थलीकरण को समझने तथा मानचित्रकरण के तकनिकी में सुधार करने के अनेक प्रयास किये, जिसके एक परिणाम 1992 में प्रकाशित अनुमान से आया। उस अनुमान के अनुसार विश्व के सुखाग्रस्त इलाकों में 70 प्रतिशत भू–भाग मरूस्थलीकरण के प्रकोप से जूझ रहे थे, मगर प्रकोप का 75 प्रतिशत 1977 में से 70 प्रतिशत 1992 में होना वास्तव में मरूस्थलीकरण को समझने का तरीका और मानचित्र बनाने की प्रक्रिया में बदलाव के कारण से हुआ था।

उस समय काजरी ने परिश्चमी राजस्थान का अपना दूसरा मानचित्र प्रस्तुत किया, जो कि सुदूर संवेदन तकनिकी पर आधारित था। उस समय भी हमने पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीकरण का जो मुख्य कारण पाया वह है (1) रेतिली मिट्टी व टिब्बे का सचल होना। (2) वर्षा से भूमि का कटाव होना। (3) लवणीय व क्षारीय मिट्टी का होना और (4) चारागाह का विनाश होना। हमने यह भी पाया कि कुछ भू–उपयोग पद्धति, जैसे ट्रेक्टर द्वारा रेतीले

*सेवानिवृत विभागाध्यक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक

टिब्बों पर कृषन करना, शहरी क्षेत्रों में दूषित जल सूखी नदी में प्रवाहित करना, खनन के बाद उसका मलवा खेतों के पास छोड़ जाना इत्यादि प्रकट होने लगे, जो मरूस्थलीकरण का नया कारण बनने लगे। सन् 1992 में हमारे बनाये हुऐ मानचित्र दर्शाते थे कि पश्चिमी राजस्थान के 208751 वर्ग किमी. क्षेत्र के करीब 76 प्रतिशत भाग रेतिले मिट्टी व टिब्बों का सचल होने से प्रभावित था और 50 प्रतिशत इलाकों में यह समस्या का प्रकोप मध्यम से अधिक तीव्र था। मरूस्थलीकरण के सब कारणों को सम्मिलित करने के बाद देखा गया कि अंचल के 62 प्रतिशत भाग में मरूस्थलीकरण का प्रकोप मध्यम से अधिक था।

मरूस्थल

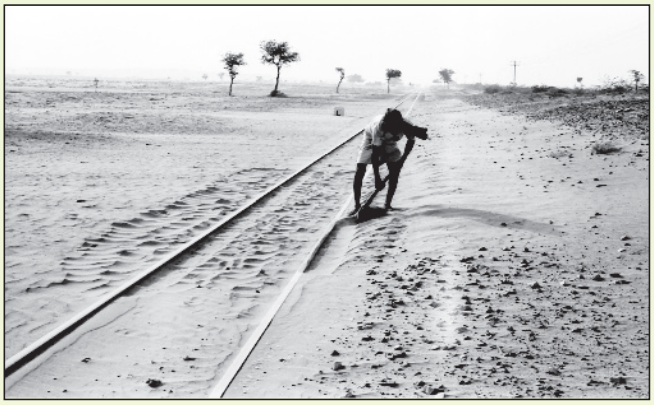

उड़ी हुई रेत से बाधित यातायात

वैज्ञानिक जब विभिन्न कारणों से मरूस्थलीकरण की बात कर रहे थे उस समय समूचे भारत में भू–अवक्षय का सरकारी अनुमान पटवारी द्वारा दिये गये संख्या के ऊपर आधारित था। कुछ संस्थान जैसे नागपुर के एन.बी.एस. एस. एण्ड एल.यू.पी. और दिल्ली के ए.आई.एस.एल.यू.एस. मिट्टी के गुणवत्ता के अध्ययन से भू–अवक्षय का मानचित्र निर्माण कर रहे थे। इस शताब्दी के शुरू में जब यू.एन.सी.सी.डी. ने एशिया भू–भाग में मरूस्थीकरण का मानचित्र बनाने का सोचा, तब भारत सरकार के पर्यावरण विभाग ने अन्तरिक्ष विभाग (आई.एस.आर.ओ.) के माध्यम से यह कार्य करने का निर्णय लिया और अहमदाबाद स्थित स्पेस एपलिकेशन सेन्टर ने प्रमुखता से देश के अनेक संस्थानों को जोड़ कर एक देशव्यापी मानचित्र निर्माण का कार्य करना शुरू किया। काजरी भी इस कार्य करने में भी शामिल हुआ और पश्चिमी राजस्थान तथा पश्चिम गुजरात, जो कि सूखा क्षेत्र में आता है, का मानचित्र प्रस्तुत किया। सन् 2003 से 2005 के सेटेलाइट चित्रों का विश्लेषण आधारित हमारे इस मानचित्र से पता चला कि रेतिली मिट्टी का सचल होना पश्चिमी राजस्थान में मरूस्थलीकरण का मुख्य कारण अभी भी बना हुआ है, जिससे करीब 76 प्रतिशत भू–भाग ग्रस्त है (17 प्रतिशत इलाका में समस्या अत्यधिक है)। इसके विपरीत पश्चिम गुजरात में करीब 43 प्रतिशत भू–भाग वर्षा जल से भूमि क्षय से ग्रस्त है (6 प्रतिशत इलाका में समस्या अत्यधिक है)। मिट्टी में अधिक लवण व क्षार की समस्या पश्चिम राजस्थान में 2 प्रतिशत भू–भाग में हैं, जब कि पश्चिम गुजरात में यह 38 प्रतिशत भू–भाग में है (कच्छ की रन के कारण) दोनों अँचल को मिला कर कृषि भूमि पर सबसे ज्यादा खराब स्थिति बारानी क्षेत्र में पायी गयी (13.4 लाख हेक्टर) जब कि सिंचित क्षेत्र में बहुत खराब स्थिति 2 लाख हेक्टर में पायी गयी। समस्त भारत का सूखा ग्रस्त भू–भाग में 18 प्रतिशत इलाका रेतिली मिट्टी का सचल होने के समस्या से ग्रस्त है जब कि 26 प्रतिशत भू–भाग वर्षा जल से कटाव से ग्रस्त है। लवण व क्षारीय जमीन की समस्या 4 प्रतिशत इलाकों में ज्यादा है जब कि 18 प्रतिशत भू–भाग में वन व चारागाह क्षेत्र का विनाश मुख्य समस्या है। भू–स्खलन की समस्या करीब 5 प्रतिशत भू–भाग में हिमालय क्षेत्र में है। कुल मिलाकर भारत का सूखा ग्रस्त अँचल का 81 प्रतिशत भू–भाग विभिन्न प्रकार के मरूस्थलीकरण प्रक्रिया से ग्रस्त पाया गया। सन् 2005 का उस अनुमान व मानचित्र के 10 साल बाद देश में 2015 में एक और अनुमान और मानचित्र प्रकाशित करने का कार्यक्रम अब शुरू किया गया, जिसमें काजरी अपना योगदान दे रही है।

मरूस्थलीकरण का सबसे तुरन्त और सबसे खराब प्रभाव कृषि के ऊपर पड़ता है, जब अनाज की पैदावार घटने लगती है और उसके कारण समूचा कृषि आधारित समाज व देश धीरे–धीरे एक आर्थिक संकट की तरफ बढ़ने लगता है क्योंकि हमारा देश अभी भी कृषि आधारित है और हमारे देश का 69 प्रतिशत हिस्सा (22.8 करोड़ हेक्टर) शुष्क, अर्ध–शुष्क और पूरे शुष्क जलवायु से प्रभावित है, जहाँ मनुष्य भार भी बहुत ज्यादा है (विभिन्न प्रदेशों में 170 से 500 जन प्रति वर्ग किमी.) और पशु भार कृषि और बंजर भूमि के ऊपर दबाव बहुत ही ज्यादा है। इस दबाव के कारण और वर्तमान में लगातार ज्यादा फसल उगाने का लक्ष्य और उससे ज्यादा मुनाफा करने के प्रयास में जमीन का दोहन भी बहुत ज्यादा होने लगा है। खास करके कृषि भूमि का दोहन विकास के प्रयास से जुड़ी समस्याओं का कुछ उदाहरण अगली पंक्तियों में दिया जा रहा है।

विकास में जल से जुड़ी समस्याएँ : भू–जल के अत्यधिक दोहन से बहुत इलाके के अब खराब, क्षारीय जल का दोहन होने लगा है, जिससे सिंचित जमीन में लवण और क्षार की मात्रा बढ़ने लगी है जबकि अत्यधिक और अनियंत्रित ढ़ंग से रासायनिक उर्वरकों व कीट नाशकों के प्रयोग से भी जमीन में खराबी आने लगी है। जब यह रासायनिक तत्व धीरे–धीरे भू–जल में घुलने लगता है या फिर नहर में प्रवाहित होने लगते है, तब ना सिर्फ जमीन अपितु जल भी दूषित होने लगता है और यह प्रदूषण एक बहुत बड़े क्षेत्र में गाँव व शहर को भंयकर विनाश के सामने ला कर खड़ा करता है। कृषि में देश की शान माना जाने वाला पंजाब और हरियाणा प्रदेश जोकि सूखा और प्रायः शुष्क जलवायु के अधीन है और जहाँ हरित क्रांति भू–जल, नहर, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक तत्व के ऊपर पिछले चार दशकों से बहुत ज्यादा भरोसा कर रहे थे, अब इस समस्या से सबसे ज्यादा ग्रस्त है। जमीन की पैदावार अब घटने लगी है और केंसर और अन्य भयंकर रोग प्रदूषित जल के कारण अनेक गाँवों व शहरों में फैलने लगे है। पंजाब के कुछ इलाकें अब भू–जल में सेलिनियम के आधिक्य के कारण प्रदूषित हो गया है। जिससे चावल व कुछ अन्य फसलें तथा पशुचारा प्रभावित होने लगा है और जन स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ने लगा है।

राजस्थान में गंगानगर व हनुमानगढ़ जिले के नहरी क्षेत्र और हरियाणा के सिरसा व हिसार जिला अब धीरे–धीरे नहरी जल प्रदूषण से प्रभावित होने लगा है। कृषि भूमि में रासायनिक उर्वरक के आधिक्य के कारण नाइट्रेट, बॉरोन, फ्लोराइड जैसे तत्व अब घुल कर नहर में पड़ने लगे है और जब उस दूषित जल का उपयोग खेतों में किया जाता है तो उसका प्रभाव मिट्टी के ऊपर भी पड़ने लगता है और जब जनता उस जल का सेवन करती है तो बीमार पड़ने लगती है। वैज्ञानिक कुछ समाधान निकालने में सफल हुये है, फिर भी अनके कारणों से लोगों के पास पूरा ज्ञान पहुँच नहीं पाता है और पहुँच भी जाता है तो जागरूकता के अभाव से अपनाया नहीं जाता है।

नहरी क्षेत्रों में एक और समस्या अत्यधिक सिंचन से हुई है। राजस्थान में भाखरा नहर, गंगनहर व इंदिरा गाँधी नहर परियोजना क्षेत्रों के कुछ इलाकों में भू–जल का स्तर धीरे–धीरे इतना बढ़ चुका है कि शुरू में गेहूँ आधारित कृषि के बदले किसान बढ़ते जलस्तर के साथ चावल आधारित कृषि करने लगा, मगर जल स्तर जब जमीन के 15–30 सेमी. तक आ पहुँचा तो कृषि पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी। इस समस्या का (जिसको स्थानीय लोग ''सेम'' कहते है) मुख्य कारण था किसानों द्वारा समय–समय पर दिये गये कृषि वैज्ञानिकों की सलाह की अनदेखी करना। गंगानगर, हनुमानगढ़ व बीकानेर जिले के बड़े भू–भाग के नीचे जिप्सम की एक मोटी परत है जो सिंचित जल को नीचे जाने से रोकता है इसीलिये वैज्ञानिकों ने सलाह दी थी कि सिंचन की मात्रा कम की जाय, जो किसान सुन नही रहे थे। अब बात समझ में आ गयी और कुछ इलाकों में धीरे–धीरे जल स्तर घटने के बाद जमीन में कम सिंचन से कृषि करना आरम्भ हुआ। नहरी जल से जुड़ी अन्य एक समस्या हनुमानगढ़ शहर के पास अधिक ''सेम'' के कारण सूरतगढ़ क्षेत्र में होने लगी। हनुमानगढ़ का सम्पन्न व प्रभावशाली किसान चाहते थे कि ''सेम'' का समस्या के निवारण के लिये एक नहर सूरतगढ़ के पास टिब्बों के बीच लाकर छोड़ी जाय। जहाँ रेतीली मिट्टी के कारण जल नीचे चला जायेगा। उन्होंने मृदा व भू–वैज्ञानिकों से परामर्श नहीं किया, ना सम्पर्क किया, और आज जिप्सम की परत के कारण सूरतगढ़ से रावतसर तक एक बहुत ही उपजाऊ जमीन जलाशय में बदल गयी। यह क्षेत्र पुरातन सरस्वती नदी की एक मुख्य सहायक नदी द्रिसादवती का अंश है। जहाँ मिट्टी बहुत उपजाऊ है और किसानों ने हजारों साल से उस उपजाऊ मिट्टी का लाभ उठा रहे थे। पास स्थित कालीबंगा, रंगमहल जैसे अति–प्राचीन शहरों का विकास में भी इस भूमि का योगदान रहा था। कुछ ऐसी ही भूल अब सांचोर क्षेत्र में होने

का अंदेशा है। जहाँ नर्मदा नहर की रूप–रेखा वैज्ञानिकों से उपयुक्त परामर्श के बिना रखा गया। यहाँ रेतीली जमीन के नीचे लवण का मात्रा बहुत ज्यादा है और किसान उस को जानते हुये एक अलग भू–जल आधारित सिंचन प्रणाली से फसल उगाते है। नर्मदा नहर से सिंचन के कारण आने वाले समय में यह प्रणाली का नष्ट होना अब निश्चित है, मगर लवण की मात्रा कितनी जल्दी जमीन के ऊपर आयेगी और बरबादी करने लगेगी यह समय ही बता पायेगा।

जल प्रदूषण का कुछ भंयकर परिणाम जोधपुर–पाली–बालोतरा क्षेत्र में दिखाई देने लगा है, जहाँ कपड़ा रंगाई उद्योग के प्रदूषित जल को जोजरी बांड़ी व लूनी नदी मे प्रवाहित किया जाता है। इसके फलस्वरूप नदी के किनारे भू–जल बिल्कुल प्रदूषित हो गया है, जो पीने योग्य नहीं रहा और जिससे सिंचन के बाद जमीन भी खराब हो गयी। यह 3 नदियाँ पहले बरसात के कुछ दिनों को छोड़कर अन्य समय बिल्कुल सूखी रहती थी, मगर अब हमेंशा इसमें दुर्गन्ध युक्त जल प्रवाह देखने को मिलता है, जो कि सिंदरी होते हुये गंडप तथा कच्छ का रन तक पहुँचने लगा है। ग्रामीणों ने छुटकारा पाने के लिये न्यायालय तक जा पहुँचे, कुछ जल शोधन संयत्र भी लगाये गये, मगर स्थिति में ज्यादा सुधार आज भी नहीं हुआ है।

चारागाह समस्या

पश्चिम राजस्थान में चारागाह की स्थिती पिछले 6–7 दशक से बहुत ही खराब है। सरकार ने चारागाह में सुधार लाने के लिये ओरण अतिक्रमण को बहुत पहले से ही रोक लगा रखी है। फिर भी ओरण का सुधार नहीं हुआ। खुला चारागाह, जोकि ज्यादातर रेतीले टिब्बों और पथरीली बंजर भूमि पर स्थित है, उसका कोई सुधार नहीं करते है, जबकि माना जाता है कि पशु–भार यहाँ बहुत ज्यादा है और पशुओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है विशेषकर गाय और भेसों की। यदि किसानों को लगता की स्थिति बहुत खराब है और पशु चारा का प्रावधान करना अपने आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार नही है, तो पशुओं के संख्या में लगातार वृद्धि शायद नहीं होती। इस अन्तर विरोध का समाधान कृषि भूमि में बदलाव से मिलता है। स्वाधीनता के बाद, जब धीरे–धीरे गाँवों में बिजली आने लगी और डीजल जेनरेटर सेट भी उपलब्ध होने लगे, तब किसानों ने भू–जल के उपयोग से खेतों में सिंचाई शुरू की। उसी समय से वैज्ञानिक भी उत्तम किस्म के बीज व कृषि पद्धति का विकास करने लगे और किसानों तक अपनी उपलब्धी देना शुरू किया, विशेषतः 1970 के दशक से, जब हरित क्रांति की गूंज पंजाब–हरियाणा में उठने लगी। धीरे–धीरे बारानी कृषि भूमि सिंचित भूमि में बदलने लगी और किसानों की स्थिति भी इस बदलाव के बाद बहुत से किसान अपने कृषि भूमि से पशु चारा प्रावधान का उपाय निकालने लगे और फिर चारागाह के ऊपर ऐसे किसानों का दबाव घटने लगा। किसन अब अपने सर्मथता से भैसे भी रखने लगे, जिस का चारा व जल का खुराक अन्य पशुओं से ज्यादा है। पश्चिम राजस्थान के अनेक जिलों में भैसों की संख्या अब बहुत ज्यादा होने लगा, जो यह दर्शाता है कि किसान चारागाह की कमी से ना तो परेशान है ना चिंतित है, क्योंकि पशु चारा अब अपनी कृषि भूमि से व अपना पैसा से जुगाड़ हो जाता है। चारागाह है इसीलिये उसका उपयोग भी हो रहा है, मगर पशुपालक और छोटे किसान ही उसके ऊपर बहुत ज्यादा निर्भर करते है, कारण उनका आर्थिक सामर्थ्य उतना नही है। चारागाह का अन्य उपयोग ग्रामीण ऊर्जा के लिये भी होता रहा है। इस संदर्भ में बहुत जल्दी और बहुत ज्यादा फैलने वाला जूलीफ्लोरा (बबूल) के पेड़ पौधे अब ज्यादा सहायक होने लगे है, मगर कृषि भूमि के लिये यह अभिशाप बने हुए हैं।

चारागाह के विकास व बेहतर प्रावधान करने में कोई ग्रामीण क्षेत्र ज्यादा आग्रह नहीं दिखाता। सबका कहना है कि सरकार ही कुछ करे, मगर उस जमीन के संसाधन में सब अपना हिस्सा चाहते है। यह स्थिति दुर्भाग्य पूर्ण है। शायद अब विचार–विश्लेषण का समय आ गया कि चारागाह में पेड़े पौधों का ना होना को हम कहाँ तक मरूस्थलीकरण का मुख्य के हिसाब से देखेगें और कब तक इसका वर्तमान स्वरूप को बरकरार रखने की सोचेंगे। हो सकता है कि ग्रामीणों को बहुत सारे चारागाह का वर्तमान संसाधन के ऊपर निर्भरता कम हो गयी है, और इसीलिये उसके विकास में ग्रामीण भागीदारी निभाना नहीं चाहते है। हो सकता है, चारागाह के ऊपर छोटे किसान और पशुपालकों की भेड़–बकरियाँ ग्रामीणों को उतना लाभ नही देती कि चारागाह के विकास में योगदान दिया जा सके। अगर हरित–क्रांति के बदले हम हमारे मरूस्थल का पश्चिम भाग शुरू से सफेद क्रांति का सोचते और पशुधन को एक बेहतर दूध–मांस–चमड़ा इत्यादि उद्योग व कारखाना के प्रावधान से जुड़ेते, तो स्थिति बहुत पहले

सुधर जाती, क्योंकि ग्रामीण उसमें अपना आर्थिक विकास देख पाते और बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। मगर ऐसे प्रावधान तब ही सफल हो सकते जब इसमें एक साथ, सड़क, बिजली और बाजार उपलब्ध हो, क्योंकि पशुधन आधारित सभी उत्पाद बिना उपचार लम्बे समय तक खुले नहीं रखे जा सकते। सब संसाधनों के एक साथ अनुउपलब्धता के कारण ही 1980–90 के दशक में जालोर–सिरोही जिलों में पशुधन आधारित डेयरी उद्योग सम्पूर्ण असफल हो गया था। अगर आज भी हम ऐसे प्रावधान देने में असमर्थ है तो शायद चारागाह का दूसरा वैकल्पिक भू–उपयोग जो ग्रामीणों को कृषि–वानिकी आधारित सहायता दे सके, उसके बारे में सोचना चाहिये, जैसे कि सिल्वाकल्चर, हार्टीकल्चर इत्यादि।

कृषि भूमि का अनुसंधान

पश्चिम राजस्थान में जो समस्या अब बढ़ती जा रही है, यह है सिंचित क्षेत्र विकास के साथ रेतीली जमीन और धोरों पर कर्षण के लिये ट्रेक्टर का उपयोग। आज पूरे अँचल में शायद ही कही पशुओं से कर्षण किया जाता होगा, ट्रेक्टर से कर्षण करने से रेतिली मिट्टी करीब 1 मीटर गहराई तक उथल–पुथल हो जाती है, और मिट्टी हवा से ज्यादा सचल हाने की स्थिति में आ जाती है। कर्षण मानसून वर्षा के ठीक पहले किया जाता है। हमने पाया कि जब मानसून की स्थिती खराब होती है, और एक बारिश के बाद जमीन फिर लम्बे समय के लिये सूखी रहती है तथा हवा की गति बढ़ने लगती है, कर्षित भूमि से रेत का संचालन बहुत बढ़ जाता है। ट्रेक्टर से कर्षण ने एक और समस्या पैदा की है, यह है पेड़–पौधों का विनाश व पौधों का जड़ से कटना, उसके कारण, हवा की गति जब कम रहती है तब भी रेतिली मिट्टी ज्यादा उड़ान भरने में समर्थ होती है। यही एक मुख्य कारण है कि पश्चिमी राजस्थान में हवा की गति 1950 के दशक से 2000 के दशक तक धीरे–धीरे कम होते हुये भी मिट्टी की उड़ान जैसे कि सेटेलाइट चित्रों के माध्यम से व अन्य विश्लेषणों से पाया गया, बढ़ रही है।

समस्या का एक और पहलू अब कई दशक पुराने सिंचित क्षेत्रों में दिखने लगे है। शेखावटी क्षेत्र में अब अनेक खेतों में भू–जल मिलना कम हो गया है, और कुछ किसानों को जमीन का हिस्सा बारानी कृषि के लिये रखने में मजबूर होना पड़ रहा है। उस जमीन में पहले सिंचित भूमि के हिसाब से पेड़–पौधें निकाल दिये गये थे और छोटे–छोटे टिब्बों को समतल कर भी दिये गये थे। अब बिना सिंचित के ऐसी जमीन की मिट्टी हवा से और भी सचल होने लगी है। शायद, कुछ दशक में ऐसी स्थिति में मिट्टी के पोषक तत्व धीरे–धीरे खत्म होने लगेगें, कारण हवा के साथ मिट्टी के महीन कण सिल्ट, जिसकी मात्रा हमारे जमीन में शुरू से ही कम है, ज्यादा सचल होने लगती है। यही कण पोषक तत्व का घटक भी है।

जवाई बाँध के निर्माण के बाद अरावली से लगे हुए क्षेत्र में नहरी विकास से किसानों को बहुत लाभ हुआ। अरावली पहाड़ी में एनीकट इत्यादि के माध्यम से भू–संरक्षण के भी अनेक प्रयास किये गये, जिससे जल प्रवाह बाँध में सिंचाई के लिये उपलब्ध हो सके। प्रयास कुछ सफल रहे, मगर जवाई नदी के नीचले भाग में आहोर क्षेत्र, जोकि पहले भू–जल आधारित सिंचाई से कृषि सम्पदा से भरा हुआ था, बिल्कुल सूख गया, कारण नदी में जल प्रवाह बंद हो गया, और भू–जल भी रिचार्ज के अभाव से सूख गया। फल स्वरूप, आहोर क्षेत्र में जमीन में लवण और क्षार की मात्रा बढ़ने लगी। जो सोच जवाई केचमेन्ट में बेहतर कृषि प्रावधान करने जा रहा था, यह बरबादी का नमूना पेश करने लगा।

कुल मिलाकर, आज के संदर्भ में और आने वाले समय में पश्चिम राजस्थान की मरूस्थलीकरण के समस्यायें जो कुछ बिंदु पर निर्भर करेगा वह है ट्रेक्टर, भू–जल व गहरी जल का उपयोग और जल प्रदूषण, जिसके परिणाम दिखाये कि रेतिले जमीन का सचल होने में, जमीन का पोषक तत्व कम होने में, जमीन में लवण व क्षार के मात्रा बढ़ने में, जमीन व भू–जल की स्थिती खराब होने में और मार्च–जुलाई के महिने में वातावरण में मिट्टी की मात्रा ज्यादा होने में वातावरण में मिट्टी का ज्यादा होना, देश की अन्य भाग के लिये भी समस्या खड़ी कर सकता है, क्योंकि हमारे जमीन के मिट्टी के महीन कण हवा के साथ जमीन से 7–12 किमी. ऊपर से पूर्वी राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश तक जाते है। कुछ वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार जब हवा में मिट्टी का प्रवाह बहुत बढ़ने लगेगा, तब वह मानसून वर्षा को बंगाल, बिहार, पूर्वी यूपी के ऊपर स्थित करने की कोशिश करेगा, और सूखा

का स्थिती पैदा करने लगेगा। आज हम मरूस्थलीकरण का आर्थिक स्थिती के ऊपर प्रभाव को पूर्ण रूप से इसलिये अनुभव नही कर पाते है की हमारे वैज्ञानिकों ने कृषि विकास का जो शोध किसानों तक पहुँचाया उसका असर मरूस्थलीकरण का वर्तमान असर से ज्यादा है। हमेशा स्थिती ऐसी ही रहेगी यह सोचना गलत है।

समस्या का निवारण

यह माना गया कि हम प्रयास करने से भी जलवायु के प्राकृतिक विवर्तन को ना तो ठीक से अपने मुठ्ठी में ला सकते है, ना हम इसमें कोई ठोस सुधार कर सकते है। जो हम कर सकते है वह है मनुष्य निर्मित भू–अवक्षय के कारणों में कमी लाना। इसीलिये वैज्ञानिकों ने मरूस्थलीकरण के संदर्भ में मनुष्यों द्वारा किये गये कारणों के ऊपर ज्यादा ध्यान दिया है, ताकि हम कुछ ऐसा तकनिकी कदम उठा सके जो भू–अवक्षय को सीमित करने में हमें सफलता दे सकें। इस दिशा में यूएनसीसीडी के प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय रहे, विशेषतः, समस्या से प्रभावित देशों की समस्या के प्रति जागरूक करने में और उनको एक योजनाबद्ध तरिके से भू–अवक्षय से जुड़े सभी पहलू पर विचार करके देश को कार्यक्रम में सुधार लाने के लिये प्रतिबद्ध करने में। यूएनसीसीडी के सोच में इस बदलाव के कारण अब मरूस्थलीकरण निवारण के परिप्रेक्ष भू–संरक्षण और पेड़ पौधे लगाने से हट कर देश में भू–अवक्षय का मूल कारण का निवारण के ऊपर केन्द्रित होने लगा है, जिसमें दरिद्रता निवारण, कुपोषण निवारण, बेहतर शिक्षा का अधिकार, रोजगार उपलब्धता, प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक ढ़ंग से उपयोग तथा संरक्षण, अन्य संसाधनों के विकास जिससे ग्राम व शहर में विविध क्षेत्रों में रोजगार विकास हो सके और कृषि/चारा/वन भूमि पर बोझ कम हो सके। वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोत का प्रावधान इत्यादि बहुत सारे कार्यक्रम इससे जुड़ गये है। भारत में पिछले छः दशक से चल रहा पंचवर्षीय कार्यक्रम व उसमें समय समय पर बदलाव कर सभी कार्यक्रम को एकीकृत करने का प्रयास इसी सोच का एक रूप है। देश के अनेक शोध संस्थान, विशेषत कृषि शोध संस्थान, किसानों की दशा सुधारने के लिये जो कुछ भी कर रहे हैं, उसका उपयोग इस दिशा में बहुत सहायक होगा। काजरी शुरू से ही ग्रामीणों की समस्याओं का निवारण हेतु ऐसे तकनीकी विकास के ऊपर जोर देती रही जो आर्थिक उपयोगी हो सके। तकनीकी की उपलब्धता और प्रसार जो कि प्रदेश सरकार की योगदान से किया जाता है, उस का मूल्यांकन अब यूएनसीसीडी का नया सोच की परिधि में आ गया।

उपसंहार : मरूस्थलीकरण के परिप्रेक्ष में यूएनसीसीडी द्वारा लाया गया बदलाव समस्या का विश्लेषण, मानचित्रकरण और निवारण के ऊपर पड़ने लगा है। अब सिर्फ समस्या के प्राकृतिक रूप को विश्लेषण करने से तथा मानचित्रों में दर्शाने से उसके निवारण में सहायता मिलना मुश्किल है।

जरूरत यह होगी कि हम समस्या के मूल कारणों का विश्लेषण करके उसका स्तर व योगदान का भी मानचित्र बनाये और उसके साथ अँचल की सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा सुविधा की उपलब्धता का भी विश्लेषण करके दिखाये। बहुत सारे विकास कार्यक्रम जो अब विभिन्न संस्थान द्वारा होने लगे है और जिसको मरूस्थलीकरण के निवारण के रूप में देखा जाता है, यूएनसीसीडी चाहता है कि उसका भी सम्पूर्ण विश्लेषण हो और जनता की आर्थिक सामाजिक स्थिति के ऊपर कार्यक्रमों का प्रभाव दर्शाया जाय। प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर कार्यक्रमों का प्रभाव विभिन्न प्रकार के सेटेलाईट चित्रों का जीआईएस में विश्लेषण से मिलने लगा है, मगर आर्थिक सामाजिक स्थिति में बदलाव का पारदर्शी विश्लेषण व मानचित्रकरण अभी भी शोध का विषय है।

मरूस्थलीकरण के विश्लेषण व निवारण के संबंध में काजरी द्वारा बहुत सारी पुस्तके व लेख समय समय पर प्रकाशित किये गये जिसमें शोध का पूर्ण और उसका आर्थिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है, जो किसानों और अन्य भागीदारों द्वारा परामर्श से किया जाता है। मनुष्य व पशु बढ़ने के साथ समाज की बदलती आकांक्षाओं के साथ और जलवायु का वर्तमान विवर्तन को देखते हुए संस्थान ने शोध कार्यक्रम में समयोपयोगी बदलाव भी किया है, फिर भी जरूरी यह भी है कि अँचल में उपलब्ध संसाधनों के प्रति सकल भागीदार अपने हिस्से के प्रति जागरूक के साथ अपना दायित्व के प्रति भी जागरूक हो क्योंकि वैज्ञानिको का सोच व शोध का प्रयास निरन्तर चलने वाला होते हुए भी उसकी भी कुछ सीमाये होती है और समस्या का निवारण सबकी भागीदारी से ही निकल सकता है।

★★★

पश्चिमी राजस्थान में मिट्टी की उर्वरता में जैव विविधता का योगदान

शर्मिला रॉय, महेश कुमार, नव रतन पँवार, दीपांकर साहा एवं प्रियब्रत सांत्रा

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) जोधपुर

हमारी पृथ्वी पर जीवन वर्तमान से लगभग चार अरब वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। जब पृथ्वी की सतह ठंडी हो गयी और पानी उस पर तरल अवस्था पर उपलब्ध हुआ तो इसी तरल में जीवों का प्रार्दुभाव हुआ। प्रथम जीव आज के प्रोकेरियॉट्स–जीवाणुओं की तरह के थे। जिनसे बाद में भिन्न परिस्थितियों, जलवायु में जटिल नाभकीय उन्नत जीवों को विकास हुआ। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इन जीवों को दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता हैं: प्रोकेरियॉट्स (कम जटिल अनाभकीय) तथा यूकेरियॉट्स (जटिल वास्तविक नाभिक वाले जीव)। इसके उपरान्त विकास के अनुसार जीवों को अन्य वर्गों में वर्गीकृत किया गया (चित्र 1)।

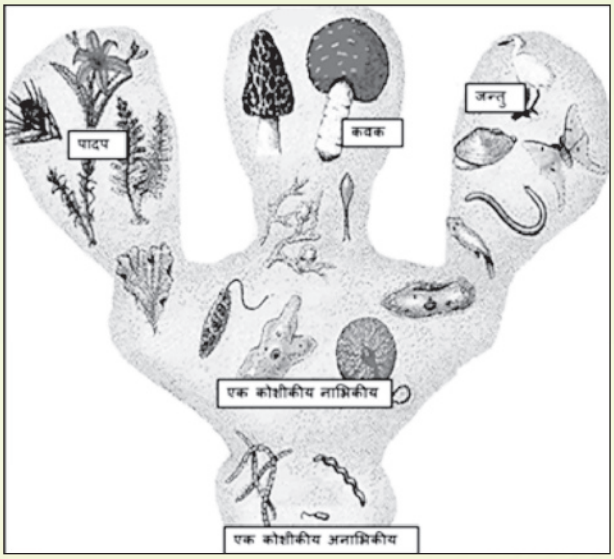

चित्र 1. जीवों के पाँच संघों का आरेख

जीवन के इन सभी रूपों का मृदा पारिस्थितिकी तंत्र में उपयुक्त प्रतिनिधित्व पाया जाता है। इसी संदर्भ कवि विलियम ब्लेक की कविता 'भावनाओं की क्षणिका' का उल्लेख उपयुक्त प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने ब्रह्माण्ड को एक ग्राम मिट्टी में प्रतिबिम्बित किया है।

मृदा में पृथ्वी के सभी मण्डलों, स्थलमण्डल, वायुमण्डल, जलमण्डल, व जीवमण्डल का एकीकरण पाया जाता है। इसीलिए मृदा को मृदामण्डल के रूप में भी उल्लेखित किया जाता है (चित्र 2)।

मृदा में अनगिनत जैव भूरा–सायनियक प्रक्रियायें होती है। जो कि मृदा जीवों द्वारा नियंत्रित होती हैं। मृदा जीव व मृदा पारिस्थितिकी तंत्र का तालमेल लाखों वर्षों पहले उद्‌भित हुए प्रथम भूमिस्थ पौध व खाद्य श्रृंखला के साथ ही विकसित हुआ था।

विकास व पारिस्थितिकी तंत्र की जटिलता के साथ–साथ, मृदा के गुणों जैसे, मृदा जल की अवस्था, तापमान, पोषक तत्त्वों की उपलब्धता, मृदा लवण, मृदा क्रियाओं आदि के आधार पर मृदा जीवों में आवास व

भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा होती रहती है जो इनमें विविधता और गतिशीलता लाती है। इसके अतिरिक्त मानवजनित क्रियायें जैसे कि भू–प्रबंधन, कृषि प्रबंधन, वन प्रबंधन जैसी तकनीकियाँ मृदा प्रारिस्थितिकी पर प्रभाव डालती हैं। यह मृदा अवस्था को परिवर्तित कर देती हैं। जिसमें मृदा के सूक्ष्म वातावरण जैसे तापमान, नमी, वायु, मृदा अनुक्रिया, आद्रता, रंध्र आमाप, खाद्य श्रोत को प्रभावित करती है जिसका सीधा प्रभाव जीव समुदायों पर पड़ता हैं।

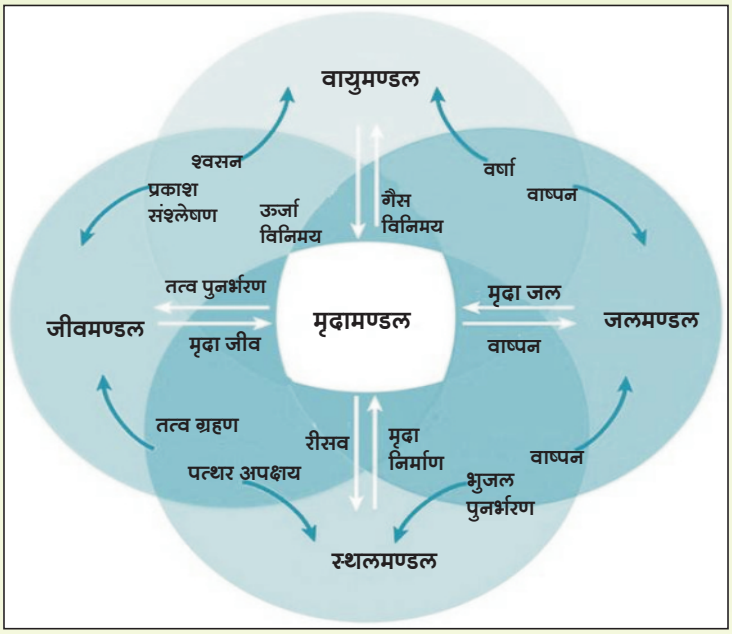

चित्र 2. पृथ्वी के विभिन्न मण्डलों के विनिमय प्रक्रिया

मृदा की जैविक रूपरेखा

मृदा में अनगिनत जीव–जन्तुओं का आवास हैं। जिसमें सूक्ष्म अदृश्य जीव, जीवाणु, कवक से लेकर सुपरिचित महाजन्तु जैसे केंचुआ, दीमक, चूहे एवं पादप जड़ें प्रमुख हैं। मृदा की जैविक गतिविधियाँ ऊपरी सतह तक ही सीमित रहती हैं जो कि समस्त मृदा आयतन का छोटा सा भाग (<0.5%) है तथा कुल जैविक पदार्थ का <10% से भी कम हिस्सा है। मृदा के इस सजीव अंश प्रमुखतया पादप जड़ (5–15%) एवं मृदा जीवों का (85–95%) से मिलकर बना होता है।

मृदा जीवों के स्थानिक व लौकिक विविधता व गतिविधियों के आधार पर मृदा को अलग–अलग 'प्रभावी मण्डलों' में बाँटा गया है। प्रत्येक मण्डल के विशिष्ट जैविक गुण मण्डल के जीवों की आपस की क्रिया–प्रतिक्रिया पर आधारित है (चित्र 3)। यह सभी मण्डल समय, स्थान व जैविक गतिविधियों से बनते–बिगड़ते रहते हैं।

मृदा की पाँच प्रमुख जैविक परते हैंः (i) संचयमण्डल – मृदा की ऊपरी सतह है, जिसमें मृत अवशेष इक्कट्ठे होते हैं। जिसमें मृदा किण्वन, धरणीकरण (ह्यूमीकरण) होता है। इस परत में कवक, कवकमूल, जीवाणु व मृतभक्षी जीवों का बाहुल्य होता है। (ii) छिद्रित मण्डल – यह मृदा परत केंचुओं, कीटों और बड़े जीवों की गतिविधियों से प्रभावित होता है। (iii) रंध्रमण्डल – इसमें पतली पानी की दरारें होती है, जिनमें छोटे व मध्यम आकार के जन्तु जैसे कि जीवाणु, प्रोटोजोआ, सूत्रकृमि, कवक, सूक्ष्म संधिपाद आदि होते हैं। (iv) समुच्चयमण्डल – यह सूक्ष्मजीवों एवं अन्य जीवों की गतिविधि वाला क्षेत्र है जो कि सूक्ष्म समुच्चयों एवं महासमुच्चयों के बीच के वायुवीय क्षेत्रों में पनपते हैं (चित्र 4)। (v) मूल मण्डल – मृदा का वह क्षेत्र है, जहाँ जड़ों के साथ–साथ कवकमूल तन्तुओं व अन्य उत्पादों से प्रभावित रहता है।

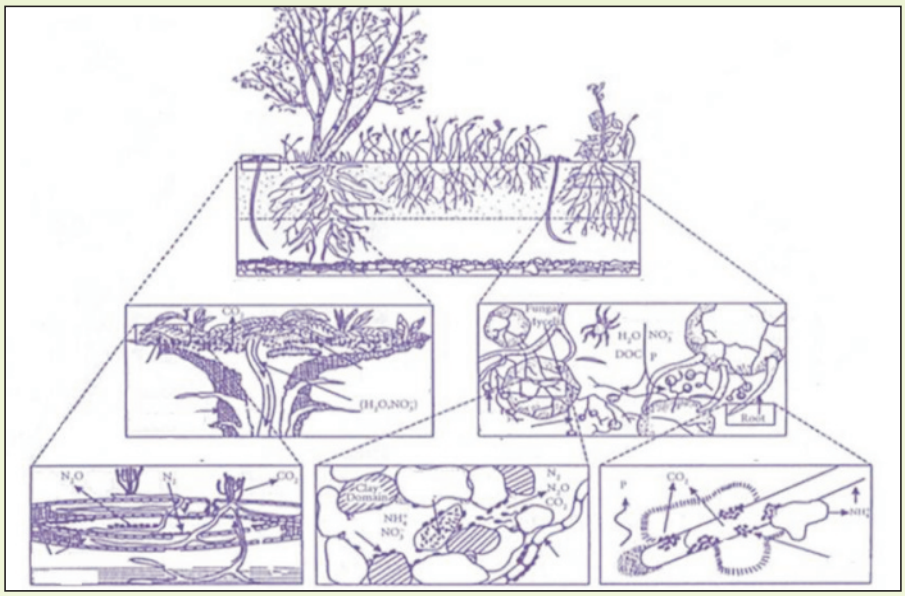

चित्र 3. जैविक गतिविधि ''प्रभाव क्षेत्र'' के आधार पर मृदा की रूपरेखा

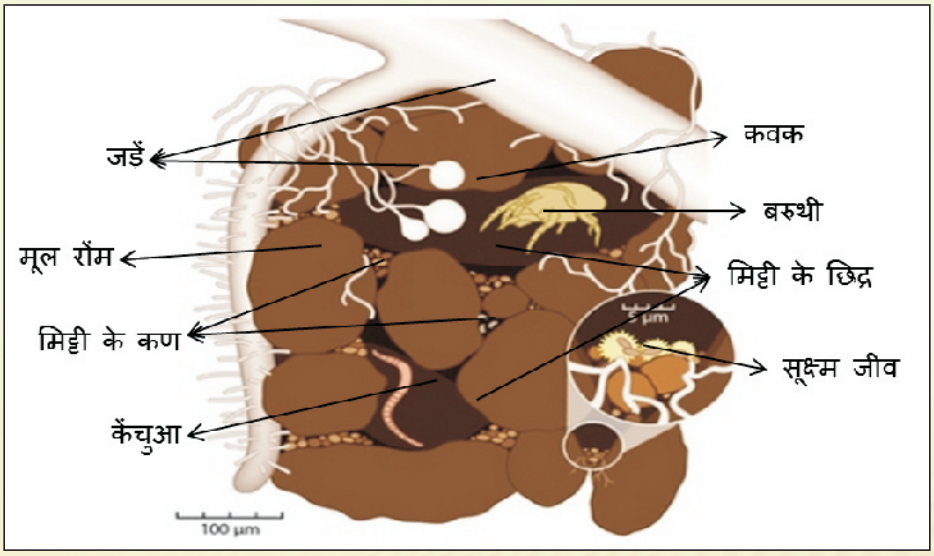

चित्र 4. मृदा की रूपरेखा में मृदा कण, पादप, जड़ें व जीवों का चित्रण

मृदा में जैव विविधता

मृदा परिच्छेदिका, संसाधन उपलब्धता, विशिष्ट स्थानिक जलवायु, रासायनिक एवं भौतिक संरचना में विभिन्नता मृदा जीवों के आकार, संघटन एवं वितरण को प्रभावित करते हैं। जीवाणु, कवक, शैवाल और अन्य जीव मृदा के स्वतंत्रजीवी घटक के प्रमुख जीव है। इन्हें शारीरिक आकार (सारणी 1) क्रियात्मक समूहों के आधार (सारणी 2 एवं 3), मृदा में निवास की अवधि के आधार (सारणी 4) पर व आवास के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है (चित्र 6)।

सारणी 1. मृदा जीवों का आकार के आधार पर वर्गीकरण

जीव	आकार (मि.मी.)	उदाहरण
सूक्ष्म वनस्पति	<1	बैक्टीरिया, शैवाल, कवक, एक्टिनोमायसेटइस आदि
सूक्ष्म प्राणिजात	<2	प्रोटोज़ोआ, सूत्र कृमि आदि
मध्यम प्राणिजात	2–10	कोलेम्बोला, वरूथी आदि
बड़े प्राणिजात	>10	केंचुआ, दीमक, घोंघा, स्लग, मकड़ी, चींटी आदि
बहुत बड़े प्राणिजात	>20	खरगोश, चूहे, साँप आदि

सारणी 2. मृदा जीवों का गतिविधियों के आधार पर वर्गीकरण

जीव	भोजन / कार्यकलाप
मांसाहारी	परभक्षी, परजीवी
पादपभक्षी	फल–फूल, पत्ती, तना, जड़, काष्ठ
मृतभक्षी	मृत जीव अवशेष
सहजीवी	कवकमूल
सहजीवी भक्षी	सूक्ष्म वनस्पत्ति
सर्वभक्षी	विविध प्रकार के खाद्य

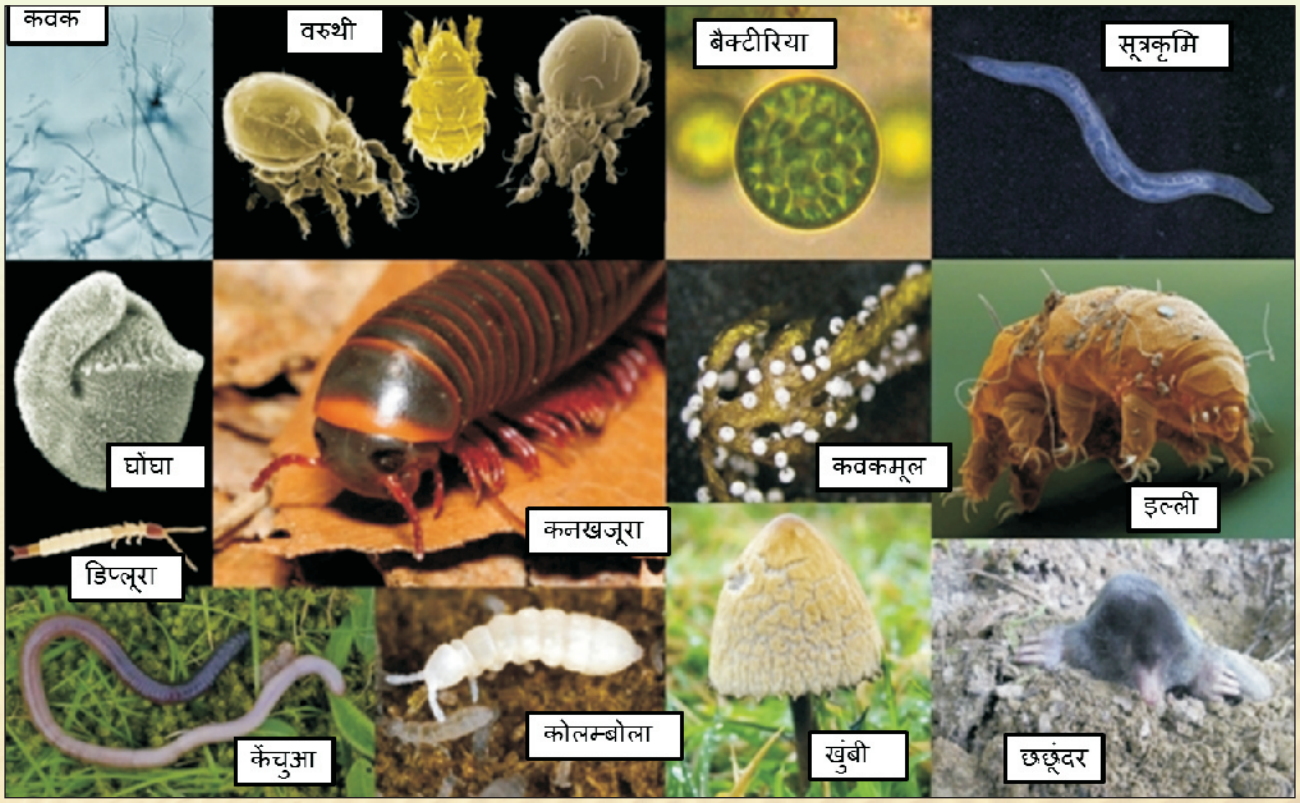

चित्र 5. विभिन्न प्रकार के मृदा जीव

सारणी 3. सूक्ष्म मृदा जीवों का गतिविधियों के आधार पर वर्गीकरण

जीव	उदाहरण
कार्बनिक पदार्थों के समावेश जीवाणु के अनुक्रिया आधारित	
एलोक्थेनस	बसिलस, सूडोमोनास
ऑटोक्थेनस	अर्थेबेक्टर, नोकार्डियम
कार्बन व ऊर्जा के श्रोत के उपयोग आधारित	
प्रकाश स्वपोषित	शैवाल, नीली हरी शैवाल, बैंगनी हरे सल्फर बैक्टीरिया
प्रकाश परपोषित	बैंगनी हरे गंधकहीन बैक्टीरिया, उकरियोटिक शैवाल
रासायनिक परपोषित	बैक्टीरिया, शैवाल, कवक, एकथ्टनोमायसेटइस, सूक्ष्म प्राणिजात
रासायनिक स्वपोषित	नाइट्रिकारक, गंधकऑक्सीकरक बैक्टीरिया
सूक्ष्म जीवों के वृद्धि पर तापमान के प्रभाव के आधार पर वर्गीकरण	
शीतरागी	लाल शैवाल
मध्यतापरागी	सूक्ष्म मृदा जीवों
तापरागी	क्लोस्ट्रिडीयम बसिलस, कई कवक, एक्टिनोमायसेटइस
सूक्ष्म जीवों पर ऑक्सीजन का हवा में अनुपात के आधार पर वर्गीकरण	
वायुजीवी (ऑक्सीजन आवश्यक)	एजकटोंबेक्टर, राइजोबियम
अवायुजीवी (ऑक्सीजन अनावश्यक)	क्लोस्ट्रिडीयम बसिलस
विकल्पी अवायुजीवी (ऑक्सीजन आवश्यक/अनावश्यक)	इश्चेरिरिया
अल्पवायुजीवी (थोड़ी ऑक्सीजन आवश्यक)	एजोस्पिरिलम

सारणी 4. मृदा प्राणियों का आवास अवधि के आधार पर वर्गीकरण

अवधि	जीव	उदाहरण
स्थायी	भू–जीवी	केंचुआ, दीमक, सूक्ष्म व माध्यम प्राणि/वनस्पति
अस्थायी	सक्रिय भू–रागी (केवल वयस्क बाहर जाता है)	भृंग, डिप्टेरा, बग, थ्रिप्स
	निष्क्रिय भू–रागी (केवल शीत/ग्रीष्म निष्क्रियता हेतु)	

मृदा जीवों को हेमीडेफॉन (सतही जैविक परत में रहने वाले) ऐनीडेफॉन (ऊपरी खनिज मृदाओं में रहने वाले) और ऐपीजॉइन (मृदा के ऊपरी सतह के वनस्पति परत में रहने वाले) में वर्गीकृत किया गया है। हेमीडेफॉन को नमी की मात्रा के आधार पर जलोदभिद, समोद्भिद और मरूद्भिद् में वर्गीकृत किया गया है (चित्र 6)।

मृदा पारिस्थितिक तंत्र में जैव विविधता का योगदान

मृदा जीवों प्रथम स्थलीय पादप के उद्भव काल से ही पारस्परिक क्रियाएँ कर रहे हैं जिससे मृदा खाद्य श्रृंखला का विकास हुआ है। मृदा स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी कार्यों एवं उत्पादन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मृदा में जटिल खाद्य श्रृंखलाओं में सभी जीवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन जीवों की विविध भूमिकाओं को निम्न श्रेणियों में रखा जा सकता है। (i) कवक मूल व नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणुओं को संचालित कर वनस्पति द्वारा पोषक अधिग्रहण को सुगम बनाना (ii) अपघटन, खनिज और स्थिरीकरण के माध्यम से पोषक तत्त्वों के प्रवाह को

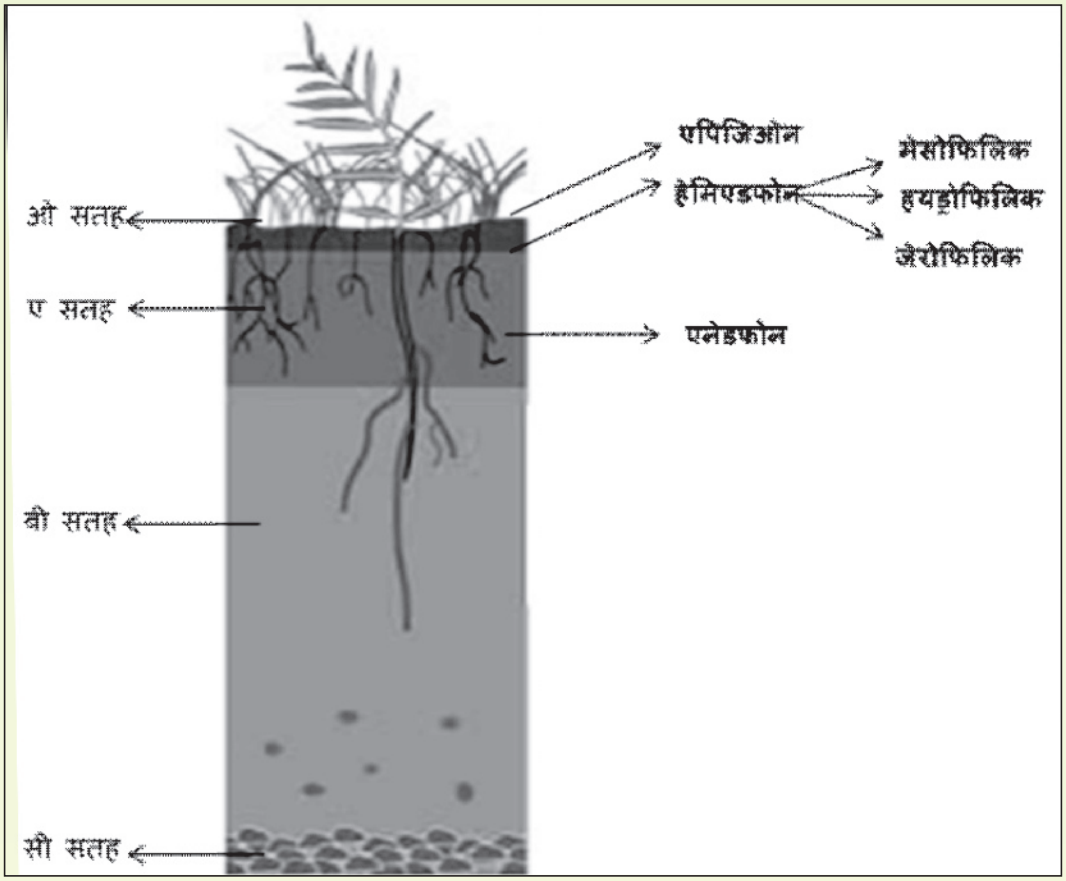

चित्र 6. आवास वरीयता के आधार पर मृदा जीव वर्गीकरण

विनियमित करना (iii) जैविक पदार्थों को तोड़ना, चबाना तथा सूक्ष्म वनस्पत्तियों के साथ संशोधन करना (iv) मृदा के संरचना को प्रभावित कर के वनस्पत्तियों के लिए पानी की उपलब्धता को बढ़ाना (v) परजीवी तथा रोगजनक जीवाणुओं को प्रभावित कर पौधों के स्वास्थ्य का संशोधन करना।

मृदा के वनस्पत्तीय समूह अपरद (डैट्रीटस) खाद्य श्रृंखला में "प्राथमिक उपभोक्ता", होते है। ये जैविक अवशेषों को उपयोगी या अहानिकर एवं कम हानिकारक उत्पादों में बदलने में सहायक होते हैं। प्रकृति में जीवाणु, कवक एवं अकाइोरूक पारस्परिक क्रिया करके मूलमण्डल में अपघटन एवं क्रियाकलाप को प्रभावित करते है। मृदा जीव कवक एवं जीवाणुओं के वितरण, परिचालन एवं कार्यशीलता को संचालित करते है (चित्र 7)।

मृदा जीवों को विषाक्त रसायनों एवं अन्य खतरनाक कचरे को संचित करके पर्यावरर्णीय खतरे को कम या बहिष्कृत करने में उपयोग कर सकते है। इस क्रियाविधि को "बायोरेमिडिएशन" कहते हैं। इसी प्रकार कुछ मृदा जीव पादप वृद्धि के लिए हानिकारक होते है जैसे कुछ फसल चक्रों में सूत्रकर्मियों की संख्या में बढ़ोत्तरी। तथापि ये फसलों को, हानिकारक कीटों एवं बीमारियों के प्रकोप से जैविक नियंत्रण एवं ग्रहणशीलता में कमी द्वारा, बचाते हैं। मृदा जीव मृदा स्वास्थ्य सूचक का कार्य भी करते है, क्योंकि ये मृदा जीव मृदा प्रबंधन के प्रति संवेदनशील होते है तथा कुछ महीनों में ही इसके प्रति प्रतिक्रिया दिखाते है, जबकि रासायनिक एवं भौतिक गुणों को मुख्यतया भौगोलिक कारकों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, साथ ही इन गुणों में परिवर्तन का आभास या मापन नुकसान होने के उपरान्त होता है।

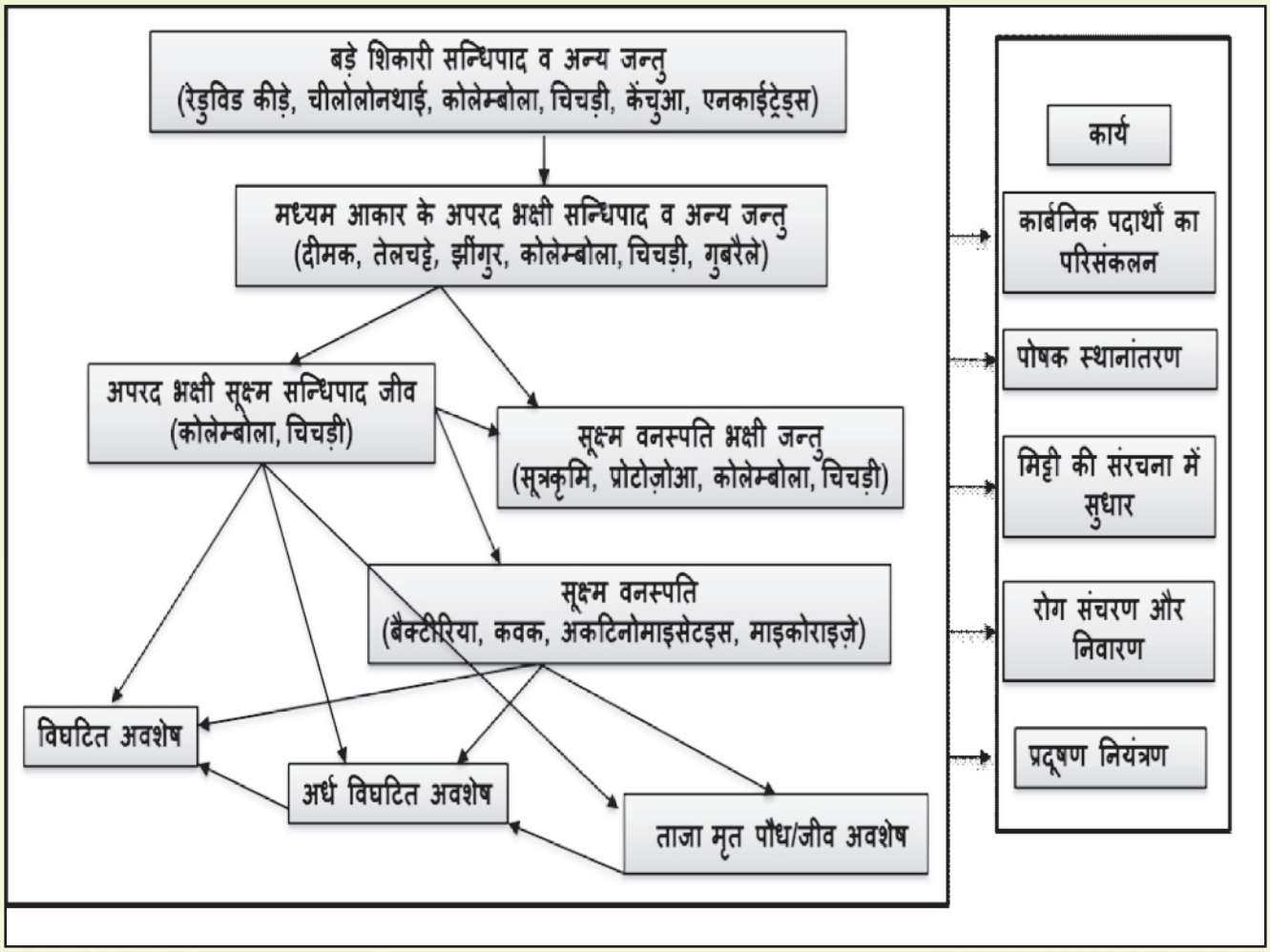

चित्र 7. मृदा पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य श्रृंखला

मृदा जीवों का पश्चिमी राजस्थान की मृदा उर्वरकता में योगदान का आंकलन

रेगिस्तान की मृदा में आमतौर पर पोषक तत्त्वों की कमी होती है। यहाँ के अधिक तापमान व कम नमी वाली जलवायु के कारण अवशिष्ट मृत पदार्थों का विघटन धीमी गति से होता है। अर्द्धविघटित जैविक पदार्थ अकसर तेज हवा में उड़ जाते हैं और पोषक तत्त्व मृदा में विलय नहीं हो पाते है। अतएव ऐसी मृदा की उत्पादकता को बनाए रखने में मृदा जीवों और उनकी गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता हैं। इस तथ्य की पुष्टि कई अध्ययनों से भी हुई है।

बाड़मेर तहसील के पाँच गाँवों के चार कृषि प्रणालियों (मूंग–जीरा, पुष्प कृषि, चरागाह व बागवानी) के मृदा परीक्षण में पाया गया कि जैव विविधता व प्रचुरता मृदा तापमान, मृदा नमी, मृदा जैविक कार्बन, व नाइट्रोजन के साथ उच्च सह सम्बंध है। इसी प्रकार जोधपुर जिले के बिलाड़ा तहसील में किये गये एक अन्य अध्ययन में यह भी पाया गया कि अलग–अलग कृषि प्रणालियाँ जैव विविधता पर अलग–अलग प्रकार से प्रभाव पड़ता है। इसी अध्ययन से यह भी पता चलता है कि फसल प्रणाली में वृक्षों का समावेश करने से विविधता और प्रचुरता में वृद्धि होती है, जो कि मृदा पोषण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रकार एक अन्य अध्ययन में, अलग–अलग चराई प्रबंधन के अंतर्गत चरागाहों की जैविक गतिविधियों का मूल्यांकन, घास के विकास की अवधि (जो कि वर्ष के 26वें से 50वें सप्ताह के मध्य होती है), में किया गया। मूल्यांकन हेतु मृदा जैविक कार्बन (एस.ओ.सी.) अस्थिर कार्बन (एल.सी.), सूक्ष्मजीव कार्बन (एम.बी.सी.), डिहाईड्रीजीनेस गतिविधि (डि.एच.ए.), फ्लोरिसेंट डाइएसीटेट गतिविधि (एफ.डी.ए.), अमोनियम नाइट्रोजन, नाइट्रेट नाइट्रोजन और मृदा सूक्ष्म–संधिपाद जीव मापदण्डों का प्रयोग किया गया।

प्रयोग के परिणाम से पता चलता है कि मृदा एंजाइम (एफ.डी.ए., डि.एच.ए.) तथा सूक्ष्म संधिपादों की संख्या में महत्त्वपूर्ण तुलनात्मक सम्बंध है तथा 26वें से 32 वें सप्ताह (जो कि घास के सक्रिय विकास की अवधि है) में इनका मूल्य अधिक था (चित्र 8)। इसी प्रकार, चराई प्रबंधन का भी प्रभाव एस.ओ.सी., एल.सी., एम.बी.सी., डि.एच.ए., एफ.डी.ए. और मृदा सूक्ष्म–संधिपादों पर पाया गया। इन सभी मापदण्डों का सर्वाधिक मूल्य सिल्विपाश्चर, चराई प्रतिबंधित प्राकृतिक चरागाह और नियंत्रित चराई वाले चरागाहों में अधिकतम था (सारणी 5)। अध्ययन से यह पता चलता है कि एल.सी. और मृदा सूक्ष्म संधिपाद की संख्या का प्रयोग मृदा के उपजाऊपन के आकलन के लिए किया जा सकता है। संधिपदों की संख्या का अस्थिर कार्बन (आर = 0.76), डिहाईड्रीजीनेस गतिविधि (आर = 0.78) और कार्बन प्रबंधन सूचकांक (आर = 0.80) में उच्च सह सम्बंध पाया गया।

सारणी 5. सेवण आधारित चरागाहों का मृदा के जैविक एवं जैवरासायनिक मापदण्डों के आधार पर मूल्यांकन।

चरागाह प्रबंधन प्रणालियाँ	मृदा के रासायनिक व जैव रासायनिक मापदण्ड (पीपीएम)						संधिपाद (#)	
	एस.ओ.सी.	एम.बी.सी.	एफ.डी.ए.	डि.एच.ए.	एन.एच$_4^+$-एन	एन.ओ$_3^-$-एन	सूक्ष्म	बड़े
खेती	1145	22.91	2.78	30.27	4.61	4.82	38	27.2
सिल्विपाश्चर	1139	29.07	3.34	31.45	5.25	4.69	140.6	45.4
गहन प्रबंधन के चरागाह	947	24.91	3.04	25.38	5.03	3.68	89.08	64
सुरक्षित प्राकृतिक चरागाह	918	23.87	3.12	37.55	4.55	4.56	143.3	48.2
सुरक्षित प्राकृतिक चरागाह (नियंत्रित चराई)	991	25.31	3.29	31.09	5.46	4.45	57.4	102.2
ओरण (नियंत्रित चराई)	968	22.01	2.99	27.47	5.22	5.06	30.9	21.9

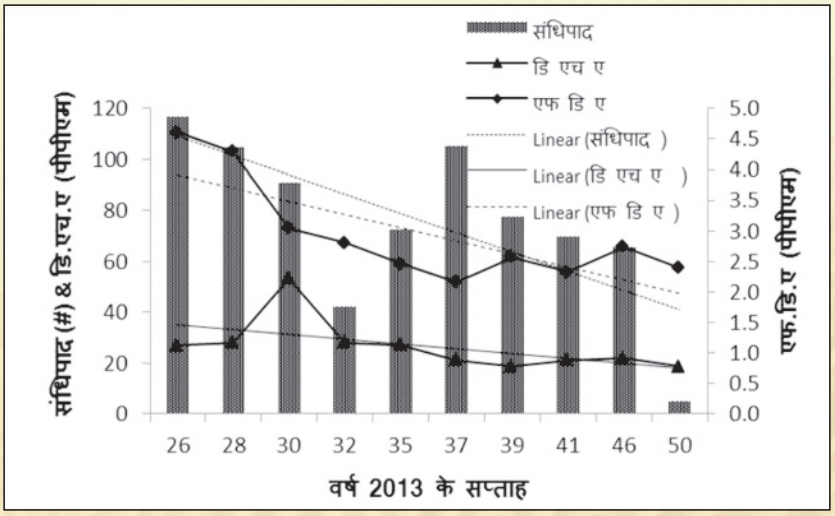

चित्र 8. सेवण घास के सक्रिय विकास की अवधि में मृदा जीवों एवं एंजाइमों का आकलन

बीकानेर व जैसलमेर जिलों में इंदिरा गांधी नहर कमाण्ड एरिया के बिसलपुर और चारनवाला (उनकी वितरिका सहित) के मृदा नमूनों का मृदा जैविक गुणवत्ता सूचकांक बताता है कि चना और मूँगफली आधारित कृषि क्षेत्र में सबसे अधिक जैविक गतिविधि रही (चित्र 9)।

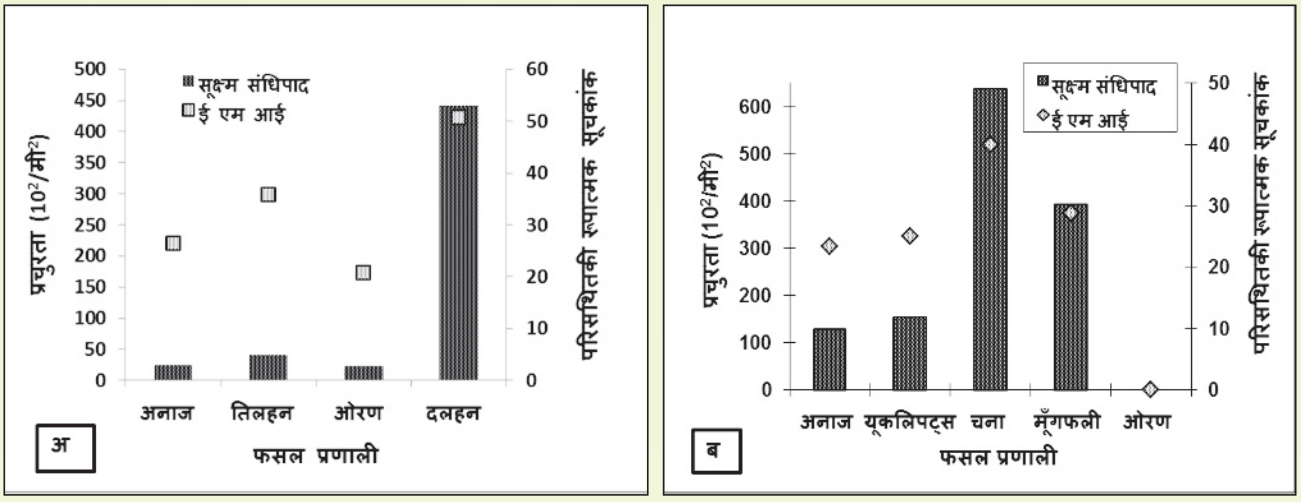

चित्र 9. विभिन्न फसल प्रणालियों का सूक्ष्म-संधिपादों की प्रचुरता पर प्रभाव
(अ) जालोर जिला (ब) इंदिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र

इसी प्रकार जालोर जिले के भीनमाल, रानीवाड़ा और बागरा तहसीलों (लूणी बेसिन के संक्रमण कालीन मैदानी भाग) से लिए गए मृदा नमूनों के अध्ययन में सर्वाधिक जैव विविधता, मृदा जैविक कार्बन (एस.ओ.सी.), अस्थिर कार्बन (एल.सी.), डिहाईड्रीजीनेस गतिविधि (डि.एच.ए.), फ्लोरिसेंट डाइएसीटेट गतिविधि (एफ.डी.ए.), दलहन फसलों में थी (सारणी 6)।

सारणी 6. भू-उपयोग की विभिन्न स्थितियों में मृदा में रासायनिक, जैव रासायनिक और जैविक प्रभाग।

मापदण्ड	भू–उपयोग की विभिन्न स्थितियाँ			
	ओरण	दलहन	तिलहन	अनाज
मृदा प्रतिक्रिया	8.23	8.07	8.12	8.16
मृदा जैविक कार्बन (%)	0.16	2.60	2.68	2.38
अस्थिर कार्बन (पीपीएम)	49.20	82.70	74.30	65.70
डिहाईड्रीजीनेस गतिविधि (µग्रा पी.एन.पी./ग्रा मृदा/घंटा)	29.90	50.40	53.40	44.80
फ्लोरिसेंट डाइएसीटेट गतिविधि (µग्रा टी.पी.एफ./ग्रा मृदा/घंटा)	3.65	6.54	6.39	6.08
जैविक गुणवत्ता	3.33	40.00	30.00	20.00

★★★

पौधों एवं मृदा में पौषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन

एम.एल. सोनी, सीमा भारद्वाज, वी.एस. राठौड व एन.डी. यादव

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर

पौधों के समुचित विकास व वृद्धि हेतु यह आवश्यक है कि इन्हे मिलने वाले पौषक तत्वों की मात्रा उचित तथा उपयुक्त अनुपात में हो ताकि सभी पौषक तत्व पौधों को उपलब्ध हो सके। पौधे को अपनी आवश्यकता हेतु पौषक तत्व वायुमंडल द्वारा, मृदा द्वारा एवं बाहरी स्त्रोतों (उर्वरक एवं खाद) से उपलब्ध होते है। पौधों के पूर्ण विकास हेतु कुल 17 पौषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी एक पौषक तत्व की कमी होने पर पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और भरपूर उपज नहीं मिलती। इन तत्वों में कार्बन व आक्सिजन वायुमण्डल से व हाइड्रोजन जल द्वारा प्राप्त होते है। इनके अतिरिक्त आवश्यक पौषक तत्वों की पूर्ती मृदा से होती है। इन तत्वों में नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश की पौधों को काफी मात्रा में जरूरत रहती है। इसलिए इन्हें मुख्य पौषक तत्व कहते है। कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं गन्धक को पौधे अपेक्षाकृत कम मात्रा में ग्रहण करते है। इन्हें गौण अथवा द्वितीय पौषक तत्व कहते है। ताम्बा, जिंक, मैगनीज, लोहा, बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन व निक्कल की पौधों को काफी कम मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। अतः इन्हें सूक्ष्म पौषक तत्व कहते है।

विभिन्न मृदाओं में इन सूक्ष्म तत्वों की कमी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कुछ मृदाओं में जहॉ चार सूक्ष्म तत्वों की कमी पाई गई है वहीं अन्य मृदाओं में बढ़कर छः तक पहुॅच चुकी है। यूं तो मृदा नमी, तापमान, जलवायु आदि कारक पौषक तत्व की उपलब्धता को प्रभावित करते है, परन्तु मृदा के पी.एच. मान पर पौषक तत्व की उपलब्धता अत्यधिक निर्भर करती हैं। क्षारीय मृदाओं में नत्रजन, फॉस्फोरस, बोरोन व सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी पायी जाती है जबकि अम्लीय मृदाओं में फॉस्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्निशियम, गंधक बोरोन व मोलिब्डेनम की कमी पायी जाती है।

नत्रजन व फॉस्फोरस की कमी अधिकांश भारतीय मृदाओं में पायी गयी है। रेतीली मोटी संरचना की मृदाओं में गंधक व सूक्ष्म पौषक तत्व जैसे जिंक, लोहा, मेंगनीज आदि की भी कमी पायी जाती है जो फसल उत्पादन को प्रभावित करते है। अतः मृदा में उपस्थित पौषक तत्वों के बारे में समुचित जानकारी, फसलों में उनकी कमी के लक्षण तथा नियंत्रण हेतु कृषि तकनीकों की जानकारी अति आवश्यक है ताकि फसल विशेष में पौषक तत्वों की कमी न हो।

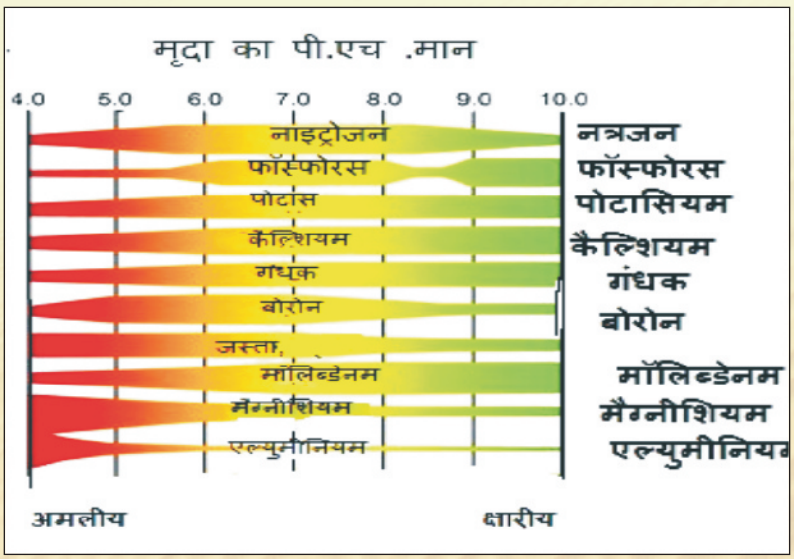

विभिन्न पी.एच. मान पर मृदा में पौषक तत्व उपलब्धता।

यूं पता लगायें मृदा में पौषक तत्वों की कमी का

फसल की कटाई हो जाने अथवा परिपक्व खड़ी फसल में जब भूमि में नमी की मात्रा कम से कम हो, तब उचित वैज्ञानिक विधि द्वारा खेत से नमूने प्राप्त कर मृदा परीक्षण हेतु नजदीकी प्रयोगशाला में भेज दिया जाना चाहिए। प्रत्येक तीन वर्ष में फसल मौसम शुरू होने से पूर्व एक बार मिट्टी की जांच अवश्य करानी चाहिए। सस्य फसल व सब्जियों हेतु 15 सेंटीमीटर व फलदार वृक्षों हेतु 2.5 मीटर मृदा गहराई तक नमूने लेने चाहिए। एक एकड़ क्षेत्र में लगभग 8–10 स्थानों से 'v' आकार के 6 इंच गहरे गहरे गढ्ढ़े बनायें। एक खेत के सभी स्थानों से प्राप्त मिट्टी को एक साथ मिलाकर ½ किलोग्राम का एक संयुक्त नमूना बनायें। नमूने की मिट्टी से कंकड़, घास इत्यादि अलग करें। सूखे हुए नमूने को कपड़े की थैली में भरकर नाम, खेत संख्या, फसल उगाने का ब्यौरा आदि जानकारी लिखकर प्रयोगशाला को प्रेषित करें अथवा मृदा परीक्षण किट द्वारा स्वयं परीक्षण करें। प्रयोगशाला में जॉच के पश्चात् पौधों/फसलों की आवश्यकता अनुसार सिफारिश कि गयी उर्वरक की मात्रा सही समय व सही तरीके से दी जानी चाहिए। मृदा परीक्षण द्वारा न केवल उर्वरकों के कम या अधिक प्रयोग से बचा जा सकता है बल्कि सही मात्रा में प्रयोग से पर्यावरण संरक्षण में मदद भी मिलती है।

मृदा में पौषक तत्वों का क्रांतिक स्तर

शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की अधिकांश मृदायें नत्रजन की कमी से ग्रसित है। बिना नत्रजन प्रयोग के इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन वृद्धि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मृदा परीक्षण के अनुसार जिन मृदाओं में उपलब्ध नत्रजन की मात्रा 250 कि.ग्रा./हेक्टेयर से कम पायी जाती है, वह नत्रजन की कमी से प्रभावित होती (सारणी–1)। इसी तरह फॉस्फोरस व पोटाश का मृदा में क्रांतिक स्तर क्रमशः 20 व 125 कि.ग्रा./ हेक्टेयर है। गंधक का मृदा में क्रांतिक स्तर 20 कि.ग्रा./हेक्टेयर है। सामान्यतया बारानी दशा में सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी नहीं देखी गयी है परन्तु सिंचित एवं सघन कृषि प्रणाली में जस्ता व लौह तत्व की कमी देखी गयी है। कुछ क्षेत्रों में मेंगनीज की कमी भी पायी गयी है। मृदा में इन सूक्ष्म पौषक तत्वों का क्रांतिक स्तर (सारणी–2) में दर्शाया गया है।

सारणी 1 : प्रमुख व द्वितीय पौषक तत्वों का मृदा में क्रांतिक स्तर (कि.ग्रा./हेक्टेयर)

श्रेणी	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	गंधक
निम्न	<250	<20	<125	<20
मध्यम	250.500	20.50	125.250	20.40
अधिक	>500	>50	>250	>40

सारणी 2 : सूक्ष्म पौषक तत्वों का मृदा में क्रांतिक स्तर (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)

सूक्ष्म पौषक तत्व	क्रांतिक स्तर
जस्ता	0.6
लोहा	2.5–4.5
मैंगनीज	3.0
ताम्बा	0.2
बोरोन	0.5
मॉलिब्डेनम	0.2

पौषक तत्वों की कमी के लक्षण

पौधों में पौषक तत्वों कि उपलब्धता उचित नहीं होने पर पौधों में इनकी कमी हो जाती है व कमी के लक्षण नजर आने लगते है। पौषक तत्वों की कमी के मुख्य कारण निम्नलिखित है :–

- मिट्टी में कार्बन स्तर का बहुत कम या बहुत ज्यादा होना।
- सघन खेती वाले क्षेत्र।
- क्षारीय जल का सिंचाई में उपयोग।
- मृदा का पी.एच. मान।

विभिन्न पौषक तत्वों की कमी के लक्षणों की पहचान निम्न वर्णन द्वारा किया जा सकता है।

नत्रजन

यह तत्व पौधों में गतिशील है अतः इसकी कमी से पुरानी व निचली पत्तियों पर पीलापन "v" के आकार में पट्टी के शीर्ष पर दिखाई देता है। दलहनी फसलों को छोड़कर लगभग सभी फसलों में इसकी कमी के लक्षण देखे जा सकते है। पुरानी पत्तियॉ नोक की तरफ से पीली पड़ने लगती है जिसे ''क्लोरोसिस'' कहते है। पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा तना छोटा एवं पतला हो जाता है। पौधों में ''टिलरिंग'' (कल्ले) कम होती है और परिपक्वता शीघ्र आ जाती हैं जिसके कारण फसल उपज कम प्राप्त होती है।

नत्रजन की कमी के लक्षण

फॉस्फोरस

यह तत्व पौधों में गतिशील है अतः इसकी कमी भी पुरानी पत्तियों पर देखी जा सकती है। इसकी कमी से पत्तियों की नोक व किनारों पर लाल–हरा अथवा बेंगनी रंग की धारियॉ दिखने लगती है। पौधों में वृद्धि कम होती है, जड़ फैलाव भी कम होता है एवं दाने पिचके हुए रह जाते है। इसकी कमी से फसल की परिपक्वता देरी से होती है। सरसों में इसकी कमी से पुरानी पत्तियॉ बेंगनी लाल रंग की हो जाती है।

- मक्के की फसल में इसकी कमी से पुरानी पत्तियों में लाल व बेंगनी रंग के हल्के धब्बे दिखाई देने लगते है।
- इसकी कमी से आलू की पत्तियाँ प्याले के आकार की हो जाती है।
- दलहनी फसलों की पत्तियॉ नीले रंग की तथा चौड़ी पत्ती वाले पौधे में पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है।

पोटाश

नत्रजन व फॉस्फोरस की तरह ही इस तत्व की कमी के लक्षण भी पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते है। इसकी कमी के कारण पत्तियों के किनारे पीले भूरे पड़ जाते है और कुछ समय बाद झुलसे हुए नजर आने लगते है व पत्तियों के किनारे मुड़कर सूख जाते है। कभी–कभी पत्तियों के निचले भाग में काले–भूरे धब्बे नजर आने लगते है। इसकी कमी से पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। पौधों में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया कम तथा श्वसन की क्रिया अधिक होती है। पौधों में ऊपर की कलियों की वृद्धि रूक जाती है। पौधों में फसल गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

- सरसों वर्गीय फसलों में इसकी कमी से पत्तियाँ किनारे से झुलसी हुए दिखाई देती है। पश्चिमी राजस्थान की मृदाओं में यह तत्व बहुतायत में पाया जाता था, किन्तु गत कई वर्षो से सघन कृषि प्रणाली अपनाने के कारण मृदा में इस तत्व की अधिकता में कमी आ गयी है।
- टमाटर की फसल में इसकी कमी से तना कठोर हो जाता है व पत्तियों में पीतल जैसा रंग दिखाई देने लगता है।
- इसकी कमी से मक्का के भुट्टे छोटे, नुकीले तथा किनारों पर दाने कम पड़ते है।
- आलू की फसल में कन्द का आकार छोटा हो जाता है तथा जड़ों का विकास कम हो जाता है।

कैल्शियम

शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अतः इन मृदाओं में इसकी कमी के लक्षण नहीं पाये जाते है। कैल्शियम की कमी मुख्यतः अम्लीय मृदाओं में पायी जाती है। इसकी कमी से पौधों की नयी पत्तियाँ सबसे पहले प्रभावित होती है। ये प्रायः कुरूप, छोटी और असामान्यता गहरे हरे रंग की हो जाती है। पत्तियों का अग्रभाग हुक के आकार का हो जाता है, जिसे देखकर इस तत्व की कमी बड़ी आसानी से पहचानी जा सकती है। अधिक कमी की दशा में पौधों की शीर्ष कलियाँ (वर्धनशील अग्रभाग) सूख जाती है। जड़ों का विकास बुरी तरह प्रभावित होता है और जड़े सड़ने लगती है। कलियाँ और पुष्प अपरिपक्व अवस्था में गिर जाती है। फल व कलियाँ अपरिपक्व दशा में मुरझा जाते है।

- टमाटर की पौध में इसकी कमी से ''ब्लॉसम एण्ड रोट'' नामक बीमारी हो जाती है जिसके कारण फल खराब हो जाते हैं। पत्तागोभी में इसकी कमी से ''टिप ब्राउनिंग'' नाम का रोग हो जाता है व गाजर में खोखलापन आ जाता है।

मैग्नीशियम

इसकी कमी से पुरानी पत्तियाँ किनारों से और शिराओं एवं मध्य भाग से पीली पड़ने लगती है तथा अधिक कमी की स्थिति से प्रभावित पत्तियाँ सूख जाती है और गिरने लगती है। पत्तियाँ आकार में छोटी तथा ऊपर की ओर मुड़ी हुई दिखाई पड़ती हैं। टहनियाँ कमजोर होकर कवक जनित रोग के प्रति संवेदनशील हो जाती है। साधारणतया अपरिपक्व पत्तियाँ गिर जाती है।

- दलहनी फसलों में पत्तियों की मुख्य नसों के बीच की जगह पीली पड़ जाती है।
- कुछ सब्जी वाली फसलों में नसों के बीच पीले धब्बे बन जाते है और अन्त में संतरे के रंग के लाल और गुलाबी रंग के चमकीले धब्बे बन जाते है।

गंधक

इस तत्व की कमी का प्रभाव नयी पत्तियों पर पड़ता है। इसकी कमी से नयी पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगता है। नयी पत्तियाँ एक साथ पीले हरे रंग की हो जाती है। पीलापन पत्तियों की नोक से शुरू होकर आधार तक पहुँचता है तथा कुछ समय बाद पूरी पत्ती का रंग पीला पड़ जाता है। तिलहनी फसलों हेतु गंधक की आवश्यकता अधिक होने के कारण इसकी कमी से अधिक प्रभावित होती है। तने की वृद्धि रूक जाती है। तना सख्त व पतला हो जाता है।

- ब्रेसिका जाति (सरसों) की पत्तियों का प्यालेनुमा हो जाना।
- मक्का, कपास, तोरिया, टमाटर व रिजका में तनों का लाल हो जाना।

जस्ता

जस्ते की कमी के लक्षण मुख्यतः पौधों के ऊपरी भाग से दूसरी या तीसरी पूर्ण परिपक्व पत्तियों से प्रारम्भ होते है। इसकी कमी से पुरानी पत्तियाँ प्रभावित होती है। इसकी कमी से पुरानी पत्तियों पर पीले धब्बे बन जाते हैं व शिराओं के दानों और रंगहीन पट्टी दिखाई देने लगती है और शीर्ष पर पत्तियाँ झुरमुट हो जाती है। विभिन्न फसलों में इसकी कमी पहचानने हेतु उचित अनुभव की आवश्यकता होती है तथापि कुछ फसलों में इसकी कमी के लक्षण नीचे दिये गये हैं।

- बाजरा की फसल में जस्ते कि कमी होने पर पत्तियाँ बीच में सुखने लगती है और दोनों सिरों पर पत्ती हरी होती है, बाद वाली अवस्था में पत्ते पूर्ण रूप से सूख जाते है। जिन मृदाओं का पी.एच. मान अधिक होता है इस तत्व की कमी उन मृदाओं में अधिक देखी गयी हैं
- गेहूँ में ऊपरी 3–4 पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है व बीज की पैदावार कम हो जाती है।
- मक्का में प्रारम्भ में हल्के पीले रंग की धारियाँ बन जाती है और बाद में चौड़े सफेद या पीले रंग के धब्बे बन जाते है। शिराओं का रंग लाल गुलाबी हो जाता है। ये लक्षण पत्तियों की मध्य शिरा और किनारों के बीच दृष्टिगोचर होते है, जो कि मुख्यतः पत्ती के आधे भाग में ही सीमित रहते है।
- धान में जिंक की कमी से ''खैरा'' रोग हो जाता है। धान की रोपाई के 15–20 दिन बाद पुरानी पत्तियों पर छोटे–छोटे हल्के पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है, जो कि बाद में आकार में बड़े होकर आपस में मिल जाते है। पत्तियाँ गहरे भूरे रंग (लोहे पर जंग की तरह) की जो जाती है व सूखने लगती है।
- कपास के पौधों में जस्ते कि कमी होने पर पत्तियाँ हल्की पीली पड़ जाती हैं एवं उत्तक क्षय से पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती है। गांठों की दूरी कम हो जाती है तथा बाद में अधिक होने पर टिंडे का आकार छोटा हो जाता है।

- नीबू प्रजाति के पौधों में जस्ते की कमी से पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है तथा पत्तियों की नसों के बीच का रंग हल्का पड़ना, फलों का गिरना,त्र वृद्धि न होना आदि लक्षण पैदा हो जाते है। इसकी कमी होने से पत्तियों पर लाल धब्बे बन जाते है व नयी पत्तियों की मध्य शिरा पीली पड़ जाती है।

लोहा

इस तत्व की कमी से नई पत्तियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके कारण शिराओं का मध्य भाग पीला होने लगता है। अत्यधिक कमी हो जाने पर पूरी पत्तियाँ, शिराएँ और शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है जोकि बाद में हल्के सफेद रंग की तरह हो जाती हैं व कागज की तरह पतली दिखने लगती है।

- मृदा में अधिक कैल्शियम कार्बोनेट होने के कारण इस तत्व की कमी हो जाती हैं, जिसके कारण हरित रोग ''क्लोरोसिस'' हो जाता हैं। लोह तत्व की कमी होने से मूँगफली की फसल में नये पत्ते पीले पड़ जाते है। अधिक कमी की दशा में पूरा खेत पीला नजर आता है।
- धान में कमी से पौधा क्लोरोफिल रहित हो जाता है तथा पौधें की वृद्धि रूक जाती है।

मैंगनीज

इसकी कमी से नयी पत्तियों पर प्रभाव पड़ता हैं। नयी पत्तियों के आधार के निकट का भाग धूसर रंग का हो जाता है, जो धीरे–धीरे पीला और बाद में पीला–नारंगी रंग का हो जाता है। शिराएँ भूरी हो जाती हैं। शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है, बाद में प्रभावित पत्तियाँ मर जाती है। नई पत्तियों में तंतु बीच में मर जाते है। पौधों की पत्तियों पर मृत ऊतकों के धब्बे दिखाई पड़ते है।

- अनाज की फसलों में पत्तियाँ भूरे रंग की व पारदर्शी होती है तथा बाद में उसमें ऊतक गलन रोग पैदा होता है। जई में ''ग्रे स्पेक'' या भूरी चित्ती रोग, गन्ने में ''स्टीक रोग'' या अंगमारी रोग उत्पन्न होते है।
- मटर की फसल में मैंगनीज तत्व की कमी के कारण मार्श धब्बे बन जाते है।
- नीबू प्रजाति के पौधों में मैंगनीज की कमी के कारण पत्तियों के मध्य का रंग धीरे–धीरे हल्का पड़ जाता है। यह लक्षण पूर्ण विकसित पत्तियों पर स्पष्ट दिखाई देता है।

तांबा

इसकी कमी से गेहूँ की ऊपरी या सबसे नयी पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और पत्तियों का अग्रभाग मुड जाता है। पत्तियों के किनारे कट–फट जाते हैं तने की गांठों के बीच का भाग छोटा हो जाता है। इसकी कमी से फलों के अंदर रस का निर्माण कम होता है। नीबू जाति के फलों में लाल–भूरे धब्बे अनियमित आकार के दिखाई देते हैं। नीबू के नये वर्धनशील अंग मर जाते है जिन्हें ''एक्जैनथीमा'' कहते है। छाल और लकड़ी के मध्य गोन्द की थैली सी बन जाती है और फलों से भूरे रंग का स्त्राव/रस निकलता रहता है।

मोलिब्डेनम

इसकी कमी से पुरानी पत्तियों की शिराओं के मध्य भाग में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है। बाद में पत्तियों के किनारे सूखने लगते है और पत्तियाँ अन्दर की ओर मुड़ कर कटोरी के आकार की हो जाती है।

- इसकी कमी से फूल गोभी की पत्तियाँ कट–फट जाती है, जिससे केवल मध्य शिरा और पत्र दल के कुछ छोटे–छोटे टुकड़े ही शेष रह जाते है। इस प्रकार पत्तियाँ पूँछ के समान दिखायी देने लगती है, जिसे ''व्हिप टेल'' कहते है।
- सरसों जाति के पौधों व दलहनी फसलों में मालिब्डेनम की कमी के लक्षण जल्दी दिखाई देते है।

- पत्तियों का रंग पीला हरा या पीला हो जाता है तथा इस पर नारंगी रंग का चितकबरापन दिखाई पड़ता है।
- टमाटर की निचली पत्तियों के किनारे मुड़ जाते है तथा बाद में ''मोल्टिंग'' व ''नेक्रोसिस'' रचनाएँ बन जाती है।
- नीबू जाति के पौधों में मोलिब्डेनम की कमी से पत्तियों में ''पीला धब्बा'' रोग लगता है।

बोरोन :

इसकी कमी से नयी पत्तियाँ गुच्छे का रूप लेने लगती हैं। पौधों के वर्धनशील अग्रभाग सूखने लगते है और मर जाते है। नई पत्तियों के सिरे मुड़ जाते है तथा कुछ समय बाद पत्तियाँ सूख कर नष्ट हो जाती है। पौधे की ऊपरी बढ़वार का रूकना, इन्टरनोड की लम्बाई का कम होना इस तत्व की कमी को दर्शाते है। डंठल, तना व फल इसकी कमी के कारण फटने लगते हैं।

- बोरोन की कमी होने पर मूंगफली की फलियां खाली रह जाती है।
- इसकी कमी से चुकन्दर में ''हर्टराट'', फूल गोभी में ''ब्राउनिंग'' या ''खोखला तना'' एवं तम्बाखू में ''टाप–सिकनेस'' नामक विकार उत्पन्न हो जाते है।
- जड़ वाली फसलों में ''ब्राउन हार्ट'' नामक बीमारी हो जाती है, जिसमें जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते है। कभी–कभी जड़े मध्य से फट भी जाती है।
- दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियों की बढ़वार रूक जाती है।

सारणी-3 विभिन्न फसलों में मुख्य पौषक तत्वों की आवश्यकता (कि.ग्रा./हे.)

फसल	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
बाजरा	90.100	40	30
मोठ	20	40	–
मूंग	20	40	–
लोबिया	20	40.60	–
ग्वार	20	40	–
तिल	30	60	30
मूंगफली	20–40	50.60	30
अरण्डी	60	40	40
नरमा	80–100	30.40	30
कपास	70–80	30	30
गेंहूँ	120	60	60
जौ	60	30	30
चना	20	40	.
सरसों	60–90	60	40
सूर्यमुखी	60–80	60	40

बारानी/असिंचित दशा में गोबर की खाद, कम्पोस्ट व मुख्य पौषक तत्वों की मात्रा आधी कर दी जानी चाहिए।

पौषक तत्वों की कमी हेतु निदान

मुख्य पौषक तत्व : सघन फसल प्रणाली व सिंचित दशा में मृदा में जैविक कार्बन का स्तर बनाये रखने के लिये जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद, वर्मी कम्पोस्ट खाद आदि का उपयोग करें। जैविक खादों के प्रयोग से मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है, जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ जाती है और मृदा काफी उपजाऊ बनी रहती है। इसके अलावा जैविक खाद पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ प्रदान कराते हैं, जो मृदा में मौजूद सूक्ष्म जीवों के द्वारा पौधों को मिलते है जिससे पौधे स्वस्थ रहते हैं और उत्पादन बढ़ता है। पौध वृद्धि के लिए आवश्यक पौषक तत्वों जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश तथा काफी मात्रा में गौण पौषक तत्वों की पूर्ति जैविक खादों के प्रयोग से ही हो जाती है। अतः बुवाई से 20–25 दिन पहले 10–20 टन गोबर की खाद डालना अनिवार्य है। तत्पश्चात् बुवाई के समय या अन्य उचित समय पर सारणी–3 में दर्शाये अनुसार मुख्य पौषक तत्वों कि आपूर्ति की जानी चाहिये परन्तु अधिक लाभ के लिये मृदा परीक्षण के आधार पर पौषक तत्वो की आपूर्ति करें।

नत्रजन के स्थरीकरण हेतु बीज को फफूंद नाशक से उपचारित करने के बाद दलहनी फसलों में राइजोबियम व अनाज वाली फसलों में एजोटोबेक्टर जीवाणु खाद से बीज को उपचारित करना चाहिए। इसी प्रकार फॉस्फोरस हेतु फॉस्फोरस घोलक कल्चर (पी.एस.बी.) का प्रयोग करें। क्लचर की मात्रा दस ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपयोग करें। जीवाणु खाद से बीजों का उपचार करने के लिए बीजों को साफ फर्श पर या प्लास्टिक आदि की सीट डालकर फैला दें। फैले हुए बीजों पर पानी का हल्का छींटा लगा दें। गीले बीजों पर जीवाणु खाद का पैकेट खोलकर अच्छी तरह से बीज पर छिड़क दें। इसके बाद हल्के हाथ से बीजों पर जीवाणु खाद रगड़ दें ताकि बीज के हर दाने पर जीवाणु खाद की पर्त चढ़ जाए। उपचारित बीज को शीघ्र बो दें और बुवाई तक उसे छायादार ठण्डे स्थान पर रखें। जीवाणु खादों के उपचार से फसल को प्राकृतिक पोषण या खुराक प्राप्त होती है। इनके प्रयोग से बीजों का अंकुरण शीघ्र एवं जड़ों का विकास अच्छा होता है। इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की बचत होती है। तथा फसल उत्पादन बढ़ता है साथ ही आर्थिक लाभ भी अधिक मिलता हैं जैव उर्वरक उपचारित अन्न, सब्जी, फलों आदि उत्पादों का स्वाद रासायनिक उर्वरक की तुलना में प्राकृतिक रूप से उत्तम होता है। जैव उर्वरक उपचारित पौधों में रोगों से लड़ने की शक्ति अधिक होती है।

असिंचित अवस्था में पौषक तत्वों की पूरी मात्रा, आधार खाद के रूप में बोने से पूर्व, खेत की तैयारी करते समय प्रयोग करें। सिंचित अवस्था में नत्रजन की एक तिहाई, फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा आधार खाद के रूप में एवं शेष दो तिहाई नाइट्रोजन की मात्रा क्रमशः 20–25 एवं 40–45 दिनों बाद दें। भरपूर पैदावार लेने के लिये नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश (एन.पी.के.) के अलावा 25 किलो प्रति हेक्टर जिंक सल्फेट, आधार खाद के रूप में खेत तैयार करते समय प्रयोग करें। एक बार जिंक सल्फेट डाल देने के बाद लगभग दो वर्ष तक इसकी जरूरत नहीं पड़ती।

फसलों के पौषक प्रबंधन में इस बात का हमेशा ध्यान रखें कि किसी भी तिलहन फसल में सुपर फास्फेट ज्यादा गुणकारी होती है। इसमें मौजूद गंधक तिलहन फसलों के लिये विशेष लाभदायक होता है। दलहन एवं खाद्यान्न फसलों में डी.ए.पी. एवं अन्य यौगिक उर्वरकों का प्रयोग कर सकते है। सुपर फास्फेट उर्वरक का प्रयोग हमेशा खेत की तैयारी के समय आधार खाद के रूप में करें।

सूक्ष्म पौषक तत्व

विभिन्न सूक्ष्म पौषक तत्वों जैसे जस्ता, लोहा, तांबा, बोरोन, मैगनीज, मोलिब्डेनम आदि में से जस्ते की कमी सबसे अधिक अंकित की गयी है। इसके बाद लोहा व मैंगनीज की कमी देखी गयी है। कुछ मृदाओं मे

बोरोन व मोलेब्डेनम की कमी भी पाई गयी है। मुख्य तौर पर सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी सघन व सिंचित खेती के दौरान पायी गयी है।

शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में अधिकांश रूप से जिंक, लोहा व तांबा की कमी पायी गयी हैं। मृदा में सूक्ष्म पौषक तत्वों का स्तर कम होने से उगाई जाने वाली फसलों में इन पौषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः इनका निदान अगर सही समय पर नहीं किया जाता हैं तो फसल उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

- गेहूँ की खड़ी फसल में जिंक कि कमी के लक्षण प्रकट होने पर 2 कि.ग्रा जिंक सल्फेट 1000 ग्राम बुझा चूना 240 लीटर पानी में घोल कर बुवाई के 35–40 दिनों बाद प्रति हेक्टर छिड़काव करना चाहिए व जिंक की कमी वाले खेतों में बुवाई से पूर्व 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टर के हिसाब से जमीन में मिला देना चाहिए।
- मूंगफली में लोहा तत्व की कमी अक्सर देखी जाती है। लोहे की कमी को दूर करने के लिए 0.5 प्रतिशत हरा कसीस के साथ 0.25 प्रतिशत सिट्रिक एसिड का छिड़काव करना चाहिए। ऐसा करने से लोह तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाता है।
- बोरोन की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.1 प्रतिशत बोरेक्स पाउडर का फसल पर छिड़काव करना चाहिये व 2.5 किलोग्राम बोरेक्स पाउडर प्रति बीघा कि दर से खेत में भुरकने से इसकी कमी को पूरा किया जा सकता है।
- नीबू वर्गीय पौधों में सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी से नुकसान को रोकन हेतु फरवरी व जुलाई माह में 500 ग्राम जिंक सल्फेट, 600 ग्राम कॉपर सल्फेट, 200 ग्राम मैंगनीज सल्फेट, 200 ग्राम मैग्नीसियम सल्फेट, 100 ग्राम बोरिक एसिड, 100 ग्राम फेरस सल्फेट, बुझा हुआ चुना, 700 ग्राम व पानी 100 लीटर रखना चाहिए व इनके अलग–अलग घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।
- मटर की फसल में मैंगनीज तत्व की कमी के कारण ''मार्श धब्बे'' बना जाते है। इसके निदान हेतु फसल में 0.2–0.3 प्रतिशत मैंगनीज सल्फेट का छिड़काव करना लाभदायक होता है।
- गोभी वर्गीय सब्जी में मोलिब्डेनम की कमी से पत्तों का सकड़ा होना नामक विकार हो जाता है। इसे रोकने हेतु 0.1–0.3 प्रतिशत अमोनियम मोलीबडेट का छिड़काव करना चाहिए।

★★★

थार रेगिस्तान में लक्षित उपज हेतु उर्वरक अनुशंसा एवं उर्वरक संबंधी सामान्य जानकारी

आई.जे. गुलाटी*, एस.आर. यादव** एवं प्रदीप डे.**

एस.के. कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर*

परियोजना समन्वयक, अखिल भारतीय मृदा परीक्षण फसल अनुक्रिया परियोजना, भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल**

राजस्थान भारत के उत्तर–पश्चिम में 23 3° तथा 30 12° आकांक्षा और 69 30° व 78 17° देशान्तर के मध्य स्थित है। इसका क्षेत्रफल 342239 वर्ग किमी है। यह प्रदेश दो प्रमुख भू–आकृतिक इकाइयों में विभक्त है। प्रथम अरावली पहाड़ियों का उत्तर पश्चिम क्षेत्र जिसमें अधिकतर बलुई मैदान जिसे थार मरूस्थल कहते है, सम्मिलित है जो महान मैदान का मुख्य भाग है जबकि अरावली के दक्षिण पूर्व का क्षेत्र जो ऊँचाई वाले मध्य क्षेत्र कहलाते है, यह भाग उपजाऊ है। यहाँ दोनों इकाइयों को विभिन्न भू–प्राकृतिक विशिष्टताओं की सहायता से चिहिन्त किया जा सकता है। पुनः पश्चिमी बलुई मैदान को दो तथा मध्य उच्च क्षेत्र को चार उप भू आकृतियों में बांटा गया है। जिसे मानचित्र 2.1 में दर्शाता गया है। राज्य में चम्बल नदी तथा उसकी सहायक पार्वती, कालीसिंध तथा बनास नदियॉ बहती है पश्चिम के बड़े भाग में लूनी नदी बहती है जो 320 किमी. का रास्ता मरूस्थल क्षेत्र में तय करके कच्छ की रन में विसर्जित हो जाती है। दक्षिण में माही व उसकी सहायक नदियाँ बहती है जो कैम्बे की खाड़ी में विसर्जित होती है।

चूनाविहीन एवं चूनेदार मरू मृदाएँ

मरू मृदाएँ राजस्थान के सबसे बड़े भू–भाग पर विस्तृत है। यह अरावली पर्वत श्रेणी के पश्चिम में बीकानेर, चूरू, झुन्झुनुँ, सीकर, जोधपुर, बाड़मेर तथा जैसलमेर तक सम्पूर्ण क्षेत्र इन्ही मृदाओं से आच्छादित है। इनमें जैसलमेर तथा बीकानेर जहाँ चूनेदार मृदाएँ है, को छोड़कर बाकी के क्षेत्रों में चूनाविहिन मृदाएँ मिलती है। सामान्यतः ये मृदाएँ वायूढ़ निक्षेप मूलद्रव्य से विकसित हुई है। इन मृदाओं का वर्ण हल्का पीला भूरा होता है तथा ये बलुई दोमट गठन की होती है जिनमें मृतिका 2.5 से 8 तथा बालू 90 से 95 प्रतिशत तक होती है। साधारणतः ये मृदाएँ गहरी होती है। लूनी नदी के पेटो में मृतिका कहीं–कहीं 15 प्रतिशत तक पाई गई है। इनमें कैल्शियम कार्बोनेट अंश 1 से 1.5 प्रतिशत होता है। यह ढ़लान तथा निक्षेपण के प्रभाव से कम या अधिक भी हो सकता है। पर्याप्त वर्षा के फलस्वरूप निक्षालन होने से कई क्षेत्रों में इन मृदाओं में कैल्शियम की गहराई के साथ–साथ निचले संस्तरों में वृद्धि होती रहती है तथा इसकी पर्त भी बन जाती है।

इन मृदा क्षेत्रों में भू–जल की प्रायः कमी होती है अथवा यह निम्न गुणों वाला (खारा) होता है तथा जलस्तर की गहराई 30 से 150 मीटर के लगभग होती है। इन मृदाओं में पश्चिम से पूर्व की ओर वृद्धि होती है। इनका पी.एच. 7.2 से 9.2 होता है परन्तु अधिकांश मृदाओं का 8.1 से 8.8 होता है जो इनके क्षारीय गुणों की देन है। इन मृदाओं में जैविक कार्बन अत्यल्प होता है। सम्पूर्ण नाइट्रोजन 0.02 से 0.07 प्रतिशत तथा फॉस्फोरस 0.05 से 1 प्रतिशत होता है।

पश्चिम व मध्यक्षेत्र जहाँ औसत वर्षा 125 से 250 मिमी. होती है, में पाई जाने वाली इन मृदाओं की पृष्ठ मृदा का पी.एच. 7.9 से 8.6 विलेय लवणों की मात्रा अधिक पाई जाती है तथा अवपृष्ठ मृदा में 6.06 प्रतिशत तक विलेय लवण पाये गये है। इन मृदाओं में बोरॉन की मात्रा भी अधिक पाई गई है तथा पृष्ठ मृदा में विलय बोरॉन 2.6 से 12.2 पी.पी.एम. तक पाया जाता है।

मृदा उर्वरता स्थिति

राजस्थान के विभिन्न जिलों की मृदा उर्वरता स्थिति –

जिले का नाम	उर्वरता उपलब्ध समूह		
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
अजमेर, अलवर, बीकानेर, बांरा, भरतपुर, जालौर, नागौर, हनुमानगढ़, चितौड़गढ़	न्यून	न्यून से मध्यम	मध्यम
जोधपुर, बाड़मेर, झुन्झुनु	न्यून	मध्यम	मध्यम से उच्च
बांसवाड़ा, सिरोही, भीलवाड़ा, बूँदी	मध्यम	मध्यम	मध्यम
चूरू, श्रीगंगानगर, सीकर	न्यून	न्यून से मध्यम	मध्यम
दौसा, जयपुर, सवाईमाधोपुर	न्यून	मध्यम	उच्च
धौलपुर, राजसंमद, उदयपुर	न्यून	मध्यम	मध्यम से उच्च
डूँगरपुर	न्यून	मध्यम	मध्यम से उच्च
पाली, झालावाड़	न्यून	न्यून से मध्यम	मध्यम
कोटा	न्यून से मध्यम	न्यून से मध्यम	मध्यम
टोंक	न्यून से मध्यम	मध्यम	मध्यम

सारणी (ख) पोषक तत्व का स्तर (किग्रा./हे.)

पोषक तत्व	न्यून	मध्यम	उच्च
नत्रजन	250 से कम	250–500	500 से अधिक
फॉस्फोरस	20 से कम	20–50	50 से अधिक
पेटाश	125 से कम	125–250	250 से अधिक

उर्वरक उपभोग

उर्वरक उपभोग 1990 के 3.71 लाख टन से 2011–12 में 13.56 लाख टन बढ़ा है, इस प्रकार उर्वरक उपभोग 21 वर्षो में 3.65 गुणा बढ़ा है। वर्ष 2011–12 के दौरान कुल उर्वरक उपभोग 13.56 लाख टन (नत्रजन फॉस्फोरस पोटाश) में से 9.13 लाख टन नत्रजन 4.16 लाख टन फॉस्फोरस एवं 0.26 लाख टन पोटाश है। उर्वरक तत्व उपभोग की सघनता 60.0 किलोग्राम प्रति हेक्टर है जिसमें 40.0 कि.ग्रा. नत्रजन, 18.0 कि.ग्रा., फॉस्फोरस तथा 1.0 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर है।

लक्षित उपज आधारित उर्वरक संस्तुति

मृदा उर्वरता और उपज वृद्धि का सीधा संबंध है। इसी तारतम्य में मिट्टी, जलवायु एवं फसलों की विविधता को ध्यान में रखते हुए मृदा परीक्षण फसल अनुक्रिया संबंधी अनुसंधान की विधि विकसित की गई। भारत के विभिन्न मृदा–जलवायु समूहों के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्वाधान में अलग–अलग केन्द्रों पर परीक्षण प्रारम्भ किए। इस विधि में समान मृदा जलवायु वाले क्षेत्रों में एक ही स्थान पर एक ही खेत पर कृत्रिम ढ़ंग से विभिन्न मृदा उर्वरकता स्तर बनाये जाते है। उसमें विभिन्न स्तर के समूहों में नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश को समग्र रूप से समायोजित कर उसका विभिन्न मृदा परीक्षण मानों का मानकीकरण फसल के लिए उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करने हेतु किया गया है। अनुसंधान से यह भी पता चला है कि जहाँ मिट्टी में प्रारम्भिक उर्वरकता स्तर कम था, उसमें उर्वरक डालने से ज्यादा फायदा होगा, बजाय जिसमें कि प्रारम्भिक

उर्वरता स्तर अधिक था यह भी पता चला है कि लाभ और लागत का अनुपात तथा प्रति हेक्टेयर कुल आमदनी, उन खेतों में अधिक है जहाँ मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरक दिया जाता है।

राजस्थान में वर्षवार एन.पी.के. का उपभोग (हजार टन) एवं उपयोग (किग्रा./हे.)

वर्ष	एन.पी.के. उपभोग (हजार टन)				एन.पी.के. उपयोग (किग्रा./हे.)		
	एन	पी2 ओ5	के2 ओ	कुल	एन	पी2 ओ5	के2 ओ
1990–91	242.7	121.4	7.6	371.1	12.9	6.4	0.4
1991–92	291.9	144.8	8.2	440.9	16.3	7.9	0.5
1992–93	349.4	136.1	5.1	490.5	18.0	7.0	0.3
1993–94	366.0	133.8	2.6	502.4	20.2	7.4	0.1
1994–95	451.1	142.1	8.0	602.5	24.9	7.9	0.4
1995–96	486.4	150.5	5.7	642.6	25.3	7.8	0.3
1996–97	546.2	147.0	7.3	700.5	26.8	7.2	0.4
1997–98	591.8	190.1	5.5	787.4	29.0	9.3	0.3
1998–99	532.5	188.5	6.1	727.1	25.7	9.1	0.3
1999–2000	546.0	246.9	6.3	817.2	27.3	11.9	0.3
2000–01	495.2	164.2	5.3	664.7	22.2	7.4	0.2
2001–02	582.3	199.7	6.8	788.8	30.8	10.4	0.4
2002–03	401.6	141.9	7.0	550.5	20.9	7.4	0.4
2003–04	463.2	204.6	10.5	778.3	29.3	10.6	0.5
2004–05	541.9	203.1	16.3	761.3	25.4	9.5	0.8
2005–06	619.8	242.4	19.9	880.1	29.4	11.5	0.9
2006–07	664.9	258.2	13.0	936.1	31.6	12.3	0.6
2007–08	705.3	210.2	20.9	936.7	32.06	9.55	0.95
2008–09	709.5	319.0	23.5	1052.0	3.19	14.92	1.10
2009–10	722.0	316.5	34.7	1073.2	33.87	14.85	1.63
2010–11	870.4	413.3	34.9	1319.0	33.80	16.0	51.2
2011–12	913.0	416.0	26.0	1356.0	40.0	18.0	60.0
2012–13							

उर्वरक संस्तुति

सामान्य उर्वरकों की तीन तरह से सिफारिश की जाती है।

सामान्य संस्तुति

मृदा जांच के अभाव में प्रदेश के कृषि विभाग, कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि संस्थानों द्वारा निर्धारित उर्वरक संबंधी तदर्थ सामान्य संस्तुतियां प्रत्येक फसल के लिए उपलब्ध है जिस आधार पर किसान उर्वरक की मात्रा को निर्धारित कर सकते है।

ये संस्तुतियाँ वास्तव में मध्यम उत्पादन के लिए तदर्थ रूप से की गई है तथा उन किसानों के लिए उपयोगी होती है जिन्होंने अपने खेत की मिट्टी के स्तर की जांच नहीं करायी है।

मृदा परीक्षण आधारित संस्तुति

जिले वार उर्वरक तत्वों का उपभोग (कि.ग्रा./हे.) एवं उनका अनुपात (2009-10)

जिला	पोषक तत्व उपभोग				उपभोग अनुपात		
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	कुल	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
अजमेर	18.1	15.5	2.5	36.1	7.1	6.1	1.0
जयपुर	37.0	17.5	2.0	56.5	18.1	8.6	1.0
दौसा	69.8	28.7	1.1	99.5	66.4	27.3	1.0
सीकर	25.5	10.9	0.7	37.1	38.6	16.5	1.0
झुन्झनू	19.1	5.7	0.2	25.0	79.5	23.7	1.0
अलवर	54.7	26.5	1.0	82.1	57.5	27.9	1.0
भरतपुर	72.4	37.3	1.2	11.0	58.4	30.1	1.0
धौलपुर	89.6	43.3	1.5	134.4	61.1	29.1	1.0
स. माधोपुर	71.7	30.3	1.1	103.1	65.8	27.8	1.0
करौली	59.3	24.2	0.7	84.2	82.4	33.6	1.0
बीकानेर	11.5	5.2	0.4	17.1	26.2	11.8	1.0
चुरू	3.6	1.4	0.1	5.0	71.0	27.2	1.0
जैसलमेर	15.4	4.3	0.1	19.7	128.1	35.4	1.0
श्रीगंगानगर	73.6	35.1	2.1	110.0	35.4	16.9	1.0
हनुमानगढ़	48.8	22.2	2.5	73.4	19.8	9.0	1.0
जोधपुर	22.2	13.8	0.7	36.7	37.7	21.0	1.0
बाड़मेर	7.5	1.9	0.1	9.1	141.4	38.8	1.0
नागौर	20.4	13.0	1.1	34.4	19.2	12.3	1.0
पाली	19.2	9.3	0.6	29.1	31.5	15.2	1.0
सिरोही	72.8	17.7	0.4	91.0	173.4	42.1	1.0
जालोर	40.1	9.7	0.4	50.2	11.3	27.0	1.0
कोटा	126.2	68.6	0.6	198.3	34.9	19.0	1.0
बांरा	89.8	51.9	2.3	143.9	39.5	22.9	1.0
बून्दी	83.5	36.4	2.4	122.2	35.4	15.4	1.0
झालावाड़	69.1	49.8	1.7	120.6	41.4	19.8	1.0
टोंक	47.4	24.0	0.6	71.0	86.1	43.6	1.0
बांसवाड़ा	107.2	15.7	0.7	123.6	151.0	22.1	1.0
डूंगरपुर	49.7	30.0	0.8	63.5	62.9	16.5	1.0
उदयपुर	71.4	21.7	2.6	95.7	27.7	8.4	1.0
भीलवाड़ा	50.0	19.6	1.8	71.4	28.1	11.0	1.0
चितौड़गढ़	100.3	37.4	4.4	142.0	22.9	8.2	1.0
राजसमन्द	52.2	18.4	1.2	71.9	73.5	15.4	1.0
प्रतापगढ़	71.4	41.1	3.2	115.6	22.3	12.8	1.0

उपज ठहराव के पहले से चले आ रहे रूझान को उर्वरक उपभोग एवं फसलों को उचित एवं संतुलित पोषक तत्व आपूर्ति करके बदला जा सकता है।

मृदा परीक्षण आधारित संस्तुति

मृदा परीक्षण के उपरांत उर्वरक प्रयोग अधिक कारगर सिद्ध होता है। उर्वरक की यह मात्रा उसी खेत के लिए उपयुक्त होती है जिस खेत की मिट्टी की जांच होती है। मृदा परीक्षण के आधार पर संस्तुत उर्वरक की मात्रा, सामान्य या तदर्थ संस्तुति की अपेक्षा अधिक संतुलित तथा लाभकारी होती है। इसमें कमी यह होती है कि सामान्य मात्रा में पोषक तत्वों की संस्तुति की जाती है जो कि उच्च उपज के लिए पर्याप्त नहीं होती है। अतः यह उर्वरक प्रयोग अधिकतम आर्थिक उपज के लिए कम कारगर सिद्ध होता है। इस कमी को दूर करने के लिए मृदा परीक्षण आधारित संस्तुतियॉ पूर्व निर्धारित उपज लक्ष्य के अनुसार की जानी चाहिए।

पूर्व निर्धारित उपज लक्ष्यों के लिए

इस विधि से मृदा मानों एवं उर्वरक (जैविक खादें भी, यदि उपलब्ध है) की उपलब्धता के अनुसार उपज लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है। अतः किसी वांछित उपज के स्तर को दृष्टिगत रखकर उर्वरक की मात्रा का निर्धारण करने हेतु प्रति क्विंटल उत्पादन के लिए पोषक तत्व की आवश्यकता, पोषक तत्व आपूर्ति संबंधी मृदा दक्षता, उर्वरक दक्षता तथा यदि जैविक खाद उपलब्ध है, तो जैविक खाद दक्षता की जानकारी आवश्यक है।

प्रति क्विंटल उत्पादन के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता (किग्रा.) = एन.आर. =

$$\frac{\text{आवशोषित पोषक तत्व (किग्रा./हे.)}}{\text{उपज (क्विं./हे.)}}$$

पोषक तत्व आपूर्ति संबंधी मृदा दक्षता = एस.ई. (:)

$$\frac{\text{आवशोषित पोषक तत्व (किग्रा./हे.)}}{\text{पोषक तत्व का मृदा परीक्षण स्तर (किग्रा./हे.)}} \times 100$$

उर्वरक दक्षता = एफ.ई. (:)

$$\frac{\text{उर्वरक उपचारित प्लाट में – अवशोषित पोषक तत्व (किग्रा./हे.)}}{\text{उर्वरक उपचारित प्लाट में पोषक तत्व का मृदा परीक्षण स्तर (किग्रा./हे.) X100 औसत पोषक तत्व आपूर्ति संबंधी मृदा दक्षता,}} \times 100$$

उर्वरक द्वारा दिया गया पोषक तत्व (किग्रा./हे.)

जैविक खाद दक्षता = ओ.ई. (:)

$$\frac{\text{जैविक खाद उपचारित – प्लाट में पोषक अवशोषित पोषक तत्व (किग्रा./हे.)}}{\text{[जैविक खाद उपचारित प्लाट में पोषक तत्व का मृदा परीक्षण स्तर (किग्रा./हे.) X औसत पोषक तत्व आपूर्ति संबंधी मृदा दक्षता]}} \times 100$$

उर्वरक द्वारा दिया गया पोषक तत्व (किग्रा./हे.)
उर्वरक की मात्रा (किग्रा./हे.) =

$$\frac{\text{एन.आर.}}{\text{एफ.ई./100}} \times \text{उपज का वांछित लक्ष्य (कि.ग्रा./हे.)} - \frac{\text{एस.ई.}}{\text{एफ.ई.}} \times \text{पोषक तत्व का मृदा स्तर (कि.ग्रा./हे.)} - \frac{\text{ओ.ई.}}{\text{एफ.ई.}} \times \text{जैविक खाद पोषक तत्व(कि.ग्रा./हे.)}$$

इन समीकरणों/ सूत्रों से विदित है कि उर्वरक मात्रा के तीन घटक है –
मिट्टी परीक्षण मान।
लक्ष्य उपज का स्तर।
जैविक खाद की मात्रा।

उदाहरण : जैसे मूंगफली की 40 क्विं./हे. उपज प्राप्त करने के लिए बलुई मिट्टी में जिसका मिट्टी परीक्षण मान क्रमशः 100, 20, 210 कि.ग्रा./हे. नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश उसके लिए 5 टन गोबर की खाद/कि.ग्रा. कम्पोस्ट के साथ मूंगफली की सारणी से 42.00, 47.00 एवं 49.22 कि.ग्रा./हे. के हिसाब से उर्वरक नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश की सिफारिश की जाती है। अतः इन समीकरणों को विभिन्न फसलों की उर्वरक अनुशंसा/संस्तुति के लिए इनकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इनको तालिकाओं में परिवर्तित कर अनुमोदित किया जा सकता है।

विभिन्न फसलों की उर्वरक संस्तुति समीकरण तालिकाएँ (बिना कार्बनिक खादों के)
अनाज वाली फसलें
बाजरा (एच.एच.बी.–67 संवर्द्धित) कम पानी के साथ
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=7.03 लक्षित उपज	–0.40 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.62 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=9.26 लक्षित उपज	–2.01 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.09 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=7.76 लक्षित उपज	–0.24 मृदा सुलभ पोटाश	–0.72 कार्बनिक पोटाश

गेहूँ (राज.–3077)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=7.87 लक्षित उपज	–0.76 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.50 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=3.04 लक्षित उपज	–1.50 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–0.45 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=4.07 लक्षित उपज	–0.26 मृदा सुलभ पोटाश	–0.53 कार्बनिक पोटाश

जौ (आर.डी.–2508)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=7.67 लक्षित उपज	–0.99 मृदा सुलभ नत्रजन	–3.62 गोबर की खाद
उर्वरक फॉस्फोरस	=4.60 लक्षित उपज	–2.09 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–2.02 गोबर की खाद
उर्वरक पोटाश	=6.31 लक्षित उपज	–0.63 मृदा सुलभ पोटाश	–2.66 गोबर की खाद

दलहनी फसलें
मोठ (आर.एम.ओ.–40)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=8.61 लक्षित उपज	–0.29 मृदा सुलभ नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=8.91 लक्षित उपज	–1.66 मृदा सुलभ फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=17.58 लक्षित उपज	–0.53 मृदा सुलभ पोटाश

चना (जी.एन.जी.–1581)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक गंधक	=5.30 लक्षित उपज	–3.18 मृदा सुलभ गंधक	–3.31 कार्बनिक गंधक
उर्वरक फॉस्फोरस	=7.59 लक्षित उपज	–2.14 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.86 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=15.05 लक्षित उपज	–0.66 मृदा सुलभ पोटाश	–1.43 कार्बनिक पोटाश

ग्वार (आर.जी.सी.–986)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=6.70 लक्षित उपज	–0.37 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.65 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=9.90 लक्षित उपज	–2.13 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–2.05 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=6.78 लक्षित उपज	–0.23 मृदा सुलभ पोटाश	–0.62 कार्बनिक पोटाश

तिलहनी फसलें
मूंगफली (एम. 13)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=1.82 लक्षित उपज	–0.26 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.18 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=2.08 लक्षित उपज	–1.48 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–0.60 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=2.43 लक्षित उपज	–0.22 मृदा सुलभ पोटाश	–0.33 कार्बनिक पोटाश

मूंगफली की लक्षित उपज के लिए तैयार मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक अनुशंसा तालिका –

मृदा में सुलभ पोषक तत्व (किग्रा./हे.)			लक्षित उपज के लिए आवश्यक उर्वरक पोषक तत्व (किग्रा./हे.)					
			35 क्विं./हे.			40 क्विं./हे.		
नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
80	10	170	38	50	41	47	61	53
90	15	190	35	43	36	44	53	49
100	20	210	32	35	32	42	46	44
110	25	230	30	28	28	39	38	40
120	30	250	27	21	23	36	31	35
130	35	270	25	20	19	34	24	31
140	40	290	22	20	14	31	20	27
150	45	310	19	20	10	29	20	22
160	50	330	17	20	10	26	20	18

सरसों (लक्ष्मी)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=12.64 लक्षित उपज	–0.26 मृदा सुलभ नत्रजन	–1.42 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=9.34 लक्षित उपज	–2.01 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.40 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=6.71 लक्षित उपज	–0.23 मृदा सुलभ पोटाश	–0.81 कार्बनिक पोटाश

रेशे वाली फसलें
कपास (आर.एस.–810)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=10.06 लक्षित उपज	–0.29 मृदा सुलभ नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=9.02 लक्षित उपज	–1.66 मृदा सुलभ फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=8.20 लक्षित उपज	–0.25 मृदा सुलभ पोटाश

बीटी कपास
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=15.84 लक्षित उपज	–1.91 मृदा सुलभ नत्रजन	–2.77 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=2.87 लक्षित उपज	–1.76 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.67 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=4.82 लक्षित उपज	–0.47 मृदा सुलभ पोटाश	–0.84 कार्बनिक पोटाश

औषधीय फसलें
ईसबगोल (आर.आई.89)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=9.35 लक्षित उपज	–0.33 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.65 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=6.53 लक्षित उपज	–0.76 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–0.86 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=6.95 लक्षित उपज	–0.13 मृदा सुलभ पोटाश	–0.47 कार्बनिक पोटाश

मसाला वाली फसलें
जीरा (आर.जेड.209)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=15.82 लक्षित उपज	–0.40 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.76 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=9.91 लक्षित उपज	–0.68 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.20 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=10.07 लक्षित उपज	–0.16 मृदा सुलभ पोटाश	–0.84 कार्बनिक पोटाश

सौंफ (आर.एफ.125)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=8.93 लक्षित उपज	–0.61 मृदा सुलभ नत्रजन	–1.52 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=3.95 लक्षित उपज	–0.94 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.36 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=4.37 लक्षित उपज	–0.17 मृदा सुलभ पोटाश	–0.72 कार्बनिक पोटाश

मैथी (आर.एम.टी.–1)

उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=11.44 लक्षित उपज	–0.91 मृदा सुलभ नत्रजन	–1.14 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=11.22 लक्षित उपज	–3.23 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–3.23 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=14.46 लक्षित उपज	–0.56 मृदा सुलभ पोटाश	–1.54 कार्बनिक पोटाश

सब्जियों वाली फसलें
ग्वार सब्जी (एम.–83)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=11.40 लक्षित उपज	–1.22 मृदा सुलभ नत्रजन	–3.35 गोबर की खाद
उर्वरक फॉस्फोरस	=6.60 लक्षित उपज	–1.91 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.84 गोबर की खाद
उर्वरक पोटाश	=9.22 लक्षित उपज	–0.90 मृदा सुलभ पोटाश	–2.75 गोबर की खाद

भिण्डी (अरका अनामिका)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=3.27 लक्षित उपज	–0.83 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.45 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=1.27 लक्षित उपज	–0.85 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–0.41 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=2.46 लक्षित उपज	–0.37 मृदा सुलभ पोटाश	–0.26 कार्बनिक पोटाश

प्याज (आर.ओ.–252)
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=1.83 लक्षित उपज	–1.49 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.98 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=1.14 लक्षित उपज	–3.44 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.85 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=2.44 लक्षित उपज	–1.10 मृदा सुलभ पोटाश	–1.38 कार्बनिक पोटाश

टमाटर
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=1.83 लक्षित उपज	–1.49 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.98 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=1.14 लक्षित उपज	–3.44 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.85 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=2.44 लक्षित उपज	–1.10 मृदा सुलभ पोटाश	–1.38 कार्बनिक पोटाश

बैंगन
उर्वरक समायोजित समीकरण

उर्वरक नत्रजन	=1.83 लक्षित उपज	–1.49 मृदा सुलभ नत्रजन	–0.98 कार्बनिक नत्रजन
उर्वरक फॉस्फोरस	=1.14 लक्षित उपज	–3.44 मृदा सुलभ फॉस्फोरस	–1.85 कार्बनिक फॉस्फोरस
उर्वरक पोटाश	=2.44 लक्षित उपज	–1.10 मृदा सुलभ पोटाश	–1.38 कार्बनिक पोटाश

मृदा परीक्षण के आधार पर फसलों की लक्षित उपज के लिए उर्वरकों की अनुशंसा अन्य विधियों से बेहतर कैसे ?

- इस विधि से मृदा, उर्वरक एवं जैविक खादों के परस्पर अंशदान योगदान को भी उर्वरक संस्तुति करते वक्त ध्यान दिया जाता है।
- किसान लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए अपने उपलब्ध संसाधनों का बेहतर तालमेल बिठा सकता है।
- इस विधि से संतुलित उर्वरक की संस्तुति की जाती है जिससे मृदा उर्वरता भी लम्बे समय तक बनी रहती है।
- मृदा, जैविक खाद पदार्थो एवं उर्वरक तत्वों का परस्पर संबंध को ध्यान में रखने से उर्वरक उपयोग क्षमता में बढ़ोतरी रहती है।

उर्वरकों से अधिकतम लाभ के लिए क्या करें ?

- मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रयोग।
- रासायनिक और जैविक उर्वरकों का एकीकृत प्रयोग।
- खेती की उन्नत तकनीक जैसे : उचित फसल व प्रजाति का चयन, प्रमाणित बीज का प्रयोग, समय पर बुवाई, संस्तुत बीज दर व गहराई पर बुवाई, समुचित जल प्रबंध, खरपतवार व रोग प्रबंधन इत्यादि का पालन।
- फास्फेटधारी उर्वरकों को कूड़ों में प्रयोग।
- सूक्ष्म और गौण तत्वों की आवश्यकतानुसार पूर्ति।
- दलहनी फसल के बाद उगायी जाने वाली फसल में नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती।
- दलहनी फसल के बीजों का राइजोबियम कल्चर से उपचार।
- गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में सिंगल सुपर फास्फेट के प्रयोग को प्रोत्साहन।
- फसल चक्र का अनिवार्य रूप से पालन।
- पौध सुरक्षा रसायनों का सिर्फ संतुलित प्रयोग।

ध्यान रखने योग्य बिन्दु

- खेत की मिट्टी की जॉच करवाकर ही उर्वरकों का प्रयोग करें।
- उर्वरकों की मात्रा ज्ञात करने के लिए मृदा परीक्षण फसल अनुक्रिया सहसंबंध परियोजना द्वारा विकसित उर्वरक समायोजित समीकरणों का उपयोग करें।
- प्रमाणित किस्म का बीज काम में लेवे और किस्म की अधिकतम संभावित उपज का 70 से 80 लक्षित उपज मानकर उर्वरकों की मात्रा की गणना करें।
- खेत की मृदा का उचित स्वास्थ्य बनाये रखने और उपयोग में लिए गये उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए जैविक खादों का प्रयोग अवश्य करें।
- पशु बाड़े के उत्सर्जन पदार्थों का परम्परागत भण्डारण करने के स्थान पर वैज्ञानिक विधियों द्वारा छायादार स्थान पर उचित नमी बनाये रखते हुए अच्छी तरह से सड़ाकर अच्छी जैविक खाद (केंचुआ खाद, गोबर खाद, कम्पोस्ट खाद आदि) बनाकर उपयोग करें।
- फसल अवशेषों को बेकार न मानकर वैज्ञानिक विधि से काम में लेवें। अधिक मृदा अपरदन (जल व वायु द्वारा) वाले क्षेत्रों में कटाई के समय अधिक अवशेष छोड़कर दो फसलों के अन्तराल में जुताई न करें ताकि अपरदन द्वारा हानि कम से कम हो।

- फसल अवशेष पत्तियाँ, तुड़ी आदि को गोबर के साथ सड़ाकर सवंर्द्धित खाद बनाकर काम में लें।
- बुवाई के 3 से 4 सप्ताह पूर्व जैविक खाद की अनुशंसित मात्रा खेत में एक समान बिखेर देवें। तत्पश्चात् जुताई करके मिट्टी में मिला देवें।
- बीज उपचार के समय जीवाणु खाद (राईजोबियम, एजोटोबैक्टर, पी.एस.बी. आदि) से बीज को अवश्य उपचारित करे जिससे मिट्टी में मित्र जीवों की सख्या बढ़ सके।
- फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूर्ण अनुशंसित मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई से पहले अंतिम जुताई के साथ भूमि में ऊर कर देवें।
- शेष नत्रजन भूमि के प्रकार एवं फसल की अवधि के आधार पर एक या दो भागों में बॉटकर उचित नमी की अवस्था में देवे।
- 12. कमी के लक्षण प्रकट होने पर आवश्यकतानुसार लक्षणों की पहचान करके जस्ता, लौह आदि सुक्ष्म पोशक तत्वों की आपूर्ति करने वाले उर्वरकों का उपयोग करें।
- फसलों का चयन करते समय फसल चक्र के मूलभूत सिद्धान्तों (दलहनी फसल–अनाज वाली फसल, गहरी जड़ वाली फसल–उथली जड़ वाली फसल आदि) का पालन करें।
- उचित समय पर निराई खरपतवार नियंत्रण एवं सिंचाई करके आपूर्ति किए गये पोषक तत्वों की दक्षता बढ़ाकर कम लागत में अधिक उपज प्राप्त करें।

★★★

गुजरात के बनासकांठा जिले की मृदाये एवं उनकी उर्वरा क्षमता : एक आंकलन

महेश कुमार एवं पी.सी. बोहरा

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

बनासकांठा जिला गुजरात के उत्तरी भाग में 71 03° पू. एवं 13 02° पू. तथा 23 03° उत्त. एवं 24 45° उत्त. के मध्य स्थित है। जिले की औसतन वार्षिक वर्षा 578 मि.मी. है तथा यह 152 मीटर एम.एस.एल. पर स्थित है। इसका कुल भोगोलिक क्षेत्र 1044.4 (000 हे.) है जिसमें से 744 (000 हे.) क्षेत्र में 138.8% फसल प्रकरण है। बनासकांठा जिले का लगभग 472.0 (000 हे.) भू–भाग सिंचित क्षेत्र के अर्न्तगत आता है। जिले की छः तहसीले धानेरा, थराड़, डीसा, भाभर एवं दियोदर शुष्क क्षेत्र को दर्शाती हैं। इन शुष्क क्षेत्रों में मुख्य रूप से बाजरा, अरण्डी, ग्वार, मूंग, मोठ, कपास, गेहूँ, सरसों, रायड़ा आदि फसलें उगाई जाती है। इसके अलावा डीसा आलू की उन्नत खेती एवं पैदावार के लिए प्रसिद्ध है।

मृदा के मूलभूत अभिलक्षणों के आधार पर बनासकांठा जिले की मृदाओं को मुख्य रूप से पांच मृदा श्रेणियों धानेरा, थराड़, रामपुरा, सुईगाम एवं साँचोर में वर्गीकरण किया गया है। जिनका विवरण सारणी–1 में दर्शाया गया है। धानेरा श्रेणी वाली मृदाये तीव्र जल निकास वाली, हलकी पीली भूरी एवं भूरे रंग की एवं बहुत गहराई वाली होती है। इनका मृदा गठन दुमटी रेत से बलुई दुमट के मध्य होता है। इन मृदाओं में चूने की मात्रा लगभग नगण्य है। इनका सोलम 150 से.मी. से भी ज्यादा गहरा होता है। थराड़ श्रेणी वाली मृदायें हल्के पीले एवं भूरे रंग की बहुत गहरी (डी–5) एवं दुमट रेत से बलुई दुमट मृदा गठन वाली है। धानेरा श्रेणी की अपेक्षा थराड़ श्रेणी वाली मृदा में चूने की मात्रा पायी जाती है तथा यह मात्रा भूमि के नीचले संस्तरों में अपेक्षाकृत ज्यादा पायी जाती है। थराड़ श्रेणी वाले भू–भाग में कहीं–कहीं पर हल्के रेत के पोकेट्स मिलते है। सुईगाम मृदा श्रेणी मुख्यतः भाभर तहसील के पश्चिम और मध्य भाग में पायी जाती है। यह मृदाये अच्छे जल निकास, बलुई दुमट से दुमट मृदा गठन वाली एवं कमजोर कोणदार खण्डीय से मध्यम कोणदार खण्डीय संरचना वाली होती है। इन मृदाओं के 'ब' संस्तर में यह 'दुमट' मृदा गठन वाली होती है। मृदा संस्तरों में माइकाफलेक्स एवं क्वाटर्ज के कण पाये जाते है। रामपुरा श्रेणी वाली मृदाये बहुत गहरी एवं मिश्रित मृदा गठन (बलुई दोमट से दुमट एवं मटियार दुमट) वाली होती है। इन मृदाओं में चूने की मात्रा मृदा गहराई के साथ बढ़ते हुए क्रम में होती है।

सारणी 1. बनासकांठा जिले के शुष्क क्षेत्रों की मुख्य मृदायें, उनके गुण एवं विस्तार

मृदा श्रेणी	मृदा गठन	मृदा गहराई	विस्तार क्षेत्रफल	प्रतिशत (%)
धानेरा	ls-sl	डी–5	1590.3	24.7
थराड़	fs-ls	डी–5	2508.5	39.1
संचौर	fs-ls	डी–5	801.7	12.5
सुईगाम	sl-h	डी–5	980.2	15.2
रामपुरा	sl-h-cl	डी–5	312.5	4.8
लवणीय रन	ls-sl	डी–5	237.8	3.7

सांचोर श्रेणी वाली मृदाये धानेरा तहसील के उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी जालोर जिले से लगने वाले भाग में पायी जाती है। यह मृदाये बहुत गहरी, तीव्र जल निकास एवं रेत से दुमट वाले मृदा गठन वाली होती है। इन मृदाओं में 10–20 से.मी. तक ऊपरी सतह पर एक उड़ी हुई रेत की परत जमा (overburden of loose sand) होती रहती है।

भूमि क्षमता विषयक वर्गीकरण

बनासकांठा जिले की मृदाओं का भूमि क्षमता विषयक वर्गीकरण मुख्यतः भूमि क्षमता वर्ग III cs और III c, s, ea में किया गया है। यह वर्गीकरण अर्न्तनिहित मृदा अभिलक्षण, भूमि की बाह्य विशेषताएँ एवं भूमि के उपयोगो को सीमित करने वाले वातावरण संबंधी कारकों को ध्यान में रखते हुए एवं खेत व प्रयोगशाला अध्ययन के बाद इनमें परस्पर समन्वय करके यह भूमि क्षमता विषयक वर्गीकरण किया गया। यह इकाइयाँ उपयोग प्रबंधन और पौधों/ फसलों की वृद्धि के प्रति मृदा की अनुक्रिया के संबंध में विशिष्ट सुचनाएँ देती है।

बनासकांठा जिले के शुष्क क्षेत्र की मृदायें मुख्य रूप से भूमि क्षमता वर्ग III व IV एवं क्षमता उपवर्ग c, s, ea (c=जलवायु संबंधी मर्यादा, s–मृदा संबंधित, ea–मृदाक्षरण संबंधीत मर्यादा) में वर्गीकरण किया गया है। धानेरा, थराड़ एवं सांचोर मृदा श्रेणियाँ जिनमें हल्के रेतीले टिब्बे एवं ऊपरी सतह पर रेत (sand) जमा होती है इन्हें IV, c, s, ea भूमि क्षमता वर्ग एवं उपवर्ग में वर्गीकृत किया है तथा इन मृदा श्रेणियों का वह भाग जहाँ रेतीले टिब्बे एवं रेत का जमाव नहीं हो उन्हें IV, c, s, ea भूमि क्षमता वर्ग एवं उपवर्ग में रखा गया है। सुईगाम एवं रामपुरा मृदा श्रेणियों को III c, and III c, s भूमि क्षमता वर्ग एवं उपवर्ग में रखा गया है।

उर्वरा क्षमता

शुष्क बनासकांठा जिले की मृदाओं की अभिक्रिया सामान्य से हल्की क्षारीय स्वभाव की है। इन मृदाओं का पी.एच. मान 7.5 से 9.5 के मध्य पाया गया। इन क्षेत्रों में लगभग 85% मृदाओं का पी.एच. मान 7.5–8.5 एवं 15% मृदा नमूनों का पी.एच. मान 8.6 या इससे अधिक पाया गया। विद्युत चालकता का मान लगभग सभी नमूनों (150 मृदा नमूनों) में डी.एस./मी. से कम पाया गया। विद्युत चालकता की यह मात्रा दर्शाती है कि इन क्षेत्रों की मृदाओं में लवणीयता की समस्या नहीं है। हालांकि कच्छ के रन से जुडे हुए आस–पास कुछ खेतों में हल्की लवणीयता की समस्या (वि.चा. 1–2 डी.एम./मी.) है। उपलब्ध पौषक तत्वों की मात्रा सारणी–2 में दर्शायी गयी है। जैविक कार्बन (जो कि नत्रजन का द्योतक है) की मात्रा 0.05–0.50% के मध्य एवं औसत मात्रा 0.21% पायी गयी। जोकि नत्रजन की कमी को इंगित करता है। उपलब्ध फॉस्फोरस की मात्रा 1.5 से 66.5 कि.ग्रा./हे. तक एवं औसत मात्रा 17.2 कि.ग्रा./हे. पायी गयी। इस प्रकार क्षेत्र में 30% मृदा नमूने फॉस्फोरस के क्रांतिक स्तर के नीचे (<11.2 कि.ग्रा./हे.), 54% मृदा नमूने मध्यम वर्ग (11.2–25.0) एवं केवल 16% नमूने फॉस्फोरस के उच्च स्तर (>25 कि.ग्रा./हे.) वाली श्रेणी में पाये गये। सिंचित क्षेत्र की मृदाओं में फॉस्फोरस की मात्रा बारानी खेती वाली मृदाओं की अपेक्षा 32% अधिक पायी गयी। सिंचित क्षेत्र वाली मृदाओं में फॉस्फोरस की अधिकता संभवतः सिंचाई हेतु पानी की उपलब्धता से अनवरत खेती एवं फास्फेट उर्वरकों का अधिक प्रयोग हो सकता है। पोटाश जो कि तीसरा मुख्य पौषक तत्व है। इसकी उपलब्धता 78 से 560 कि.ग्रा./हे. के बीच में है तथा लगभग 23% मृदा नमूने क्रांतिक स्तर (<130 कि.ग्रा./हे.) के नीचे एवं 69% नमूने मध्यम स्तर (130–280 कि.ग्रा./हे.) एवं केवल 8% नमूनों में पोटाश की मात्रा उच्च स्तर (>280 कि.ग्रा./हे.) पर पायी गयी। बारानी खेती वाली मृदाओं में उपलब्ध पोटाश की मात्रा सिंचित क्षेत्र की मृदा की 45% अधिक पायी गयी। यह सम्भवतः पोटाश का मृदा से अनवरत कृषि द्वारा अधिक दोहन एवं कम या नही के बराबर उपयोग करने से हुआ है क्योंकि सामान्यतः कृषक डी.ए.पी. एवं यूरिया का ही प्रयोग करते है।

सूक्ष्म पौषक तत्व लोहा, मैग्नीज, जिंक एवं कापर की मात्रा क्रमशः 2.52–15.4, 2.5–29.2, 0.18–3.4 एवं 0.22–42.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के मध्य पायी गयी। इन क्षेत्रों में मुख्यतः लोहा एवं जिंक सुक्ष्म पौषक तत्वों की कमी पायी गयी है। लगभग 27% मृदा नमूने लोहा पौषक तत्व में क्रांतिक स्तर (<4.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) के नीचे 61% नमूनों में इसकी मात्रा 4.5–9.0 के मध्य एवं केवल 12% मृदा नमूनों में इसकी मात्रा 9.0 (मि.ग्रा./कि.ग्रा.) से अधिक पायी गयी। सिंचित क्षेत्र वाली मृदाओं में बारानी खेती वाली मृदाओं की अपेक्षा 45% ज्यादा लोहा पौषक तत्व की उपलब्धता पायी गयी। लगभग 32% मृदा नमूनों में जिंक की मात्रा क्रांतिक स्तर (<0.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) के नीचे एवं 53% मृदा नमूनों में 0.6 से 1.2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के मध्य एवं केवल 15% नमूनों में जिंक स्तर 1.0 मि. ग्रा./कि.ग्रा. से ऊपर पाया गया। आमतौर पर इस क्षेत्र की मृदाओं में मैग्नीज एवं कॉपर की कमी नहीं देखी

गयी। इन दोनों सूक्ष्म पौषक तत्वों की मात्रा इनके क्रांतिक स्तर क्रमशः 2.5 एवं 0.2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से ऊपर पाया गया।

सारणी 2. बनासकांठा जिले के शुष्क क्षेत्रों की मुख्य मृदाओं की उर्वरा क्षमता

मृदा गुण	मात्रा	औसत मात्रा
पी.एच.	7.5–9.5	8.4
विद्युत चालकता(डेसी/मी.)	0.01–1.6	0.084
जैविक कार्बन (%)	0.03–0.50	0.21
उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	1.5–66.5	17.4
उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा./हे.)	78.–560	218
लोहा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	2.5–15.4	5.9
जिंक (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	0.18–3.4	0.82
मैग्नीज (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	2.6–29.2	10.4
कॉपर (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	0.22–4.2	0.58

उपसंहार

बनासकांठा जिले वाले शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में सामान्यतः जैविक कार्बन का स्तर बहुत कम है। लगभग 80% मृदा नमूनों में जैविक कार्बन 0.25% से कम है जो कि यह दर्शाता है कि मृदाओं में नत्रजन की कमी है। उपलब्ध फॉस्फोरस एवं पोटाश लगभग 30 एवं 23% नमूनों में क्रांतिक स्तर के नीचे पाया गया। सामान्यतः यह भी रोचक तथ्य सामने आया कि सिंचित क्षेत्रों वाली मृदाओं में फॉस्फोरस एकत्रीकरण एवं पोटाश का ह्रास हुआ है। सुक्ष्म पौषक तत्वों में लोहा एवं जिंक की लगभग 27 एवं 32% मृदा नमूनों में लोहा जिंक क्रांतिक स्तर से नीचे पाये गये। इन सबके निवारण हेतु पौषक तत्वों समन्वित प्रबंधन की तकनीक अपनानी चाहिए। जिसमें कि पौषक तत्वों के जैविक एवं रासायनिक स्त्रोतों द्वारा संतुलित मात्रा में मृदा परीक्षण के आधार पर एवं फसलों की आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए। पोटाश की उभरती हुई कमी को दूर करने हेतु नत्रजन : फॉस्फोरस : पोटाश : 4:2:1 के अनुपात में मृदा में देने चाहिए तथा सूक्ष्म पौषक तत्व (लोहा एवं जिंक) का उपयोग मिट्टी परीक्षण एवं फसल की आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

★★★

इंसान जिंदगी में गलतियाँ करके।
उतना दुखी नहीं होता हैं, जितना।।
कि वह बार–बार उन गलतियों के।
बारे में सोच कर होता हैं।।

लवणग्रस्त मृदाओं में अधिक उत्पादन के लिए फसल प्रबंधन

हनुमान सहाय जाट, प्रबोध चन्द्र शर्मा एवं दिनेश कुमार शर्मा

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से खेती पर निर्भर करती है। भारत की कुल भूमि के 47 फीसदी हिस्से (143 मिलियन हैक्टेयर) पर खेती की जाती है। भारत की बढती जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए हमें समस्याग्रस्त लवण ग्रसित क्षेत्रों (क्षारीय एवं लवणीय मृदाएँ) को सुधार कर कृषि योग्य बनाना अत्यन्त आवश्यक है। कृषि की दृष्टि से वैश्विक स्तर पर मृदा लवणता एक गंभीर समस्या है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ पर निक्षालन हेतु पर्याप्त वर्षा का अभाव रहता है वहाँ पर यह विकराल समस्या बनी हुयी है। भारत में लवणग्रसित क्षेत्र विभिन्न प्रदेशों में फैले हुए है। भारत में लवण प्रभावित भूमि गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में पायी जाती है जिसका क्षेत्रफल लगभग 6.7 मिलियन हैक्टेयर है (सारणी 1)। यदि इस समस्या को और अधिक बढ़ने से नहीं रोका गया तो देश का काफी बड़ा कृषि क्षेत्र बंजर भूमि के रूप में बदल सकता है। कुल लवण प्रभावित मृदाओं का लगभग 56 प्रतिशत भाग क्षारीयता एवं 44 प्रतिशत भाग लवणीयता के अन्तर्गत आता है। क्षारीयता की समस्या से सर्वाधिक प्रभावित, सिंधु–गंगा का मैदानी क्षेत्र है जो कि अधिक उपजाऊ है।

सारणी 1. भारत के विभिन्न राज्यों में लवणग्रस्त मृदाओं का क्षेत्रफल (हैक्टेयर)

राज्य	लवणीय मृदा	क्षारीय मृदा	कुल लवणग्रस्त मृदा
गुजरात	1680570	541430	2222000
उत्तर प्रदेश	21989	1346971	1368960
महाराष्ट्र	184089	422670	606759
पश्चिम बंगाल	441272	0	441272
राजस्थान	195571	179371	374942
तमिलनाडु	13231	354784	368015
आंध्र प्रदेश	77598	196609	274207
हरियाणा	49157	183399	232556
बिहार	47301	105852	153153
पंजाब	0	151717	151717
कर्नाटक	1893	148136	150029
उड़ीसा	147138	0	147138
मध्य प्रदेश	0	139720	139720
अण्डमान–निकोबार	77000	0	77000
केरल	20000	0	20000
कुल योग	2956809	3770659	6727468

स्रोत– नेशनल रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी एवं सहयोगी, 1996, मैपिंग साल्ट अफैक्टेड स्वाएल्स आफ इण्डिया, हैदराबाद

भारत में लवण प्रभावित मृदाओं को सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है – क्षारीय मृदा जिसे कल्लर या ऊसर कहते हैं और लवणीय मृदा जिसे सेम या लोनी भी कहते हैं। इन मृदाओं को अलग–अलग

प्रदेशों में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। क्षारीयता प्रभावित भूमि को उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्य प्रदेश में ऊसर या रेड़ कहा जाता है जबकि पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में कल्लर, राकर, बरा, बरी आदि नामों से जाना जाता है। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं को संतृप्त घोल की विद्युत चालकता, विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा एवं मृदा पीएच मान के आधार पर वर्गीकृत किया गया है (सारणी 2)।

सारणी 2. लवणग्रस्त (क्षारीय, लवणीय एवं लवणीय-क्षारीय) मृदाओं का वर्गीकरण

मृदा का प्रकार	विद्युत चालकता (डेसी सीमन्स प्रति मीटर)	विनिमय योग्य सोडियम की मात्रा	पीएच मान
लवणीय मृदा	> 4-0	< 15	< 8-5
क्षारीय एवं ऊसर मृदा	< 4-0	> 15	> 8-5
लवणीय–क्षारीय मृदा	> 4-0	> 15	< 8-5

क्षारीय मृदाओं में सोडियम कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट लवणों की अधिकता पायी जाती है। ऐसी समस्याग्रस्त मृदाएँ गावों में खेती के अयोग्य मानी जाती हैं एवं बिना किसी उपयोग के बेकार पड़ी रहती हैं। क्षारीय मृदाओं की मुख्य विशेषता उच्च सोडियम विनिमय अनुपात का पाया जाना है, जो फसल को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। उच्च सोडियम विनियम चालकता मृदा की भौतिक एवं पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता को प्रभावित करती है परिणामस्वरूप, फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता सार्थक रूप से प्रभावित होती है। सोडियम कार्बोनेट कार्बनिक पदार्थो का अधिशोषण करता है जिससे इनका ह्रास हो जाता है तथा मृदा बंजर बन जाती है। क्षारीय मृदा में सतह से कुछ से.मी. नीचे नमी होने के बावजूद ऊपरी सतह शुष्क एवं कठोर बन जाती है तथा निर्जलीकरण के पश्चात ऊपरी 1–2 से.मी. सतह में दरारें पड़ जाती हैं। उच्च परासरण दाब, उच्च मृदा पी.एच. मान के प्रभाव से असंतुलित पोषक तत्वों एवं जल की उपलब्धता कम हो जाती है जिससे पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन में सार्थक रूप से कमी आती है।

लवणीय मृदाओं में सोडियम, कैल्शियम तथा मैग्नीशियम एवं उनके क्लोराइड एवं सल्फेट अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। लवणीय मृदा प्रायः जलभराव की समस्या से भी ग्रसित होती है जिसे जलग्रस्त लवणीय मृदा कहते हैं। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं में पौधों के विकास एवं उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। लवणता पादप वृद्धि को परासरणी दबाव (ओसमेटिक) और आइन विषाक्तता के माध्यम से प्रतिकूल तरीके से प्रभावित करती है। लवण तनाव के दौरान परासरणी समायोजन के लिए ऊर्जा का अतिरिक्त व्यय पादप विकास में कमी का कारण होता है। जल एवं वायु के प्रति अपारगम्य होती है। सामान्यतौर पर लवणीय मृदा में उपरी सतह पर सफेद पपडी बन जाती है। घुलनशील लवण मृदा में जल संचालन के साथ ऊपरी सतहों में आ जाते है जहाँ जल के वाष्पीकरण के पश्चात यह संचित होते रहते है।

लवणग्रस्त मृदा एवं सुधार की प्रगति क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं को सुधार कर कृषि वानिकी, चरागाह, शुष्क फसलों, फूलों एवं फलों की खेती के अन्तर्गत लाया जा सकता है जिससे जहाँ एक ओर अतिरिक्त खाद्यान्न सुरक्षा की माँग पूरी की जा सकती है वहीं दूसरी ओर वर्षों से बेकार पड़ी अनुपजाऊ ऊसर–कल्लर भूमि में वर्षाजल भरे रहने तथा अवांछित खरपतवारों एवं हानिकारक रोग बीमारियों के फैलने पर अंकुश लगाकर प्रभावित क्षेत्रों में स्वच्छ वातावरण का निर्माण करके पर्यावरण में सुधार किया जा सकता है। भूमि संसाधन का उपयोग एवं प्रबन्धन की विधियों पर मृदा की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है।

पंजाब और हरियाणा राज्यों में क्षारीय मृदा सुधार की प्रगति काफी अच्छी है जबकि उत्तर प्रदेश में सुधार की गति अत्यन्त धीमी है। देश के विभिन्न राज्यों में अब तक लगभग 50 हजार हेक्टेयर लवणीय मृदाओं का सुधार किया गया है जिसमें सामान्य भूमि के समान फसलोत्पादन हो रहा है। हमारे देश में अभी तक लगभग 1.8

मिलियन हैक्टेयर क्षारीय मृदाओं का सुधार किया जा चुका है जो कुल क्षारीय मृदाओं का लगभग 47 प्रतिशत है। क्षारीयता एवं लवणता से प्रभावित प्रमुख राज्यों में हुई भूमि सुधार की प्रगति का विवरण सारणी–3 में दिखाया गया है। अथक प्रयासों के बाद भी उत्तर प्रदेश में मात्र 0.635 मिलियन हेक्टेयर क्षारीय भूमि का सुधार हुआ है जो राज्य की कुल समस्याग्रस्त मृदाओं का आधे से भी कम है। देश में अभी 2.0 मिलियन हैक्टेयर भूमि ऊसर पड़ी है जिसे सुधार कर खेती योग्य बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

सारणी 3. भारत में राज्य-वार प्रभावित एवं सुधरी हुयी क्षारीय एवं लवणीय मृदाएँ (2006-07)

राज्य	सुधरी हुयी क्षारीय मृदा (हैक्टेयर में)	सुधरी हुई जलग्रस्त लवणीय मृदा (हैक्टेयर में)	कुल सुधरी हुयी लवण ग्रस्त मृदा (हैक्टेयर में)
आन्ध्र प्रदेश	0	500	500
अंडमान एवं निकोबार	0	0	0
बिहार	0	6000	6000
गुजरात	38300	3000	41300
हरियाणा	303000	6300	309300
कर्नाटक	2900	500	3400
केरल	0	200	200
महाराष्ट्र	0	3000	3000
मध्य प्रदेश	100	3050	3150
उड़ीसा	0	4000	4000
पंजाब	797000	4250	801250
राजस्थान	22400	16000	38,400
तमिलनाडु	5100	3000	8100
उत्तर प्रदेश	635000	50	635050
पश्चिम बंगाल	0	50	50
कुल	**1803800**	**49900**	**1853700**

अब तक सुधारी गयी कुल 1.85 मिलियन हेक्टेयर क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं से प्रतिवर्ष लगभग 15.0 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन हो रहा है और 250 मिलियन मानव श्रम दिवस रोजगार सृजित हुआ है। अतः एवं शेष बेकार पड़ी लवण प्रभावित मृदाओं को सुधार कर न केवल खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है वरन् काफी अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन करके ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को भी काफी हद तक कम किया जा सकता है। क्षारीय एवं लवणीय भूमि सुधार तकनीक अपनाकर समस्याग्रस्त भूमियों को सफलतापूर्वक सुधार कर न केवल कृषि योग्य बनाया जाता है बल्कि स्थानीय पर्यावरण को सुधार करके स्वच्छ एवं सुन्दर वातावरण का निर्माण किया जाता है। लवणग्रस्त मृदाओं में किसानों की सामाजिक–आर्थिक प्रगति सुनिश्चित करने के लिए हमें इनके सुधार के लिए निरन्तर प्रयासरत रहने की जरुरत है ताकि भविष्य में किसानों को इन क्षेत्रों में आजिविकोपार्जन के लिए संघर्ष नहीं करना पडे तथा दूसरे नये क्षेत्रों में लवणग्रस्त मृदाओं को फैलने से भी रोका जा सके।

फसलों में लवणीय सहनशीलता की क्रियावली

अलग–अलग वानस्पतिक पौधों की शारीरिक क्रियाविधि भी अलग–अलग होती है जिसके कारण पौधे लवणग्रस्त मृदाओं में अपनी आन्तरिक क्रियाविधि में परिवर्तन करके लवणों के कुप्रभाव से अपने आपको बचाते हुऐ

अपना जीवनचक्र पूरा करते हैं। लवणीय मृदाओं में पौधे की शारिरीक प्रक्रिया के आधार पर फसलों को उनकी सहनशीलता के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है:–

परासरणी दाब के प्रति सहनशीलता

फसलों की जड़ों के सिरों तथा नवीन पत्तियों में परासरणी दाब त्वरित रूप से कोशिका की वृद्धि को रोकता है, जिससे रंध्र बंद हो जाते है एवं पौधे में जल की उपलब्धता बनी रहती है। यह क्रियावली पत्तियों की बढवार को भी कम करता है, जो वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाले जल–ह्रास को कम करता है जिससे दाना बनते समय पादप तंत्र में जल उपल्ब्ध रहता है ।

सोडियम आयन का बहिष्करण

जड़ों के द्वारा सोडियम बहिष्करण एक ऐसी प्रक्रिया है जो पत्तियों में इसके जमाव को विषाक्त स्तर से कम रखती है तथा पौधों को मरने से बचाती है । जिन फसलों एवं पत्तियों में सोडियम बहिष्करण की प्रक्रिया अनुपस्थित रहती है उनमें कुछ दिनों या सप्ताहों के उपरान्त पौधों में सोडियम विषाक्त स्तर पर पहुँच जाता है तथा पत्तियाँ प्रौढ़ावस्था से पूर्व मर जाती है।

उत्तक सहनशीलता

पत्तियों की पर्णमध्योतक कोशिका द्रव्यों में सोडियम एवं क्लोराइड आयन की सांद्रण्ता को विषाक्त स्तर से कम रखने के लिए विभागीकरण प्रक्रिया द्वारा उत्तको में सहनशीलता प्राप्त की जाती है।

क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं के सुधार हेतु तकनीकियां

क्षारीय तथा लवणीय भूमि सुधार हेतु कई तकनीक विकसित की गयी हैं जिसे अपना कर ऊसर या कल्लर भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है। लवणीय एवं क्षारीय मृदा सुधार हेतु यांत्रिक, रासायनिक, जैविक एवं शस्य विधियों की संस्तुति की जाती है। लवण प्रभावित भूमि के सुधार के लिए उपयोग में लाए जाने वाले अन्य तरीके जैसे जल निकासी द्वारा लवण निक्षलन, खुरचना इत्यादि मंहगे एवं आर्थिक रूप से कम व्यवहारिक है। इन क्षेत्रों की उत्पादकता बढाने के लिए लवण सहिष्णु प्रजातियों का विकास एक व्यवहारिक संभव दृष्टिकोण है जिसे छोटे तथा सीमान्त किसान सुचारू रूप से उपयोग कर अधिक आय कमा सकते हैं।

यांत्रिक विधि से सुधार

उप-सतही जलनिकास तकनीक

भारत की जलमग्न लवणीय सिंचित मृदाओं के प्रभावी सुधार के लिए उप–सतही जलनिकास तकनीक का विकास किया गया है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान द्वारा उप–सतही जलनिकास की प्रभावी तकनीक को 1980 के दशक के शुरूआती दौर में लवणीय जलग्रस्त भूमि के सुधार एवं प्रबधंन के लिए विकसित किया गया था। हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि राज्यों में इस तकनीक को अपना कर जलग्रस्त भूमि का सफलतापूर्वक सुधार किया जा रहा है। भूमिगत जलनिकास तकनीक के अंर्तगत छिद्र युक्त पाइप भूमि सतह से 1.5–2.0 मीटर गहराई तथा 60–67 मीटर के अन्तराल पर ट्रैन्चर मशीन द्वारा बिछाए जाते हैं। इससे भूमि में पानी के स्तर को स्थिर करने तथा लवणों के निक्षालन में सहायता मिलती है। सभी समानान्तर नालियों को एक संग्राहक नाली द्वारा जोड़ कर 3–4 मीटर गहरे कुएँ (सम्प) में पहुँचा दिया जाता है। इस कुएँ से पानी को पम्प द्वारा निकाल कर खुली नाली में डाल दिया जाता है। इस प्रकार भूमिगत जल को इच्छित स्तर पर

स्थिर किया जा सकता है तथा घुलनशील लवण प्रभावित क्षेत्र से बाहर निकाले जा सकते हैं। संग्राहक नाली से निकलने वाले जल की गुणवत्ता ठीक हो तो पानी किसी प्राकृतिक नाले, नदी या नहर में भी डाला जा सकता है। एक–दो वर्ष के बाद जब इस पानी में लवणों की मात्रा कम हो जाय तो उसका परीक्षण करने के बाद फसलों की सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस तरह की योजना लगाने से पहले परियोजना क्षेत्र से जल बाहर निकालने के लिए निकास नाली की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। किसानों को ऐसी निकास नाली की समय–समय पर सफाई एवं मरम्मत भी करते रहना चाहिए। उप–सतही जलनिकास तकनीक की दीर्घकालिक सफलता में कुछ बाधाएं हैं जैसे अधिक लागत, लवणीय जलनिकास जल के निपटारे से संबधित पर्यावरणीय मुद्दे तथा जलनिकासी चरण के बाद पम्प से आवश्यकतानुसार निंरन्तर पानी को पम्प करना आदि। उप–सतही जलनिकास तकनीक की सफलता में किसानों की भागीदारी, निर्माण और परिचालन लागत की साझेदारी तथा सरकारी अनुदान जैसे कुछ महत्वपूर्ण पहलू हैं।

उप-सतही जलनिकास तकनीक का प्रयोग किसानों के खेत पर

भारत वर्ष के विभिन्न राज्यों के लगभग 50,000 हैक्टेयर जलग्रस्त लवणीय मृदाओं में उप–सतही जलनिकास अपनाने के बाद फसल सघनता (25–100 प्रतिशत), फसल उपज (धान–45 प्रतिशत, गेहूँ– 111 प्रतिशत, कपास–215 प्रतिशत) एवं तीन गुणा किसानों की आय में आशातीत् वृद्धि हुयी है। इस तकनीक के द्वारा 128 अतिरिक्त कार्य दिवस प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष रोजगार के अवसर प्रदान किये गये। उप–सतही जलनिकास तकनीक को उत्तर–पश्चिम भारत की जलोढ़ मृदाओं में लगाने के लिए 60,000 रूपये प्रति हैक्टेयर की लागत आती है तथा महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की भारी गठन वाली मृदाओं में 75,000 रूपये प्रति हैक्टेयर की लागत आती है। इस उप–सतही जलनिकास प्रणाली में सामाग्री एवं स्थापन की लागत कुल लागत की लगभग आधी होती है। उप–सतही जलनिकास तकनीक का आय–व्यय अनुपात 1.47 है जोकि 13 प्रतिशत प्राप्ति की आन्तरिक दर एवं मूलधन के वापस प्राप्ति की 5 वर्ष अवधि पर आधारित है।

बरमा छेद तकनीक

लवणग्रस्त मृदाओं में वृक्षारोपण करने के लिए बरमा छेद तकनीक कारगर साबित हुई है । इस तकनीक के तहत् ट्रैक्टर चलित बरमें से 20 सेंटीमीटर व्यास के 120–140 से.मी. गहरे गड्ढे बनाये जाते हैं। इन गड्ढों को पैत्रिक मृदा + 3–5 किलोग्राम जिप्सम + 8–10 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद + 20 ग्राम जिंक सल्फेट के बने हुऐ मिश्रण से भरकर इनमें लवण सहनशील वृक्षों की प्रजातियां लगायी जाती हैं। पौध रोपण के बाद 3–4 सिंचाई बाल्टी की सहायता से करते हैं तथा इसके बाद सिंचाई नालियां बनाकर करते हैं। जिन मृदाओं का पीएच मान 9.6 से कम होता है उनमें फलदार वृक्ष जैसे करौंदा, आंवला, अमरूद, अनार, बेर तथा जामुन आदि की खेती बरमा छेदक तकनीक की सहायता से आसानी से की जा सकती है। अधिक पी.एच. मान वाली मृदाओं में इस तकनीक से *टेमेरिक्स आर्टिकुलाटा* (फराश), *अकेशिया निलोटिका* (बबूल), *अकेशिया फारनेशियाना* (गुह बबूल),

प्रोसोपिस जुलिफलोरा (विलायती बबूल/जंगली कीकर), *पाराकिनसोनिया एकुलियेटा* (राम बबूल), *केजुरिना ग्लुका* (स्वेम्प ओक), *केजुरिना इक्वीसेटिफोलिया* (जंगली सारू) एवं *युकेलिप्टस टेरेटिकोर्नीस* (सफेदा) आदि वृक्ष प्रजातियों को लवणीय मृदाओं में आसानी से उगाया जा सकता है।

लवणग्रस्त मृदाओं में वृक्षारोपण करने के लिए बरमा छेद तकनीक

रासायनिक विधि से सुधार

जिप्सम का प्रयोग

इसके तहत क्षारीय भूमि सुधारने के लिए रासायनिक भूमि सुधारक पदार्थों जैसे जिप्सम, पाइराइट, फास्फो–जिप्सम एवं गंधक का अम्ल आदि का प्रयोग किया जाता है किन्तु जिप्सम आसानी से बाजार में उपलब्ध हो जाता है तथा सस्ता एवं अत्यन्त प्रभावी होने के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय है। जिप्सम रासायनिक रूप से कैल्शियम सल्फेट है जिसमें कैल्शियम और गंधक होता है। क्षारीय भूमि सुधार के लिये यह आवश्यक है कि प्रयोग किये जाने वाले जिप्सम की शुद्धता 70 प्रतिशत से कम न हो। यदि मृदा का पीएच मान अधिक है तो जिप्सम का प्रयोग सीधे खेत में करें और यदि भूमिगत जल में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की मात्रा 2 से अधिक है तो जिप्सम बैड तकनीक को उपयोग में लाना चाहिए। क्षारीय भूमि सुधार से पूर्व खेत से मिट्टी का नमूना लेकर प्रयोगशाला में उसकी जांच करा लें और भूमि सुधार के लिये आवश्यक जिप्सम की मात्रा की जानकारी प्राप्त कर लें। मृदा के पीएच मान के अनुसार 10 से 15 टन प्रति हेक्टेयर जिप्सम की आवश्यकता पड़ती है (रेखाचित्र 1)।

जिप्सम की आवश्यकता एवं मृदा के पीएच मान के बीच सम्बंध

सर्वप्रथम खेत को लेजर लेवलर की सहायता से समतल करके चारों ओर 35 से 40 से.मी. ऊँची मेड़ बना लेनी चाहिए तथा आवश्यकता से अधिक वर्षाजल की निकासी हेतु उपयुक्त जल निकास की नालियाँ बना दें तथा खेत में अधिक जलभराव को जमा होने से रोकें। जिप्सम को बारीक चूर्ण के रूप में जून के प्रथम सप्ताह में खेत की सतह से 10 से.मी. की गहराई तक जुताई करके भलीभांति मिला देना चाहिए। जिप्सम डालने के बाद खेत में पानी भर देंवे तथा 10–15 दिनों तक खेत में पानी भरा रहने के बाद धान की रोपाई करनी चाहिए। जिप्सम का प्रयोग करने से 3–4 वर्षों में क्षारीय भूमि का पीएच मान तथा विद्युत चालकता कम होने के परिणामस्वरूप मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में अनुकूल परिवर्तन होने लगता है तथा भूमि सामान्य अवस्था में आ जाती है।

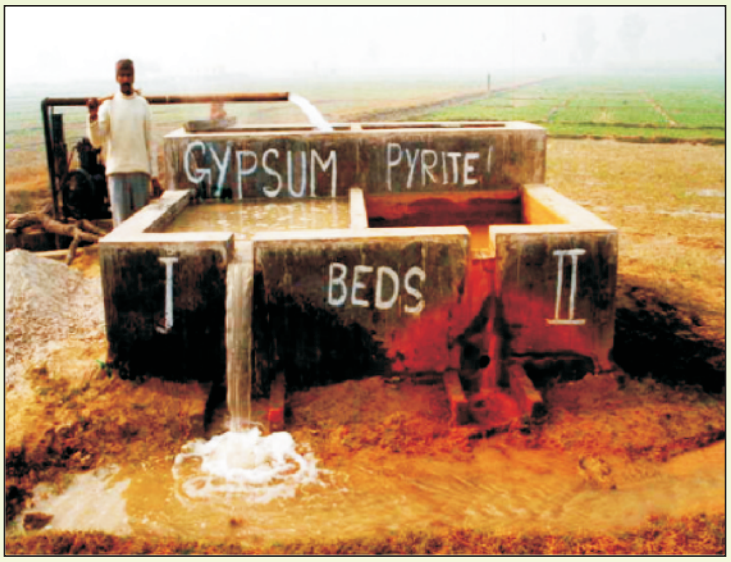

जिप्सम बैड तकनीक से क्षारीय जल का उपयोग

सुधार के प्रथम वर्ष भूमि के समतलीकरण, मेड़बंदी आदि पर औसतन 5000 रुपये/हैक्टेयर का व्यय होता है। सामान्यतः/मध्यमरूप से क्षारीयता प्रभावित भूमि के सुधार हेतु 10 टन जिप्सम की आवश्यकता होती है जिसके क्रय पर 18000 रुपये का खर्च आता है। जिप्सम को डालने के बाद 10–15 दिनों तक खेत में पानी भरने पर लगभग 2000 रुपये का खर्च आता है। इस प्रकार आधे से भी अधिक सुधार व्यय भूमि सुधारक रसायन जिप्सम पर खर्च होता है। ऊसर भूमि सुधार की रासायनिक सुधार विधि में लगभग 35000 रुपये/हैक्टेयर का व्यय आता है। ऊसर सुधार के लिये जिप्सम क्रय हेतु राज्य सरकारों द्वारा कृषकों को 50 प्रतिशत अनुदान भी दिया जाता है और नलकूप लगाने, खेत की मेड़बंदी तथा फसलोत्पादन के लिये आवश्यक बीज, उर्वरक आदि क्रय के लिये कम ब्याज दर पर ऋण भी उपलब्ध कराया जाता है जिसका लाभ उठाकर सुधार के प्रथम वर्ष में होने वाले व्यय को काफी सीमा तक कम किया जा सकता है। तीन वर्षों में क्षारीय भूमि का पूरी तरह सुधार हो जाता है और सामान्य फसलोत्पादन होने लगता है। क्षारीय भूमि सुधार कार्यक्रम आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं अत्यन्त उपयोगी है जिसे अपनाकर किसान इन समस्याग्रस्त ऊसर या कल्लर क्षेत्रों में आजीविका, आत्मनिर्भरता एवं जैव विविधता प्राप्त कर सकता है।

जैविक एवं सस्य विधियों से सुधार

फसल का चुनाव

लवणीय जल वाले क्षेत्रों में लवण सहनशील फसलों को उगाना लाभदायक होता है जिनमें लवणों को सहन करने की अधिक क्षमता हो ताकि उत्पादन में कम से कम गिरावट हो सके। यदि लवणीय जल का फसलोत्पादन हेतु प्रत्यक्ष प्रयोग करना हो तो उपयुक्त फसलों का चुनाव करना चाहिए। अनाज वाली फसलें

तुलनात्मक रूप से लवणों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं। तिलहनी फसलें, जिन्हे कम पानी की जरूरत होती है, अधिक लवणीय जल को सहन कर सकती हैं जबकि दलहनी फसलें लवणीय जल के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। विभिन्न फसलों में लवणता की सीमा (सारणी 4) में दी गई है जिसके अनुसार फसलों का चुनाव करना चाहिए।

सारणी 4. विभिन्न फसलों में वैद्युत चालकता की सीमा का फसलों की उपज पर प्रभाव

फसल	सापेक्ष उपज के लिये अधिकतम वैद्युत चालकता (ईसीई, डेसीसीमन प्रति मीटर)				
	100 प्रतिशत	90 प्रतिशत	75 प्रतिशत	50 प्रतिशत	0 प्रतिशत
धान	3.0	3.8	5.1	7.2	11.0
गेहूँ	6.0	7.4	9.5	13.0	20.0
जौं	8.0	10.0	13.0	18.0	28.0
गन्ना	1.7	3.4	5.9	10.0	19.0
कपास	7.7	9.6	13.0	17.0	27.0
मक्का	1.7	2.5	3.8	5.9	10.0
ज्वार	6.8	7.4	8.4	9.9	13.0
मूँगफली	3.2	3.5	4.1	4.9	6.6
सोयाबीन	5.0	5.5	6.3	7.5	10.0
लोबिया	4.9	5.7	7.0	9.1	13.0
चुकन्दर	7.0	8.7	11.0	15.0	24.0

स्रोतः मास एवं हौफमेंन (1977), एफ.ए.ओ. (1985)

फसलों की लवण सहनशील उन्नत प्रजातियों का चुनाव

फसलों की लवण सहनशीलता प्रजातियों एवं मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती हैं। अतः यह आवश्यक है कि फसलों एवं किस्मों का चुनाव करते समय मृदा की लवणों के प्रति सहनशीलता को ध्यान में रखा जाए। लवणीय एवं क्षारीय जल से प्रभावित क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय फसल की कुल पानी की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। तुलनात्मक रूप से अधिक लवणीय जल का हल्की एवं रेतीली मृदा में उपयोग आसानी से किया जा सकता है। फसलों के साथ ही लवणों को अधिक सहन करने वाली प्रजातियों का चयन भी प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिये क्योंकि एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की लवण सहनशीलता भिन्न होती है। लवणीय जल द्वारा सिंचाई को सहन करने वाली एवं अधिक उपज देने वाली किस्में विकसित की गई हैं जिनका विवरण (सारणी 5) में दिया गया है।

उपयुक्त फसल चक्र का चुनाव

लवणग्रस्त क्षेत्रों में लवण सहनशील फसलों को उपयुक्त फसल चक्र में अपनाकर लगाने से मृदा को कम हानि पहुँचाए बिना अधिक फसलोत्पादन लिया जा सकता है। लवणीय क्षेत्रों में प्रायः उन फसलों तथा फसल चक्रों को प्राथमिकता देनी चाहिए जिनको पानी की कम आवश्यकता पड़ती है ताकि भूमि में सिंचाई जल द्वारा लवणों की कम से कम मात्रा एकत्रित हो सके। सिंधु–गंगा के मैदानों में सघन फसल चक्र में अगर धान फसल चक्र का एक घटक है तो भूमि सुधार के प्रारंभिक 3–4 वर्षों में धान–गेहूँ–ढैंचा (हरी खाद) फसल चक्र अपनायें तथा खेत को अधिक समय तक खाली न छोड़ें और खेत में अनावश्यक पानी खड़ा न रहने दें। भूमि सुधार के प्रारंभिक 4–5 वर्षों के बाद अक्टूबर–नवम्बर माह में सरसों एवं चने की फसल

उगायी जा सकती है। सुधार के प्रारम्भिक दौर में फसलों की लवण सहनशील किस्मों का ही प्रयोग करना चाहिए। फसल चक्र किसी विशेष वातावरण के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क (50 से.मी. से कम वर्षा) प्रदेशों में बाजरा-गेहूँ, बाजरा-जौं, ज्वार-गेहूँ, बाजरा-सरसों, ग्वार-गेहूँ, पडती-सरसों, कपास-गेहूँ आदि फसल चक्र अपनाये जाते हैं।

सारणी 5. फसलों की लवण सहनशील प्रजातियाँ

फसल	लवण सहनशील उन्नत प्रजातियां	क्षार सहनशील उन्नत प्रजातियां
धान	सीएसआर 30, सीएसआर 36, सुमती एवं भूतनाथ	सीएसआर 10, सीएसआर 13, सीएसआर 23, सीएसआर 30, सीएसआर 36,सीएसआर 43, सुमती एवं भूतनाथ
गेहूँ	डब्ल्यूएच 157, राज 2560, राज 3077, राज 2325	केआर.एल 1–4, केआरएल 19, केआरएल 210, केआरएल 213, राज 3077
सरसों	सीएस 52, सीएस 54, सीएस 56, सीएस 330–1, पूसा बोल्ड, आर एच 30	सीएस 52, सीएस 54, सीएस 56, वरूना, डीआईआरए 336
चना	करनाल चना 1	करनाल चना 1
बाजरा	एचएचबी 60, एमएच 269, एमएच 331, एमएच 427	एचएचबी 392, एमएच 269, एमएच 280, एमएच 427
कपास	डीएचवाई 286, सीपीडी 404, जीडीएच 9, जी 17060	एचवाई 6, सर्वोत्तम, एलआरए 5166
ज्वार	सीएचएस 11, एसपीवी 475, एसपीवी 881, एसपीवी 678, एसपीवी 669	सीएचएस 11, सीएचएस 14, सीएचएस 1, एसपीवी 475, एसपीवी 669
जौं	रत्ना, आरएल 345, आरडी 103, आरडी 137, के 169	डीएल 4, डीएल 106, डीएल 120, डीएचएस 12
कुसुम	एचयूएस 305, ए–1, भीमा	मंजीरा, एपीआरआर 3, ए 300

आद्र प्रदेशों में जहां 50 से.मी. से अधिक वर्षा होती है उन क्षेत्रों में धान–गेहूँ , धान–सरसों, धान–सफतल, धान–बरसीम, ज्वार (चारा)–सरसों, ढैंचा (हरीखाद)–गेहूँ , सुडान घास–जई आदि फसल चक्र लाभकारी पाये गये हैं किन्तु इसमें सिंचाई के साथ पर्याप्त मात्रा में जिप्सम का प्रयोग आवश्यक है।

यदि अच्छी गुणवत्ता वाला जल सीमित मात्रा में उपलब्ध होने के कारण लवणीय जल के साथ मिलाकर सिंचाई करने से अधिक उपज मिल सकती है। लवणीय भू–जल वाले क्षेत्रों में यदि नहरी जल भी उपलब्ध हो जो फसलों को प्रारम्भिक अवस्थाओं में एवं फूल बनने के समय अच्छी गुणवत्ता वाले जल द्वारा सिंचाई करने से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। अधिक लवणता वाले जल को अच्छी गुणवत्ता वाले जल के साथ मिलाकर सिंचाई करके भी अधिक फसल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है साथ ही लवणीय एवं अच्छी गुणवत्ता वाले जल का चक्रीय उपयोग भी लाभदायक होता है। उदाहरण के तौर पर 2 सिंचाईयां अच्छे जल से तथा 1 सिंचाई लवणीय जल से या एक बार अच्छे जल तथा 1 बार लवणीय जल से सिंचाई करके सामान्य फसलोत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। फसल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अच्छा जल एवं बाद की अवस्थाओं में लवणीय जल का उपयोग लाभदायक सिद्ध होता है। सिंचाई जल का उपयोग करते समय निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

सिंचाई जल का प्रबन्धन

जल प्रबन्धन में सिंचाई निर्धारण का विशेष स्थान है, जिसमें प्रत्येक सिंचाई, सिंचाई अंतराल तथा लगाए जाने वाले पानी की गहराई मुख्य कारक हैं। सिंचाई के बीच अंतराल कम या अधिक होने से फसल उत्पादकता घटती है तथा जल उपयोगी क्षमता कम होती है। सिंचाई अंतराल तथा जल की मात्रा का निर्धारण कई कारकों से प्रभावित होता है जैसे वाष्पीकरण, पौधों की जड़ो की गहराई एवं विस्तार, मृदा की जल धारण क्षमता एवं मृदा में उपलब्ध नमी के प्रति पौधों की अनुक्रिया इत्यादि।

- लवणीय एवं अच्छे पानी का चक्रीय या मिश्रित उपयोग करना अधिक कारगर पाया गया है।
- पलेवा नहर के पानी से या अच्छी गुणवता वाले पानी से ही करना चाहिए।
- वर्षा के पानी का भूमि में अधिक से अधिक संग्रह करना चाहिए ताकि भूमिगत जल में लवणों की सांद्रता कुछ कम हो सके।
- सूक्ष्म सिचाई पद्धतियां जैसे बूँद–बूँद सिंचाई, फव्वारा सिंचाई आदि का अधिक प्रयोग फसलों के लिये उपयोगी होता है।
- लवणीय मृदाओं में कूड विधि से सिंचाई करना बहुत लाभप्रद पाया गया है।
- लवणीय मृदाओं में हल्की एवं जल्दी–जल्दी (10–20 दिन के अन्तर पर) सिंचाइयाँ करते रहना चाहिए।

उच्च सोडियम विनयमता मृदा जल व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है इसलिए ऊसर समस्या के समाधान में जल प्रबन्धन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऊसर भूमि में नमी की मात्रा सामान्य मृदा की अपेक्षा भारात्मक रूप से 5 प्रतिशत तथा आयतनात्मक रूप से 8 प्रतिशत कम होती है। ऊसर मृदा की जल चालकता कम होने से निचली सतह से ऊपरी सतह की ओर जल संचलन वाष्पोतसर्जन की आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाता जिसके परिणाम स्वरूप उपलब्ध जल तीव्र गति से समाप्त हो जाता है, अतः सिंचाई का अंतराल कम रखना चाहिए।

लवण ग्रस्त मृदाओं में सिंचाई जल का प्रबन्धन

खाद एवं उर्वरकों का प्रबन्धन

उर्वरकों का उपयुक्त व न्यायसंगत प्रयोग भी लवण ग्रस्त मृदा प्रबन्धन नीति का एक भाग है। सामान्यतः लवणग्रस्त मृदा में सामान्य मृदा की तुलना में उर्वरकों की अधिक आवश्यकता होती है। इसका मुख्य कारण लवणग्रस्त मृदाओं में परासरणीय दबाव उच्च हो जाने के कारण पोषक तत्वों की उपलब्धता सामान्य मृदाओं की तुलना में कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप फसल पादपों की पोषण लेने की क्षमता कम हो जाती है यद्यपि सुधरी हुई क्षारीय मृदाओं में प्रस्तावित उर्वरकों की मात्रा उपयुक्त होती है। लवणग्रस्त मृदाएँ स्वयं में ह्रासित मृदा होती है तथा इन मृदाओं में विभिन्न पोषकों का संतुलन ठीक अनुपात में नही होता है। सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्र के किसान सुधार के बाद नत्रजन उर्वरकों का अधिक उपयोग करते हैं जिससे मुख्य पोषकों का सतुंलन बिगडता जा रहा है। किसानों की प्रवृति रहती है कि वे धान में पोटाश का उपयोग नही करते है व फॉस्फोरस का कम उपयोग करते हैं। पोषक शोषित धान–गेहूँ फसल प्रणाली में सूक्ष्म पोषकों की कम मात्रा की निरंतर आपूर्ति की आवश्यकता होती है जो कि अधिकांशतः नही दी जाती है। खाद एवं उर्वरकों का उपयोग करते समय निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

- अनाज वाली फसलों में 10–15 टन एवं सब्जी वाली फसलों में 20–25 टन गोबर की खाद का उपयोग करते रहने से मृदा में लवणों द्वारा होने वाले दुष्प्रभावों को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है।
- लवणीय मृदाओं में सामान्य मृदाओं की तुलना से सिफारिश किये हुये नत्रजन उरर्वकों की दर से 25 प्रतिशत अधिक की दर से नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए।
- क्लोराइड अधिकता (70 प्रतिशत से अधिक) वाले पानी से सिंचित भूमि में 50 प्रतिशत अधिक फॉस्फोरस उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।
- हरी खाद के रूप में ढैंचा एवं मूंग का समावेश, अवशेष प्रबन्धन, खेती संसाधनों के पुनर्चक्रण को अपनाने से रासायनिक पोषकों की काफी मात्रा को बचाया जा सकता है तथा यह पर्यावरण के अनुकूल भी होते हैं।
- धान–गेहूँ फसल चक्र में हरी खाद का प्रयोग या मूंग की खेती को अपनाकर मृदा की भौतिक स्थिति, जैविक कार्बन मात्रा व बेहतर पोषक भंडार को बढ़ाया जा सकता है।
- नत्रजन उरर्वकों की दक्षता बढाने के लिए खादों का स्पलिट रूप में प्रयोग करना चाहिए।
- लवणग्रस्त मृदाओं में उरर्वकों का उपयोग सिंचाई जल के साथ करना एक अच्छा विकल्प साबित होता है।
- सिंधु–गंगा मैदानी क्षेत्रों की क्षारीय भूमि में धान–गेहूँ फसल प्रणाली में सामान्य भूमि की तुलना में 25 प्रतिशत अधिक नत्रजन उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की 150 कि.ग्रा. मात्रा के साथ 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से धान में प्रयोग करें। सुधार के प्रारंभिक 4–5 वर्षों में फसलों में फॉस्फोरस तथा पोटाश उर्वरक देने की आवश्यकता नहीं होती है। नत्रजन उर्वरकों की आधी मात्रा बुवाई के समय और आधी मात्रा प्रथम व द्वितीय सिंचाइयों के बाद दो बार में प्रयोग करें।
- पंजाब, हरियाणा इत्यादि में गेहूँ की कटाई के बाद ढैंचा और मूंग लगाकर हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से आगामी धान की फसल को 75 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर मिलने के साथ–साथ भूमि सुधार में भी सहायता मिलती है।

फर्टिगेशन (सिंचाई के साथ उर्वरक देना)

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में सिंचाई जल के साथ–साथ घुलनशील उर्वरकों एवं आवश्यक पोषक तत्वों का साथ प्रयोग किया जा सकता है इस प्रक्रिया को फर्टिगेशन कहते हैं। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरक की खपत 25–40 प्रतिशत कम हो सकती है। इस प्रक्रिया में घुलनशील उर्वरकों को सिंचाई जल के साथ मिश्रित कर दिया जाता है। फर्टिगेशन फसल एवं मृदा की आवश्यकताओं के अनुरूप उर्वरक एवं जल का सर्वोतम संतुलन बनाये रखने

के लिए एक कुशल तकनीक है। जल एवं पोषक तत्वों का सही समन्वय अधिक पैदावार एवं गुणवत्ता की कुंजी है। फर्टिगेशन में उर्वरकों को कई बार में पूर्वनियोजित सिंचाई के साथ फसलों को देते हैं। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में जल एवं उर्वरक उपयोग दक्षता अधिक होने के कारण 40–60 प्रतिशत कम पानी एवं 20–40 प्रतिशत कम उर्वरक प्रयोग करके भी सर्वोतम पैदावार प्राप्त की जा सकती है। जल एवं उर्वरक की बचत के साथ–साथ उत्पादकता एवं गुणवत्ता में भी वृद्धि दर्ज की गई है।

गहरी जुताई

लवण प्रभावित क्षेत्रों में खेत की तैयारी के समय लवण निक्षालन एक आवश्यक प्रकिया है। अगर खेत परती है, तो गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे निक्षालन सही रूप से हो सके। मृदा में जमा लवणों को निक्षालन द्वारा प्रभावी रूप से हटाया जा सकता है, लेकिन इसके लिए पर्याप्त पात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। विशेष तौर से अधिक पौध सघनता वाली फसले जैसे गाजर, प्याज, मूँगफली इत्यादि एवं लवण निक्षालन उन फसलों के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है जो लवणों की अधिक मात्रा के प्रति संवेदनशील होती है जैसे कि मटर, गन्ना, लाल क्लोवर इत्यादि। यह फसले शुरूआती दिनों में अधिक सवेदनशील होती हैं। लवण निक्षालन पूरे खेत से समान रूप से होना चाहिए तथा गीले एवं सूखे खेत में अन्तर नहीं होना चाहिए ।

भूमि का समतलीकरण

समान रूप से पानी का वितरण निश्चित करने के लिए खेत को सावधानी पूर्वक समतल करना आवश्यक है। समतलीकरण से खेत समान रूप से बराबर हो जाता है जिससे पानी की गहराई खेत में एक सी रहती है जो उच्च जल उपयोगी क्षमता प्रदान करती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित होता है जिसके कारण जल एवं उर्वरकों की कम लागत आती है। इससे अधिक जल खेत में इकठ्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है। खेत में आक्सीजन का विसरण भी समान रहता है जो पोधों को स्वस्थ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समतलीकरण के उद्धेश्य को पूरा करने हेतु नवविकसित तकनीक 'लेजर लैण्ड लेवलर' का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है । यह तकनीक जल एवं पादप पोषक तत्वों को समान रूप से अवशोषित करने में सहायक होती है जिससे पौधों की समान एवं सुदृढ बढवार होती है। चूंकि क्षेत्र समान रूप से समतल हो जाता है इसलिए खेत के क्षेत्रफल में लगभग 3 प्रतिशत की वृद्धि पायी जाती है। इस तकनीक द्वारा 15 से 25 प्रतिशत तक सिचांई के जल को बचाया जा सकता है।

लवण ग्रस्त मृदाओं में *'लेजर लैण्ड लेवलर'* से मृदा का समतलीकरण

पलवार (मल्च) का उपयोग

दो सिचांई व परती के बीच अंतराल में उच्च वाष्पोत्सर्जन के दौरान निक्षालित लवण पुनः मृदा की ऊपरी सतह पर आने की प्रवृति रखते हैं ऐसी कोई भी गतिविधि जो वाष्पीकरण को कम करे तथा मृदा जल को नीचे की सतहो में प्रवाह को बढावा देती हो, मृदा लवणीयता को रोकने में सहायक होता है। शुरूआती दिनों में जब घुलनशील लवणों की सघनता अधिक होती है उस समय पलवार सार्थक रूप से सहायक सिद्ध होती है। पलवार की हुयी मृदा में बार–बार जल छिड़काव से मृदा की निक्षालन क्षमता में वृद्धि होती है तथा इसका फसल उत्पादकता पर सीधा प्रभाव पडता है

लवण ग्रस्त मृदाओं में घुलनशील लवणों को सतह पर आने से रोकने के लिए पलवार

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

सीमित अंतःस्पंदन क्षमता की वजह से लवणीय मृदाओं की जल अवशोषित करने की क्षमता कम होती है। इन मृदाओं की जल आपूर्ति क्षमता और भी कम हो जाती है क्योंकि इनका जलय संचालन कम होता है। क्षारीय भूमि में जल गति इतनी कम होती है कि यह निचली सतहों से जल आपूर्ति करके वाष्पोत्सर्जन की आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाता है, परिणामस्वरूप मृदा में उपलब्ध जल शीघ्र समाप्त हो जाता है जिसकी पुनः पूर्ति हेतु कम अतंराल पर नियमित सिंचाई देनी पडती है। सामान्य मृदा की अपेक्षा क्षारीय मृदा में जडों का फैलाव ऊपरी सतह में रहना, जल धारण क्षमता कम होना, जल बहाव कम होना इत्यादि के कारण यह अनिवार्य हो जाता है कि हल्की सिंचाई कम अंतराल से सुनिश्चित की जाए ऐसी परिस्थितयों में टपका एवं फव्वारा विधि से सिंचाई सतही सिंचाई की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। टपका विधि, सिँचाई की ऐसी तकनीक है जिसमें जल नियंत्रित रूप में बूँद–बूँद कर के लगाया जाता है। इससे मृदा में उच्च नमी की मात्रा बनी रहती है तथा अंतःस्रवण कम मात्रा में होता है। इस विधि की उपयुक्त विशेषताएँ क्षारीय जल को भी कृषि में उपयोगी बनाती है।

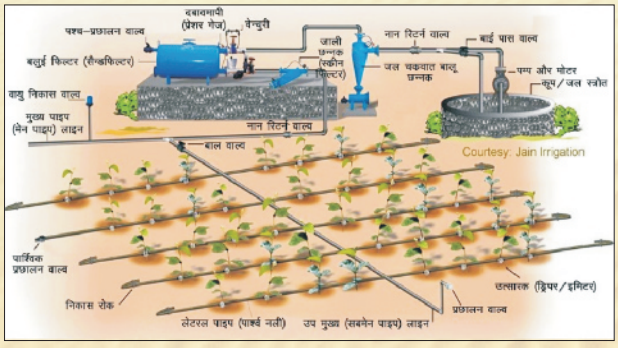

लवण ग्रस्त मृदाओं में सतही एवं उप–सतही सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली संयंत्र

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से लाभ

- इस पद्धत्ति द्वारा पानी का केवल पौधों के जड़ों में ही वितरण, अतः पानी की निश्चित बचत, जिसके द्वारा अधिक क्षेत्र में कृषि उत्पादन संभव।
- एक समान जल वितरण।
- पानी देने के लिये नालियाँ बनाने की आवश्यकता समाप्त होने से श्रम में बचत।
- पोषक तत्वों, पानी एवं हवा का पौधों की जड़ों में समुचित सम्मिश्रण संभव होने से पैदावार तथा पैदावार की गुणवत्ता में अविश्वसनीय वृद्धि।
- केवल जड़ों को ही पानी देने से खरपतवारों का नियंत्रण आसानी से संभव।
- ड्रिप सिस्टम द्वारा पौधों की जड़ों में ही खाद का एकसमान वितरण होने से उर्वरकों की बचत।
- लवणीय भूमि में खेती को सम्भव बनाना।
- सिंचाई के लिए लवणीय जल को उपयोगी बनाना।
- स्प्रिंकलर पद्धति से ऊबड़–खाबड़ खेत में सिंचाई भली प्रकार से की जा सकती है।
- माइक्रोस्प्रिंकलर पद्धति द्वारा पौधों की जड़ों में एक समान खाद वितरण संभव।

अन्य शस्य क्रियाएँ

- लवणीय मृदाओं में फसलों को मेड के बीच में एक साइड में लगाना चाहिए ताकि लवणों का प्रभाव पौधों की जड़ों पर कम पड़े। वहीं दूसरी ओर क्षारीय मृदाओं में फसलों की बुवाई कूड में करनी चाहिए।
- सामान्य भूमि में तैयार की गई 40 से 45 दिनों वाली धान की पौध जुलाई के प्रथम सप्ताह में कददू किये गये खेत में रोपाई करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15 से 20 से.मी. रखें तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से. मी. रखे एवं प्रत्येक स्थान में 3–4 पौधे लगायें।
- पौधे से पौधे तथा लाइन से लाइन की दूरी को कम करना चाहिए तथा 20 से 30 प्रतिशत अधिक बीज दर का प्रयोग करना चाहिए।
- सूखी भूमि या कम नमी पर बुआई के बाद फुव्वारे से हल्की सिंचाई करने पर फसलों का जमाव अच्छा होता है।
- सतही सिचाँई में फसल की आवश्यकता से अधिक जल की मात्रा का उपयोग करना चाहिए, जिससे सोडियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा का निक्षालन जड़ क्षेत्र से हो सके।

जैविक सुधारक

इसके तहत् गन्ना मिल का प्रेसमड, शीरा, धान की पुआल, धान की भूसी, तापीय विद्युत गृह की राख, जलकुम्भी, कम्पोस्ट खाद, गोबर की खाद, बिना सड़ा कच्चा गोबर इत्यादि कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग भी ऊसर सुधार के लिये किया जाता है। जैविक पदार्थ का उपयोग करने से भूमि की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में परिवर्तन होने के फलस्वरूप क्षारीय भूमि का सुधार होने लगता है। भूमि में कुछ सुधार होने के बाद ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग करके ऊसर के प्रति सहनशील फसल प्रजातियाँ जैसे धान, चुकन्दर, पालक आदि उगायी जाती हैं जिससे भूमि का भली–भांति सुधार हो जाता है। यह विधि प्राकृतीय होने के कारण सस्ती है किन्तु सुधार में काफी अधिक समय लगता है।

लवणग्रस्त मृदाओं में कृषि-वानिकी

कृषि–वानिकी के तहत् सिल्वी–पासटोरल प्रणाली में विभिन्न प्रकार के वृक्षों जैसेः *टेमेरिक्स आर्टिकुलाटा* (फराश), *अकेशिया निलोटिका* (बबूल), *अकेशिया फारनेशियाना* (गुह बबूल), *प्रोसोपिस जुलिफ्लोरा* (विलायती बबूल/जंगली कीकर), *पाराकिनसोनिया एकुलियेटा* (राम बबूल), *केजुरिना ग्लुका* (स्वेम्प ओक), *केजुरिना इक्वीसेटिफोलिया* (जंगली सारू) एवं *युकेलिप्टस टेरेटिकोर्नीस* (सफेदा) आदि वृक्ष प्रजातियों को विभिन्न प्रकार की घासों जैसेः *लेप्टोक्लोआ फुस्का* (कलर घास), *क्लोरिस गयाना* (रोढ्स घास) *ब्रेकियरिया मुटिका* (पैरा घास), *पेनिकम स्पीसिज* (बनसा) आदि के साथ लवणीय मृदाओं में आसानी से लगाया जा सकता है। जलमग्न व लवण ग्रस्त भूमियों में जैविक कार्बन की मात्रा कम होती है तथा इन्हे सुधारने के लिए शीघ्र बढ़ने वाले वृक्षारोपण करना कार्बन स्थिरीकरण की एक कारगार नीति है। युकेलिप्टस की जैव–जलनिकास पट्टिरोपण लगाकर जलनिकास के साथ–साथ कार्बन का स्थिरीकरण भी किया जा सकता है। वृक्षारोपण द्वारा मृदा कार्बन में वृद्धि एक महत्वपूर्ण कार्बन भंडार (सिंक) की तरह भी कार्य करती है। अतः युकेलिप्टस रोपण भूमिगत जल स्तर को नीचा करने के अलावा कार्बन स्थिरीकरण के रूप मे अतिरिक्त लाभ प्रदान करता है।

लवणग्रस्त मृदाओं में युकेलिप्टस का जैव-जलनिकास हेतु पट्टिरोपण

लवणीय मृदाओं में वृक्षारोपण के लिए उप–सतही या कूड़ विधि अपनायी जाती है जिसमें ट्रैक्टर द्वारा नालियां बनाने वाले यंत्र से 50 से.मी. चौड़ी और 60 से.मी. गहरी नालियां बनायी जाती हैं। चूनेदार/काली मृदाओं में नालियों के मध्य में बरमा छेदक से गड्ढा बनाकर उसको मृदा मिश्रण (पैत्रिक मृदा + सड़ी हुयी गोबर की खाद + कीटनाशक) से भर दिया जाता है। लवणीय सिंचाई जल से भी इन नालियों में सिंचाई की जा सकती है। वृक्षारोपण के उद्धेश्य को ध्यान में रखते हुये पंक्ति से पंक्ति की दूरी एवं पौधे से पौधे की दूरी को निर्धारित किया जाता है।

★★★

थार रेगिस्तान में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट युक्त पानी द्वारा सिंचित मृदाओं का सुधार एवं प्रबंधन

महेश कुमार, राज सिंह, नव रतन पंवार, पी. सान्तरा एवं एस.पी.एस. तँवर

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितिक एवं मृदा क्षेंत्रों में क्षारीयता एवं लवणीयता द्वारा प्रभावित मृदायें पाई जाती है। अकेले राजस्थान में लगभग 6.43 लाख हैक्टर भूभाग क्षारीयता से प्रभावित हैं। पश्चिमी राजस्थान (थार रेगिस्तान) में भू–जल सामान्यत लवणीय प्रवृत्ति का है जो वर्तमान में सिंचाई के काम नहीं लिया जाता है लेकिन कुछ–कुछ स्थानों पर उपलब्ध भू–जल कम लवणीय, परन्तु अधिक अवशिष्ट कार्बोनेट युक्त है, जो मुख्यतः सिंचाई के काम लिया जाता है। भूमि में क्षारीयता बढ़ने के लिए अधिक तापमान, कम वर्षा, अधिक वाष्पन एवं क्षारीय एवं अधिक कार्बोनेट युक्त पानी द्वारा लगातार सिंचाई महत्त्वपूर्ण कारण हैं। पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर, जालोर, जोधपुर पाली एवं नागौर जिलों में अधिक कार्बोनेट युक्त पानी द्वारा अनवरत सिंचाई से कृषि योग्य उपजाऊ भूमि क्षारीय मृदाओं में बदल रही है। इन मृदाओं में पानी सतह पर ही एकत्र रहता है एवं सूखने पर मिट्टी बहुत कठोर हो जाती हैं तथा गीली होने पर लोचदार एवं चिपचिपी रहती है एवं जुताई करने पर ढेले बन जाते है। ऐसी भूमि में बीजों का पूर्णतया अंकुरण नहीं हो पाता है तथा जिन बीजों का अंकुरण हो जाता है उनकी वृद्धि नहीं हो पाती है। साथ ही पानी में लवणीयता से अधिक रसाकर्षण दबाव के कारण पोषक तत्व उपलब्ध अवस्था में होने के बावजूद पौधों को नहीं मिल पाते। इन सभी कारणो से फसल की पैदावार बहुत कम होती है। किसानों को प्रायः एक सिंचित फसल लेने के बाद 2–3 साल तक खेत को खाली रखने पड़ते है।

कहीं कहीं पर तो यह समस्या इतनी विकट है कि बाड़मेर एवं नागौर के कई क्षेत्रों में लाभ के बदले लागत अधिक आने एवं पर्याप्त उपज के अभाव में किसानो ने खेती करना छोड़ दिया। इन सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त भूमि के सुधार एवं प्रबंधन के बारे में इस प्रपत्र में विवरण दिया गया हैं।

क्षारीय मृदाओं की पहचान – क्षारीय मृदाओं की भौतिक दशा बहुत असंतोषजनक होती है। इनमें सोडियम बाईकार्बोनेट, विनियमय सोडियम तथा सोडियम सिलिकेट लवणों की प्रचुरता होती है तथा विनिमयशील कैल्शियम व मैग्नीशियम की मात्रा बहुत कम होती है। इन मृदाओं का पी एच मान संतृप्ता अवस्था में 8.5 या इससे अधिक, संतृप्त सत्व की विद्युत चालकता 4.0 डेसी साई मेन्स प्रति मीटर से कम तथा विनिमय सोडियम 15 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। ऐसी मृदाओं की पहचान निम्न बिन्दुओं द्वारा की जा सकती है। मृदा की उपरी सतह पर दरार युक्त मोटी पपड़ी बन जाने के कारण पानी को नीचे जाने से तथा फसलों के अंकुरण में रूकावट डालती है। वर्षा का पानी काफी दिनों तक पड़ा रहता है, देरी से सूखता है तथा सूखने पर भूमि में दरारें पड़ जाती है। भूमि की भौतिक संरचना बिगड़ जाती है। जीवांश पदार्थ बहुत कम या न के बराबर होता है।

क्षारीय मृदाओं की प्रमुख समस्याएँ: इन मृदाओं में विनिमय योग्य सोडियम और सोडियम के कार्बोनेट, बाइकार्बोनेटस एवं सिलिकेट लवणों की अधिकता के कारण भूमि के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिर्वतन हो जाते है। जिससे पौधों की बढ़वार पर विपरीत प्रभाव पड़ते है। जो निम्न प्रकार है :

- भूमि में क्षार अधिक एवं विनिमय योग्य कैल्शियम कम होता जाता है। जिसके कारण मिट्टी के बारीक कण रन्ध्रकणों में भर जाते है। परिणामस्वरूप नीचे की केशिकाएँ बन्द हो जाती है और पानी खेत में भरा रहता है। ऐसी मृदा गीली रहने पर लोचदार एवं चिपचिपी तथा सूखने पर मिट्टी कठोर हो जाती है।

- अत्यधिक विनिमय योग्य क्षार एवं घुलनशील लवणों की उपस्थिति से भूमि की भौतिक संरचना खराब हो जाती हैं। रन्ध्रकूपों की संख्या बढ़ने के कारण, मृदावायु अधिक हो जाती है, जो शुष्क खेतो में मृदा की नमी रोकने की क्षमता को कम कर देती है। अतः मृदा जल कम होने पर पौधे बढ़वार नहीं कर पाते।

- इन मृदाओं में अनेक पोषक तत्व जैसे जैविक कार्बन, नत्रजन एवं जिंक की कमी हो जाती है।

- विशेष रूप से इन मृदाओं में वायुसंचार कम होने के कारण मृदा सूक्ष्म जीव जो केवल वायु की उपस्थिति में ही कार्य करते है, अपनी क्रिया मन्द कर देते है, जिनका परोक्ष रूप से फसलों की बढ़वार पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं।

क्षारीय मृदाओं का सुधार

इस प्रकार की मृदाओं को सुधारने के लिए जिप्सम सबसे उपयुक्त, सस्ता एवं आसानी से उपलब्ध होने वाला भूमि उपचारक हैं। जिसे कैल्शियम सल्फेट के नाम से जाना जाता है। यह राजस्थान के हनुमानगढ़, बीकानेर, बाड़मेर एवं जैसलमेर जिलों में प्रचुरता में पाया जाता है। सामान्यतः बाजार एवं सहकारी समितियों पर मिलने वाले जिप्सम में (70 प्रतिशत शुद्ध) लगभग 16 प्रतिशत कैल्शियम एवं 13.5 प्रतिशत सल्फर पाया जाता है। राजस्थान सरकार जिप्सम की खरीद पर किसानों को 50 प्रतिशत की रियायत पर सहकारी समितियों के माध्यम से उपलब्ध करवाती है। इस प्रकार जिप्सम के उपयोग द्वारा सल्फर की कमी को भी पूरा किया जाता है।

क्षारीय भूमि सुधार हेतु जिप्सम के उपयोग की विधि

जिप्सम की मात्रा का निर्धारण प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण के अनुसार तय किया जाता है जो कि मृदा में पाई जाने वाली सोडियम की मात्रा एवं मिट्टी के गठन पर निर्भर करता है। रेतीली मृदाओं को सुधारने के लिए भारी एवं चिकनी क्षारीय मृदाओं की अपेक्षाकृत कम जिप्सम की आवश्यकता होती हैं। भूमि सुधारक के रूप में काम में लिए जाने वाले जिप्सम की शुद्धता (कम से कम) 70 प्रतिशत एवं मेस साइज 60 होनी चाहिए।

मानसून की वर्षा आरम्भ होने से पहले खेत को समतल करके मजबूत मेडबंदी करे। प्रयोगशाला में मिट्टी एवं पानी परीक्षण के बाद सिफारिश की गई जिप्सम की मात्रा को मिट्टी की ऊपरी सतह (10–15 से.मी.) में मिला दिया जाये। इसके बाद खेत को छोटी–छोटी क्यारियों में बांट दिया जाता है। फिर इन क्यारियों में वर्षा का पानी

सामान्य स्तर (2–3 इंच) तक भरने दिया जाता है। यह पानी का भराव सामान्यता 8–10 दिन तक रखा जाता है। इसके बाद भी यदि पानी मिट्टी की सतह पर रहता है, तो इसे खेत से बाहर निकाल देना चाहिए। यदि वर्षा का पानी क्यारियों को भरने के लिए पर्याप्त नहीं है तो कुओं एवं नहर के पानी से भी इन क्यारियों में पानी का भराव सामान्य स्तर तक 8–10 दिनों तक रखना चाहिए। क्यारियों में पानी सूखने या बाहर निकालने के बाद सामान्य कृषि कार्य करे। इस प्रकार जिप्सम द्वारा सुधारी गई मृदा को उसी रूप में रखने के लिए जरूरी है कि सिंचाई हेतु अच्छा पानी प्रयोग में लेवें। क्षार सहनशील फसलों (गेहूँ, जौ, बाजरा) एवं उनकी उत्तम किस्मों का उपयोग करें, जैविक खाद का अधिक इस्तेमाल करें। सामान्यतः जिप्सम द्वारा सुधारी गई क्षारीय मृदाओं में 3–4 वर्षो तक इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

क्षारीय मृदाएँ जिनका पी.एच. मान 8.5 से अधिक एवं विनिमयशील सोडियम की मात्रा 15 प्रतिशत से अधिक होती है, ऐसी मृदाओं में जिप्सम मिलाने से उसमें उपस्थित कैल्शियम आयन सोडियम आयनों को मिट्टी की ऊपरी सतहों से हटाता है। साथ ही क्षारीय मिट्टी की ऊपरी सतहों से हटाता है। क्षारीय मिट्टी में पाए जाने वाला सोडियम, जिप्सम में पाए जाने वाले सल्फेट के साथ सोडियम सल्फेट के रूप में मिट्टी के नीचे चला जाता है। इस प्रकार जिप्सम मिट्टी की क्षारीयता को दूर करता है एवं इसके उपयोग से मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार होता है। मिट्टी भुरभुरी हो जाती है एवं हवा व पानी का आवागमन आसानी से होने लगता है।

काजरी जोधपुर द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास

क्षारीयता की समस्या से ग्रस्त भूमि के सुधार एवं प्रबंधन के लिए वर्ष 2008 से 2011 तक जोधपुर एवं बाड़मेर के किसानो के खेत पर अध्ययन प्रदर्शन लगाये गये। पानी एवं मृदा की जाँच कर मिट्टी के रासयनिक गुणों तथा पानी में अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट के आधार पर जिप्सम की भाग ज्ञात की गई (तालिका 1) जिप्सम मानसून की वर्षा आरम्भ होने से पहले खेत में डाल दिया गया। तथा ट्रेक्टर से जुताई कर सतही मिट्टी में मिला दिया गया। इसके बाद खेत में बड़ी–बड़ी क्यारियाँ बना दी गई जिससे खेत का पानी बाहर नहीं बहे एवं जिप्सम अच्छी तरह घुल सके। और सभी किसानों के खेती में खरीफ में कोई फसल नहीं लगाई गयी।

रबी से सभी किसानों के खेत पर गेहूँ की फसल (राज–3077) लगाई गई। फसल की आवश्यकता के अनुसार नाइट्रोजन एवं फास्फोरस उर्वरक डाले गये तथा अन्य शस्य क्रियायें जैसे सिंचाई, निराई, गुडाई, खरपतवार नियंत्रण आदि सभी समयानुसार की गई।

जिप्सम उपचारित मृदाओं में गेहूँ की पैदावार एवं मृदा गुण

इस अध्ययन प्रदर्शन के अन्तर्गत सभी किसानों के खेतों में जिप्सम द्वारा उपचारित खेत में गेहूँ का अंकुरण जिप्सम अनुपचारित खेत की अपेक्षा 35–62 प्रतिशत तक अधिक पाया गया। इसमें मुख्यतः ओमसिंह एवं बाबू सिंह जिनके कुओं का पानी 8.40 एवं 8.25 ई.सी. प्रति लीटर अवशिष्ट कार्बोनेट एवं मिट्टी पूर्णतया क्षारीय मृदा (पी.एच. 9.5 एवं 9.7) में बदल गई थी। इन दोनो ही खेतों पर जिप्सम का प्रभाव बहुत ही सकारात्मक देखा गया। साथ ही अन्य किसानों (बाबू सिंह, जेठाराम, गोबरा राम, दूधा राम, ओमा राम) के खेतों पर भी जिप्सम उपयोग का प्रभाव गेहूँ एवं चारे की पैदावार पर स्पष्ट रूप से देखा गया। इन सभी किसानों के खेतो पर जिप्सम उपचारित प्लाट्स में बिना जिप्सम उपचारित प्लाट्स की तुलना में गेहूँ की उपज 35–62 प्रतिशत तक अधिक प्राप्त की गयी। उपरोक्त अध्ययन प्रदर्शन के अर्न्तगत सभी किसानों के यहाँ जिप्सम उपचारित खेत की मृदायें भुरभुरी एवं नरम हो गयी थी जो पहले कार्बोनेट युक्त पानी के लगातार उपयोग से कठोर एवं सख्त बनी हुई थी। पानी की मिट्टी के अन्दर प्रवेश दर भी बढ़ गई एवं पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता भी पहले की अपेक्षा अधिक हुई। इन सभी कारणों से फसल की सम्पूर्ण रूप से वृद्धि हुई। मृदा में इन भौतिक गुणों के साथ–साथ रासायनिक गुणों में भी सुधार पाया गया। मृदाओं में मुख्य रूप से पी.एच. मान एवं सोडियम की मात्रा में गिरावट देखी गयी (सारणी 1) इसी प्रकार अधिक कार्बोनेट युक्त पानी द्वारा

सिंचित मृदाओं (क्षारीय मृदायें) का जिप्सम द्वारा (50 प्रतिशत जिप्सम की मात्रा) उपचार किसानों, के लिए आर्थिक दृष्टि से भी फायदेमन्द रहा तथा लाभ–लागत अनुपात 1.8 से 3.9 तक आँका गया। साथ ही एक बार इस तरह की मृदाओं को जिप्सम में सुधार करने से लगभग तीन साल तक लगातार खरीफ एवं रबी की फसल ली जा सकती हैं। इसमें गेहूँ की फसल के लिए जिप्सम की आवश्यकता का 50 प्रतिशत उपयोग पर्याप्त होता है। इसमें जिप्सम उपचार का प्रभाव क्रमशः दूसरे व तीसरे वर्ष भी अच्छी तरह से महसूस किया गया।

सारणी 1. जिप्सम उपचार द्वारा मृदा एवं गेहूँ की पैदावार पर प्रभाव

किसान का नाम	जिप्सम उपचार	मृदा (1:2)		जिप्सम की मात्रा (टन/है.)	पानी			गेहूँ की पैदावार (टन/है.)
		पी.एच.	ई.सी.		पी.एच.	ई.सी.	आर.एस.सी.	
बाबू सिंह	अनुपचारित	9.5	0.517	7.2	8.25	3.3	4.2	2.9
	उपचारित	9.05	0.683					4.4
गोबरा राम	अनुपचारित	9.3	0.345	7.7	7.7	4.4	4.6	3.2
	उपचारित	8.7	0.486					4.6
सुखदेव सिंह	अनुपचारित	9.3	0.440	5.7	7.9	4.1	5.9	3.2
	उपचारित	8.5	0.592					4.8
ओम सिंह	अनुपचारित	9.7	0.314	10.8	8.4	2.2	7.7	3.5
	उपचारित	9.0	0.439					5.2
दूधा राम	अनुपचारित	9.2	0.208	7.7	7.9	5.5	3.4	3.2
	उपचारित	8.7	0.218					4.4

उपरोक्त अध्ययन प्रर्दशनों से यह स्पष्ट है कि अधिक कार्बोनेट वाले पानी से सिंचित क्षेत्रों में लगातार फसलोत्पादन के लिए जिप्सम एक महत्त्वपूर्ण एवं आसानी से सस्ती दरों पर उपलब्ध होने वाला भूमि सुधारक हैं। इसके उपयोग से फसलों में पैदावार की बढ़ोत्तरी के साथ–साथ मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिससे लम्बे समय तक भूमि कृषि योग्य बनी रहती है। साथ ही साथ जिप्सम भूमि सुधारक के अलावा सल्फर का भी मुख्य स्त्रोत है, जो कि सभी फसलों के लिए महत्त्वपूर्ण पोषक तत्व है।

अनुपचारित खेत में गेहूँ की फसल

जिप्सम उपचारित खेत में गेहूँ की फसल

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में कृषि कार्य हेतु महत्त्वपूर्ण बातें

- 20–30 प्रतिशत अतिरिक्त बीज की मात्रा डालें
- 25 प्रतिशत नाइट्रोजन की अतिरिक्त मात्रा प्रयोग करें
- जिंक सल्फेट 25 किग्रा प्रति हैक्टर के हिसाब से मिट्टी में मिलावें
- फॉस्फोरस की भी अतिरिक्त मात्रा काम में लेवें
- संतुलित मात्रा में रासायनिक एवं जैविक माध्यमों से फसलों को पोषण करें।

जिप्सम डालने के अन्य फायदे

सल्फर (गंधक) एवं कैल्शियम के स्त्रोत के रूप में: पौधों के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के बाद गंधक चौथा प्रमुख तत्व है। एक अनुमान के अनुसार तिलहनी फसलों को फॉस्फोरस के बराबर मात्रा में गंधक की आवश्यकता होती है। आज के समय में किसान मुख्यतः यूरिया, एवं डी.ए.पी. का अधिक उपयोग करने के साथ–साथ तिलहनी फसलों जैसे सरसों, मूँगफली, तिल, तारामीरा, अरण्डी को फसल चक्र में मुख्य रूप से अपनाते है। इसके फलस्वरूप खेतों में गंधक की लगातार कमी होती जा रही है। इस प्रकार से खेतों में जिप्सम का उपयोग अधिक फायदेमंद है क्योंकि यह सल्फर एवं कैल्शियम का मुख्य स्त्रोत है।

तिलहनी एवं दलहनी फसलों में जिप्सम का उपयोग : तिलहनी फसलों मुख्यतः सरसों, मूँगफली, तिल, तारामीरा आदि में गंधक के उपयोग से 10–15 प्रतिशत पैदावार बढ़ती है तथा दानों में तेल की मात्रा में बढ़ोतरी होती है जबकि दलहनी फसलों में प्रोटीन निर्माण हेतु गंधक आवश्यक तत्व की भूमिका निभाता है। साथ ही जिप्सम में उपस्थित गंधक के कारण दाने सुड़ौल एवं चमकीले बनते है।

गेहूँ में जिप्सम का उपयोग: खाद्यान्न फसलों के उत्पादन में गंधक एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक पोषक तत्व हैं। इसकी आवश्यकता लगभग 20–25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होती है। गेहूँ में जिप्सम के उपयोग से जिप्सम में उपस्थित गंधक के कारण प्रोटीन की मात्रा में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ दाने मोटे एवं चमकदार होते है।

फसलों को पाले से बचाने में सहायक: जिप्सम में 13.5 प्रतिशत गंधक पाया जाता है जिसके कारण इसके उपयोग से पाले से होने वाले नुकसान की संभावना भी कम होती है।

★★★

आधुनिक कृषि में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व एवं प्रबंधन

नवरतन पंवार, महेश कुमार एवं प्रियब्रत सान्तरा

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

पौधे अपने जीवन–चक्र को पूरा करने के लिए मृदा जल एवं वायुमंडल से आवश्यक पोषक तत्वों को प्राप्त करते हैं तथा सूर्य के प्रकाश में उनसे कई यौगिकों का निर्माण करते हैं। प्राकृतिक वातावरण में उगने वाले पौधों का यदि रासायनिक विश्लेषण किया जाए तो इनमे 90 से अधिक रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। वास्तव में पौधे उन सभी तत्वों का अवशोषण कर लेते हे जो उनकी जड़ों के सम्पर्क में आते हैं, परन्तु ये सभी तत्व पौधों के जीवन के लिए अनिवार्य नहीं माने जाते हैं। पौधों के संतुलित विकास और फसलों से अधिक उपज लेने के लिए 17 पोषक तत्व आवश्यक माने गये है, जिनमें से किसी एक के भी न मिलने पर पौधे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाते हैं। इनमें से प्रत्येक का पौधों के पोषण में अपना अलग ही कार्य होता है और वे एक दूसरे के संपूरक भी नहीं हो सकते है। इनमें से 9 तत्वों को मुख्य तत्व कहा जाता है क्योंकि पौधों को उन तत्वों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। शेष 8 तत्व लोहा, जस्ता, मैंगनीज, तांबा, बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन एवं निकिल हैं। जिन्हें सूक्ष्म पोषक तत्व कहा जाता है इनकी आवश्यकता कुछ ग्राम या 1 कि.ग्रा./हे. से कम होती है।

भारत वर्ष में हरित क्रान्ति के समय एवं उसके बाद फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों व उर्वरकों के प्रयोग में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है इससे देश में खाद्यान्न उत्पादन ने एक रिकार्ड स्तर को प्राप्त किया है। अति सघन खेती, अधिक उपज, जैविक खादों के घटते प्रयोग व उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग से कई राज्यों की मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। मृदाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल तथा उपलब्ध (प्राप्य) मात्रा में काफी विभिन्नता पाई जाती है। पौधों की वृद्धि में तत्वों की कुल मात्रा का ज्यादा महत्व नहीं होता हैं जितना की इनकी ''उपलब्ध या प्राप्य मात्रा का'', जिसकी जाँच अति आवश्यक है। भूमि में इनकी पूर्ति विभिन्न स्त्रोतों जैसे जैविक खाद, उर्वरक रसायन और फसलों के अवशेष आदि डालकर की जाती है।

किसान अधिक उपज प्राप्त करने के लिए प्रायः मुख्य पोषक तत्वों का ही प्रयोग करते है जिसके फलस्वरूप भारतीय मृदाओं में गौण तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी आने लगी है। प्रमुखतया जस्ते की कमी अधिकाधिक मृदाओं में पाई जाती है साथ ही लोहा, मैगनीज, तांबा एवं बोरोन की कमी भी बढ़ती जा रही है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का फसलों की उपज पर प्रभाव

फसलों की भरपूर उपज के लिए यह आवश्यक है कि फसल द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों की भरपाई मृदा में उर्वरक एवं खाद डालकर पूरी की जाए ताकि उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि की जा सके। उर्वरकों की उपयोग क्षमता भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्धता, नमी की मात्रा तथा पौध सरक्षंण इत्यादि पर निर्भर करती है सूक्ष्म पोषक तत्व सभी फसलों के लिए आवश्यक होते हैं। विभिन्न फसलों पर सूक्ष्म तत्वों के प्रयोग का प्रभाव सारणी–1 में दिया गया है।

सारणी–1: विभिन्न फसलों की उपज पर सूक्ष्म तत्वों के प्रयोग का प्रभाव

तत्व	अनाज (कि.ग्रा./हे.)	दलहन (कि.ग्रा./हे.)	तिहलन (कि.ग्रा./हे.)
जस्ता	200–7500	200–500	200–500
मैंगनीज	200–900	28–190	28–220
मोलिब्डेनम	28–1070	20–200	110–550
लोहा	300–1880	450–670	230–800
तांबा	20–1780	–	90–800
बोरोन	10–1670	40–900	10–430

स्त्रोतः अखिल भारतीय सूक्ष्म तत्व परियोजना रिपोर्ट

उपरोक्त आकड़ों से पता चलता है कि जस्ते और लोहे का सबसे ज्यादा प्रभाव अनाज वाली फसलों की उपज पर पड़ता है जबकि बोरोन तथा मोलिब्डेनम का अच्छा प्रभाव दलहनों तथा तिलहनों पर होता है। बलुई मृदाओं में गेहूँ पर मैंगनीज का उपज वृद्धि पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अतः विभिन्न फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि मृदा में जिस किसी सूक्ष्म तत्व की कमी हो उसका प्रयोग किया जाये। कभी–कभी एक तत्व की कमी होते हुए भी यदि उसकी पूर्ति करते है तो उपज में वृद्धि नहीं हो पाती अतः एक सूक्ष्म तत्व की पूर्ति के लिए कभी–कभी अन्य सूक्ष्म तत्व भी खेतों में एक साथ प्रयोग किये जाते हैं। यह निष्कर्ष भी अनुसंधान के आधार पर निकाला गया है।

मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता मृदा के प्रकार, जलवायु एवं वातावरण की भिन्नता के अनुसार कम–ज्यादा हो सकती है यद्यपि मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कुल मात्रा अधिक होती है। लेकिन फसलों के लिये इसका विशेष महत्व नहीं होता है क्योंकि पौधे कुल मात्रा का कुछ अंश ही ले पाते है और अधिकाशं मृदा में ही रहता है। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले मुख्य कारणों में मृदा पी.एच., कैल्शियम कार्बोनेट, कार्बनिक पदार्थ, मृदा संगठन, घुलनशील लवण तथा एल्यूमीनियम ऑक्साइड इत्यादि है।

मृदा पी.एच.

मृदा पी.एच. मान सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को सबसे अधिक प्रभावित करता है। मृदा पी.एच. मान बढ़ने पर मोलिब्डेनम को छोड़कर सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है। इनकी उपलब्धता प्रायः अम्लीय भूमियों में अधिक होती है जबकि मोलिब्डेनम सामान्य व क्षारीय मृदा पी.एच. पर उपलब्ध होता है।

कैल्शियम कार्बोनेट : मृदा पी.एच. के अतिरिक्त चूना (कैल्शियम कार्बोनेट) की अधिकता भी सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है चूने वाली मृदाओं में जस्ता, तांबा, लोहा एवं मैंगनीज की उपलब्धता भी घट जाती है।

जैविक पदार्थ : जैविक पदार्थ सूक्ष्म पोषक तत्वों की प्राप्यता को भी प्रभावित करता है। जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। जैविक पदार्थो में ये तत्व रह सकते है तथा जैविक पदार्थ प्रयोग करने पर मृदा में इनकी उपलब्धता बढ़ जाती है।

अन्य पोषक तत्व : भूमि में फॉस्फोरस तत्व की अधिकता का भी जस्ता, तांबा एवं लोहा की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार जस्ते की अधिकता तांबा, लोहा एवं मैगनीज की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। संतुलित पोषक तत्वों का उपयोग फसलों के सही पोषण के लिए जरूरी है।

मृदा के प्रकार : रेतीली/मरूस्थलीय मृदाओं में काली, चिकनी व दोमट मृदाओं की तुलना में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है। मृदाओं के जलमग्न होने पर जस्ते की उपलब्धता कम हो जाती है जबकि फॉस्फोरस, लोहा व मैंगनीज की मात्रा बढ़ जाती है। पंजाब की रेतीली मृदाओं में लगातार धान लेने से जलमग्नता के कारण धान में जस्ते की व गेंहूँ में मैंगनीज की कमी देखी गई है।

मृदा तापमान : मृदा तापमान अत्यधिक कम (ज्यादा सर्दी) होने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है जिसकी कमी पत्तों पर छिड़काव करके दूर की जा सकती है। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा क्रान्तिक स्तर से नीचे आते ही पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो जाती है जिसका पौधों की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। तत्व विशेष की कमी के लक्षण पौधों पर विशेष रूप से दिखाई देने लगते है जो कि विभिन्न फसलों में अलग–अलग होते है। गर्मी में पौधे पीले पड़ जाते है वृद्धि रूक जाती है, फूल कम आते है और उपज घट जाती है।

सूक्ष्म पौषक तत्वों के पौधों में कार्य एवं कमी के लक्षण

सूक्ष्म पौषक तत्वों के पौधों में महत्वपूर्ण कार्य एवं उनकी कमी के लक्षण सारणी–2 में दिये गये है।

सारणी 2. सूक्ष्म पौषक तत्वों के कार्य एवं कमी के लक्षण

पोषक तत्व	प्रमुख कार्य	कमी के लक्षण	क्रान्तिक स्तर (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)
जस्ता	• पौधों में अनेक प्रकार के एन्जाइम की रचना व सक्रियता में सहायक है। • हार्मोन्स के जैविक संश्लेषण में सहायक है। • पर्ण हरित की रचना में लौहे एवं मैगनीज के साथ संयुक्त रूप से उत्प्रेरक का कार्य करता है। • प्रोटीन, कैरोटीन एवं सिट्रीन के संश्लेषण में सहायक है। • कार्बोहाइड्रेड के वाहन में आवश्यक है। • उर्वरको की उपयोग क्षमता में वृद्धि में सहायक है।	• पुरानी पत्तियों के बीच में सफेद या पीले रंग की धारिया पड़ जाती है। • पौधे की वृद्धि दर कम हो जाती है। • फल कलिका रचना बहुत कम होती है या देर से होती है। • नींबू कुल के पेड़–पौधों में लक्षण स्पष्ट दिखाई देते है। पत्तियों की शिराओं में नेक्रोसिस हो जाती है। • अग्रिम पत्तियाँ असामान्य रूप से छोटी, विशेष रूप से फल वाले वृक्षों में रह जाती है।	0.6
लोहा	• पौधों में पर्णहरित के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। • प्रोटीन संश्लेषण एवं उपापचीय क्रियाओं में महत्वपूर्ण है। • पौधों की कोशिकाओं में होने वाली ऑक्सीजन अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता हैं। • श्वसन क्रिया में आक्सीजन वाहक का कार्य करता है। • कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है।	• पौधों की नई पत्तियाँ पहले पीली पड़ जाती है। पत्तियों के किनारे बहुत समय तक हरे बने रहते है। • अधिक कमी में पूरी पत्ती शिरायें और उनके बीच का भाग पीला पड़ जाता हैं। • नई पत्तियाँ सफेद पड़ जाती है।	4.5
तांबा	• पौधों में पर्णहरित एवं विटामिन 'ए' के संश्लेषण में सहायक है। • ऑक्सीकरण एवं अवकरण क्रियाओं को नियमित कर एन्जाइमों की क्रियाशीलता में सहायता करता है। • प्रकाश संश्लेषण एवं श्वसन क्रिया को प्रभावित करता है। • इन्डोल एसिटिक अम्ल के	• नई पत्तियों के किनारे में क्लोरोसिस (पीला पड़ना) व पत्तियों के अग्रभाग का मुडना प्रमुख लक्षण है। • नींबू जाति के फलों में लाल भूरे धब्बें अनियमित आकार के पाये जाते है एवं रस में अम्ल कम बनता है। • पत्तियों के ऊतक मर जाते है तथा	0.20

	संश्लेषण में सहायक हैं। • कवक रोगों के नियंत्रण में सहायक है।	फूल नहीं आते है।	
मैंगनीज	• पौधों की विभिन्न वृद्धि क्रियाओं में उत्प्रेरक का कार्य करता है। • कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में सहायक है। • प्रोटीन के निर्माण में सहायक है तथा एन्जाइमों का रचनाकारी घटक है। • फॉस्फोरस एवं कैल्शियम की प्राप्यता बढ़ाकर अंकुरण एवं पकने में सहायता करता है। • नाइट्रेट के स्वांगीकरण में सहायक हैं।	• नई पत्तियों के बीच का भाग पीला पड़ जाता है। • पत्तियों पर मृत ऊतकों के धब्बे बन जाते है। • जई में 'ग्रे स्पेक', 'मटर' में मार्श स्पोट तथा 'गन्ने' में 'स्ट्रीक रोग' इसी पोषक तत्व की कमी का विशेष लक्षण है।	2.5
बोरोन	• कोशिका विभाजन एवं कॉर्टेक्स के विकास में सहायक है। • पौधों में कैल्शियम एवं पोटेशियम के अनुपात को नियन्त्रित करता है। • प्रोटीन एवं विटामिन्स के संश्लेषण में सहायक है। • परागण, प्रजनन क्रियाओं तथा बीज बनने में सहायक हैं। • पानी के शोषण को नियंत्रित करता है। • पेक्टिन, ए.टी.पी., डी.एन.ए. व आर.एन.ए. के संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं।	• अग्रिम कलिका का रंग हल्का हरा हो जाता हैं तथा आधार पर पीला पाया जाता है। • अधिक कमी से वृद्धि भागो की मृत्यु हो जाती है। • गोभी के फूल का आकार अनियमित, छोटा व फूल पर लाल भूरे धब्बे पड़ जाते है। • जड़ वाली, फसलों में 'ब्राऊन हर्ट' अर्थात् सबसे मोटे भाग पर काले धब्बे या बीच वाले भाग में पट्टियाँ पाई जाती है।	0.50
मोलिब्डेनम	• दलहनी फसलों की जड़ों में नत्रजन स्थिरीकरण करने में सहायक है। • नाइट्रेट रिडक्टेज एन्जाइम का महत्वपूर्ण भाग है। • पौधों में नाइट्रेट व अमोनियम अवकरण के लिए आवश्यक है। • पौधों में विटामिन 'ए' एवं कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण में सहायक है।	• पौधों की ऊँचाई कम हो जाती हैं एवं पीले, नत्रजन की कमी के समान, पड़ जाते है। • अधिकतर दलहनी पौधों की जड़ों में बनने वाली ग्रंथियाँ कमजोर पड़ जाती है। • फूल गोभी में 'व्हिपटेल' की तरह की रचना बन जाती है।	0.20

सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी में सुधार के उपाय

फसलों में सूक्ष्म पौषक तत्वों का उपयोग या तो पर्णीय छिड़काव द्वारा या मिट्टी में इस्तेमाल करके किया जाता है। यदि किसी मिट्टी में सूक्ष्म पौषक तत्व की कमी की पुष्टि हो जाये तो बुवाई के समय इनका उपयोग अच्छा रहता है परन्तु जहाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी खड़ी फसल में देखी जाती है तो उस अवस्था में पर्णीय छिड़काव विशेष प्रभावशाली सिद्ध होता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि इनकी सूक्ष्म मात्रा में ही आवश्यकता होती है और अन्य पोषक तत्वों से अन्तः क्रिया होती है।

सिफारिश की गई मात्रा से अधिक मात्रा प्रयोग करने पर पौधें के ऊपर विपरित प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए मोलिब्डेनम की मात्रा प्रायः 200 ग्राम प्रति हेक्टर अथवा इससे भी कम उपयोग की जाती है। सिफारिशी मात्रा से ज्यादा मात्रा में उपयोग करने से फसल नष्ट भी हो सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की मृदा एवं पर्णीय छिड़काव के लिए उर्वरक की मात्रा एवं प्रयोग करने की विधि सारणी 3 में दी गई हैं।

सारणी 3: सूक्ष्म पोषक तत्व उपयोग करने की मात्रा एवं प्रयोग करने की विधि

पोषक तत्व एवं उनके (मुख्य स्त्रोत)	तत्व प्रतिशत	मिट्टी में प्रयोग हेतु मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	छिड़काव के लिए उपयुक्त मात्रा	संस्तुति
जस्ता–जिंक सल्फेट	22	25 – सामान्य भूमि 50 – कल्लर भूमि	0.5 प्रतिशत घोलः 1 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट को 200 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें	मृदा
तांबा–कॉपर सल्फेट	25	15 – 20	0.20 प्रतिशत घोलः 0.5 ग्राम कॉपर सल्फेट को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें	मृदा
लोहा–फैरस सल्फेट	19	50 – 100	1.0 प्रतिशत घोलः 2 कि.ग्रा. फैरस सल्फेट को 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।	पर्णिय छिड़काव
मैंगनीज–मैंगनीज सल्फेट	24	45 – 50	0.5 प्रतिशत घोलः 1.5 कि.ग्रा. मैग्नीज सल्फेट को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।	पर्णीय छिड़काव
बोरोन–बोरेक्स	11	5 – 10	0.1 प्रतिशत घोलः 300 ग्राम बोरेक्स को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।	मृदा
मोलिब्डेनम–सोडियम मोलिब्डेट	39	1 – 2	0.01 प्रतिशत घोलः 30 ग्राम सोडियम मोलिब्डेट को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।	पर्णीय छिड़काव

*नोट : सूक्ष्म पौषक तत्वों के सल्फेट लवण का पर्णीय छिड़काव करते समय घोल में सूक्ष्म पौषक तत्व की आधी मात्रा के बराबर बुझा चूना मिलाकर घोल बनाना चाहिए।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक द्वारा फसलों की ऐसी प्रजातियाँ विकसित की गई है जिन्हें बिना किसी हानि के सूक्ष्म तत्वों की कमी वाली मृदा में आसानी से उगाया जा सकता हैं क्योंकि ये किस्में कम पोषक तत्व उपयोग करके भी अधिक उपज दे सकती है, सारणी 4 में कुछ मुख्य–मुख्य फसलों की प्रजातियाँ की प्रतिक्रिया दी गई है।

सारणी 4: मुख्य फसलों की सूक्ष्म पौषक तत्व अवरोधक प्रजातियाँ एवं उनकी पैदावार पर इन सूक्ष्म पोषक तत्वों का असर

तत्व	फसल	अवरोधक किस्में	कम अवरोधक किस्में	संवेदनशील किस्में
		10 प्रतिशत से कम प्रभाव	11–20 प्रतिशत प्रभाव	20 प्रतिशत से अधिक प्रभाव
जस्ता	गेहूँ	राज–1555 यू.पी. 2338	पी.बी.डबल्यु. 233, एच.डी. 4502, एम.ए.सी.एस. 2841, एच.डी. 2338	
	ड्यूरम गेहूँ	पी.बी.डब्यू.–34	डबल्यु.एच. 896	डबल्यु एच. 912
लोहा	चना	एच.आर.1	–	काबली एच. 208 सी. 235
	ज्वार	एफ. 855 एफ.एस. 92079	पी.सी.एच. 106, एस.एस. जी. 59–3, एम.एफ.एस. एच.–3	सी.एच.एस. 13
	बाजरा	एच.एच.बी. 50, एच. एच.बी. 94	एच.बी.सी.–67	–
	लौबिया	–	–	एच. 92–13, एच. 93, एच. 90–13
	धान	एच.के.आर. 228 पी.आर. 106 एच.के.आर. 120 बी.ए.एस. 370	एच.बी.सी.–19	एच.के.आर.–126 एच.के.आर.–46 जया, गोबिन्द, आई. आर.64
मैगनीज	गेहूँ	डब्ल्यु.एच. 542	पी.बी.डब्ल्यु. 343, पी.बी. डब्ल्यु. 233, डब्ल्यु.एच. 283, डब्ल्यु. एच. 896	डब्ल्यु.एच. 147, डब्ल्यु.एच. 312
	जौ	बी.एच. 87	बी.एच. 105, बी.एच. 338, बी.एच. 331ए, बी.एच. 85	बी.एच. 25, बी. एच. 75

उपरोक्त प्रतिक्रिया के आधार पर यदि फसल उगाई जाये तो सूक्ष्म तत्वों की कमी वाली मृदा में भी अवरोधक किस्में उगाकर अच्छी फसल ली जा सकती हैं संवेदनशील किस्मों में सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग अवश्य होना चाहिए अन्यथा उपज कम हो सकती है।

दानों की उपज के आधार पर बोरोन तत्व के प्रति विभिन्न फसलों को संवेदनशील एवं सहनशील भागों में बांटा गया है जिसका विवरण सारणी 5 में दिया गया है।

सारणी 5. उपज के आधार पर बोरोन तत्व के प्रति विभिन्न फसलों की संवेदनशील एवं सहनशील किस्में

फसल	सहनशील किस्में	संवेदनशील किस्में
चना	डी.एच.जी.–82–12, सी. 235, डी.एच.जी. 82–4	डी.एच.जी. 82–10, वी.जी. 203
लोबिया	डी.ए.–6, पूसा–1, बहार टार.	टी.सी.–6, डी.ए.–11
तिल	टार.टी.–54, ओ.एम.टी.16–6–3	करिश्मा–23, टी.सी.–25
सरसों	पूसा, बोल्ड, आर.एच.30, क्रान्ति	बी.आर. 40, वरूण

ऐसी भूमियों में जहाँ बोरोन की कमी है वहाँ पर सहनशील फसलों की किस्मों को ही उगाया जाए ताकि फसल की उपज पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े।

सूक्ष्म तत्वों के प्रयोग में सावधानियाँ

सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रयोग में भरपूर लाभ उठाने तथा फसलों की अधिक उपज के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए–

- सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग हमेशा मिट्टी की जाँच के आधार पर ही करना चाहिए।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग वैज्ञानिकों की सलाह पर ही करें।
- हमारी भूमियों में सभी सूक्ष्म तत्वों की इतनी कमी नहीं हैं इसलिए तत्वों के मिश्रण के प्रयोग में विशेष सावधानी रखें तथा जिस किसी तत्व विशेष की कमी हो उसी की ही पूर्ति के लिये उर्वरक प्रयोग करें।
- एक बार प्रयोग किया गया जिंक सल्फेट दो फसलों के लिये पर्याप्त होता है क्योंकि इसका प्रभाव अगली फसल तक रहता है।
- जस्ते का प्रयोग भूमि में बिजाई कर करें अन्य सूक्ष्म तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव करें।
- पत्तों पर छिड़काव के लिये पानी की सिफारिश की गई पूरी मात्रा प्रयोग करें।
- घोल में उर्वरक की सिफारिश की गई मात्रा का प्रयोग करें। उर्वरक की अधिक मात्रा का प्रयोग करने पर लाभ की बजाय हानि हो सकती है।
- पर्णीय छिड़काव में यदि सूक्ष्म पोषक तत्व का सल्फेट घोल का उपयोग किया जा रहा है तो उसमें सूक्ष्म पोषक तत्व की मात्रा से आधी मात्रा के बराबर बुझे चूने का उपयोग करना चाहिए। इससे पौधों को सल्फेट के हानिकारक प्रभाव से बचाया जा सकता है।

★★★

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर यह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

– राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त

मृदा एवं जल प्रबंधन द्वारा मरुभूमि में अधिकतम उपज

आर.के. गोयल एवं प्रवीण कुमार

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मिट्टी व पानी किसी भी फसल के उत्पादन के लिये मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं। इनमें से किसी भी तत्व के अभाव में फसल उत्पादन संभव नहीं है। समय के साथ–साथ मिट्टी की उत्पादकता में भी कमी आती है इसलिये उत्पादक भूमि व जल के उचित संरक्षण के बिना फसल उत्पादन में दीर्घकालीन स्थायित्व नहीं लाया जा सकता है। औसत वार्षिक वर्षा के आधार राजस्थान राज्य भारत के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे पीछे है। राज्य में औसत वार्षिक वर्षा 60 से.मी. होती है जो सम्पूर्ण देश की औसत वार्षिक वर्षा से आधी है। राज्य का पश्चिमी भू–भाग जो थार मरुस्थल के नाम से भी जाना जाता है वहाँ जल संकट की समस्या और भी अधिक गम्भीर हो जाती है। इस क्षेत्र के अधिकांश भू–भाग में भू–जल अत्यधिक गहरा तथा लवणीय एवं क्षारीय है। यहाँ खेती वर्ष भर पूरी तरह से वर्षा पर आधारित है। मरुभूमि में वर्षा दिवस प्रायः 10 से 15 होते हैं। वर्षा अत्यधिक कम लेकिन प्रायः तेज व अनियमित होती है। विपरीत परिस्थितियों के कारण राज्य के इस भू–भाग को प्रायः सूखे व अकाल का सामना पड़ता है। कृषि कार्यों में जल की भारी अपव्यता का मुख्य कारण कृषि की अकुशल तकनीकियाँ है। जरूरत से अधिक जल से न केवल जल हानि होती है बल्कि इससे भूमि की उत्पादकता में भी कमी आती है। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय संसाधनों के उचित संरक्षण व प्रबन्धन द्वारा ही फसल उत्पादन किया जा सकता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने पिछले कई वर्षों की शोध के द्वारा वर्षा–जल व मृदा संरक्षण की तकनीकों को और अधिक प्रभावशाली व उन्नत बनाया है। संसाधन संरक्षण व प्रबन्धन की इन तकनीकों को अपनाकर विषम परिस्थितियों में भी भरपूर फसल पैदा की जा सकती है।

समोच्च खेती

परम्परागत विधि में खेती प्रायः ढाल के समानान्तर ऊपर से नीचे की जाती है व यह तरीका मृदा व जल–क्षरण का एक मुख्य कारण है। यदि समस्त कृषि कार्य एवं बुवाई–रोपाई ढाल के अभिलम्ब दिशा में समोच्च रेखा पर किया जाये तो मृदा व जल–क्षरण को काफी हद तक कम या रोका जा सकता है। इस विधि में जुताई करते समय ढाल के विपरीत दिशा में सूक्ष्म अवरोधों का निर्माण किया जाता है जो मृदा व जल–क्षरण को रोकने में सहायक होता है। मृदा व जल संरक्षण के अतिरिक्त समोच्च खेती मृदा की उर्वरता का भी संरक्षण करती है जिससे फसलों की उपज में वृद्धि होती है।

समतलीकरण एवं मेड़बन्दी

उबड़–खाबड़ भूमि पर वर्षा–जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम होता है। ये दोनों ही स्थितियां फसल उत्पादन के लिये बहुत प्रतिकूल है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षा जल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। बहुत उबड़–खाबड़ भूमि में समतलीकरण का कार्य किश्तों में 2 से 3 साल में किया जा सकता है। ऊँचे स्थानों से मिट्टी को काट कर निचले स्थानों में जमा करके समतलीकरण का कार्य पूरा किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षा–जल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा–जल अनियंत्रित रूप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवनालिकायें विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 से 60 से.मी. ऊँची मेड़ बनाकर वर्षा–जल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है। मेड़बन्दी का मुख्य उद्देश्य खेत का पानी खेत में रहना चाहिये।

समोच्च बांधनध्वानस्पतिक अवरोध

जिन बड़े खेतों में अधिक ढलान के कारण समतलीकरण संभव नहीं होता है वहाँ ढलान के अभिलम्ब दिशा में मिट्टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षा–जल के बहाव व मृदा–क्षरण को रोका जा सकता है। सामान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60 से 70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय वर्षा मान व ढलान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते है। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवण आदि को लगाया जा सकता है। पानी के बहाव के मार्ग में इन अवरोधों के होने के कारण पानी को भूमि में रिसने के लिये अधिक समय मिलता है व खेत में एक समान नमी बनी रहती है। समोच्च अवरोधों का निर्माण कार्य हमेशा खेत के ऊँचे स्थानों से आरम्भ करके निचले स्थानों पर समाप्त किया जाता है लेकिन समोच्च अवरोध सदैव ढलान के अभिलम्ब दिशा में ही बनाये जाते हैं। समोच्च बांधन के निर्माण के लिये मिट्टी को ढलान के ऊपर के स्थान से काट कर निचले स्थान पर जमा किया जाता है। प्रत्येक वर्षा के बाद समोच्च अवरोधों का निरीक्षण किया जाना चाहिये एवं किसी भी प्रकार की दरार या धंसने की स्थिति में समोच्च बांधन की तुरंत मरम्मत कर देनी चाहिये। समस्त कृषि कार्य यथा जुताई आदि ढलान के अभिलम्ब दिशा में करने चाहिये।

समोच्च नाली

यह तकनीक प्रायः बंजर भूमि या चरागाह से उत्पादन प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाती है। इस तकनीक के तहत अधिक ढलान वाले खेत या चरागाह में ढलान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती है। नाली से निकाली गई मिट्टी ढलान की तरफ मेड़ के रुप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में इकट्ठा हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढलान की तरफ बनाई गई मेड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.30 से 0.40 मीटर गहरी व 0.60 से 0.80 मीटर चौडी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढलान वाले चरागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

नाडी

नाडी इस क्षेत्र में जल दोहन व संग्रहण की एक प्राचीन पद्धति है। नाडी में इकट्ठा किया गया जल पशुओं एवं मानव दोनों के पीने के उपयोग में लाया जाता है। अभी भी ज्यादातर ग्रामीण हिस्सों में पीने के पानी के लिए नाडी का प्रयोग किया जाता है। नाडीयों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्च वाष्पीकरण दर एवं जल–रिसाव से हानि, उच्च अवसाद जमाव दर एवं जल का दुरुपयोग है। इस समस्या के निराकरण हेतु संस्थान ने उन्नत नाड़ी के प्रारूप का विकास किया है। इसमें जल अधिग्रहण क्षेत्र में पेड़ पौधे लगाना एवं अवसाद को बहाव क्षेत्र से पहले ही रोकना है। इसके अतिरिक्त नाडी में एल.डी.पी.ई. की परत लगा कर जल रिसाव को भी कम किया जा सकता है। प्रदूषण रोकने हेतु नाडी क्षेत्र में पशुओं एवं मानवों के आवागमन पर अंकुश लगाया जा सकता है। वाष्पीकरण को कम करने के लिए छायादार वृक्षों का स्थापन काफी प्रभावशाली होता है।

उन्नत नाडी

टांका

टांका एक प्रकार का छोटा ऊपर से ढका हुआ भूमिगत खड्डा होता है इसका प्रयोग मुख्यतः पेय जल के लिये वर्षा–जल संग्रहण हेतु किया जाता है। परम्परागत तौर पर निजी टांके प्रायः घर के आंगन या चबूतरों में बनाये जाते हैं। टांके या कुण्ड के निर्माण के लिये ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिये जहां वर्षा–जल स्वतः इकट्ठा होता हो व संग्रहण के लिये प्राकृतिक रुप में पर्याप्त आगोर मिल सके। साफ, कठोर व एक समान ढाल वाले आगोर से कम जगह में ज्यादा वर्षा–जल संग्रहित किया जा सकता है। परम्परागत चौकोर या आयताकार टांकों के स्थान पर गोल, बेलनाकार टांके अधिक मजबूत होते हैं। सामान्यतः टांके 3 से 5 मीटर गहरे बनाये जाते हैं। निर्माण कार्य में चूने के स्थान पर सीमेन्ट का प्रयोग करने से टांके की आयु बढ़ जाती है। पचास हजार लीटर तक क्षमता वाले टांकों के निर्माण में 1.25 से 1.5 फीट मोटी सीमेन्ट–पत्थर की दीवार व 1 फुट मोटा सीमेन्ट–कंकरीट का तला पर्याप्त मजबूती प्रदान कर सकता है। उन्नत टांकों में वर्षा–जल के आगमन व अतिरिक्त पानी के निकास के लिये आवक व जावक का प्रावधान होता है। आवक स्थान पर बहाव के साथ आई मिट्टी को रोकने के लिये एक छोटी कुण्डी बनाई जाती है। आवक जावक स्थान पर छोटे अवांछित जानवरों के टांके में प्रवेश पर रोक के लिये उचित आकार की लोहे की जाली लगाई जाती है। आगोर से वर्षा–जल को सीधे टांके की बाहरी दीवारों में रिसने से रोकने के लिये टांके के चारों ओर 2 से 2.5 फीट चौडी सीमेन्ट–कंकरीट की एक कालर बनाई जाती है। पक्के मकानों या हवेलियों के निकट बने टांकों में भू–स्थिति आगोर के साथ–साथ छतों का पानी भी पाइपों के द्वारा टांके में डाला जा सकता है। उन्नत टांकों में संग्रहित जल की निकासी के लिये पारम्परिक रस्सी, बाल्टी के स्थान पर हैण्डपम्प लगाया जा सकता है। इससे न केवल जल की बचत होती है अपितु यह जल निकालने का एक सुरक्षित तरीका भी है।

खड़ीन

ऊपरी सतह एवं चट्टानी तल से वर्षा–जल बहाव के साथ–साथ चिकनी मिट्टी निचली सतहों पर इकट्ठी हो जाती है। ऐसे स्थानों पर यदि खेत की निकासी की तरफ मिट्टी के बांध उचित अधिप्लवन मार्ग के साथ बनाये जाए तो इन स्थानों को उपजाऊ खेतों में बदला जा सकता है। इन्हें प्रादेशिक भाषा में खड़ीन कहा जाता है। इस प्रकार की जल दोहन तकनीक एवं भू–उपयोग जैसलमेर जिले में व्यापक है। वर्षा कम होने की स्थिति में जल अधिग्रहण क्षेत्र एवं सिंचित क्षेत्र का अनुपात अधिक हो जाता है। गत तीन दशकों में पश्चिमी राजस्थान में बहुत से खड़ीन सिंचित क्षेत्र विकसित किये गये है जिससे उपज में व्यापक सुधार आया है।

खड़ीन

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ

वायु अवरोधक रक्षक पट्टियाँ वास्तव में रोपित पेड़ों और झाड़ियों के सजीव अवरोध होते हैं। ये वायु के वेग, वाष्पीकरण और मृदा–क्षरण को रोकने में सहायक होते हैं। रक्षक पट्टियाँ को वायु की सामान्य दिशा के लम्बवत पंक्तिबद्ध लगाना चाहिए। वर्ष में यदि वायु एक से अधिक सामान्य दिशा से बहती हो तो एक से अधिक रक्षक पट्टियाँ का रोपण करना चाहिए। रक्षक पट्टियाँ से अधिकतम सुरक्षा तब मिलती है जब वायु के बहने की दिशा इनके ठीक लम्बवत हो। रक्षक पट्टियाँ की चौडाई 3 से 5 पंक्तियां या अधिक हो सकती है। रक्षक पट्टियाँ जितनी अधिक ऊँची होगी उतनी अधिक दूरी तक वायु के वेग से रक्षा होगी। प्रायः वायु बहने की दिशा में 15 से 20 गुणा अवरोध की ऊँचाई के बराबर तक व वायु आने की दिशा में 5 गुणा पट्टी की ऊँचाई के बराबर की दूरी तक वायु के वेग को कम करती है। 5 पंक्तियां वाली रक्षक पट्टी के लिए मध्य पंक्ति के लिए बबूल, सिरस, नीम, शीशम व खेजडी के पेड लगाये जा सकते हैं। मध्य पंक्ति के दोनों ओर वाली पंक्तियों में कुमठ, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये। बाहरी पंक्तियों में कैर, फोग, बोरडी की झाड़ियाँ लगायी जा सकती हैं।

टिब्बा स्थिरीकरण

थार मरुस्थल में रेतीले टिब्बे बहुतायत में पाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में तेज हवाओं के चलने के साथ इन टिब्बों की रेत उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँच जाती है। यह रेत कृषि योग्य भूमि, मकान, सडकों आदि के लिये गम्भीर खतरा पैदा करती है। इसलिए इन टिब्बों का स्थिरीकरण बहुत आवश्यक है। टिब्बों का स्थिरीकरण इन पर स्थानीय वनस्पति लगाकर किया जा सकता है। टिब्बों पर वनस्पति को पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये टिब्बों के चारों ओर बाड़ लगा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त टिब्बों की ओर वायु के आने की दिशा में 5 मीटर गुणा 5 मीटर में शतरंज की बिसात के आकार में सूक्ष्म वायु अवरोध स्थापित कर देने चाहिये। सूक्ष्म वायु अवरोधों को स्थापित कर देने के लिये घासों में सेवन व अंजन धामन, झाड़ियों में कैर, फोग, बोरड़ी व आक एवं पड़ों में बबूल, कुमट, विलायती बबूल व इजरायली बबूल लगा देने चाहिये।

टिब्बा स्थिरीकरण

अंत: सस्यन

मरूक्षेत्र में प्रायः देखा गया है कि खरीफ में वर्षा होने पर बहुत मात्रा में पानी सतही बहाव से बहकर नष्ट हो जाता है तथा मृदा में उपस्थित जल, भाप द्वारा वायुमंडल में चला जाता है जिसका उपयोग पौधे नहीं कर पाते हैं। अतः इस पानी का समुचित उपयोग फसलों के साथ अंतः सह–फसली सस्यन द्वारा किया जा सकता है। इससे यदि बरसात न हो तो फसल के नष्ट होने की जोखिम से बचा जा सकता है। अंतःफसली सस्यन में विभिन्न बढ़वार व विभिन्न समय पर तैयार होने वाली फसलों का चयन किया जाता है। सतह पर फैलने वाली फसलें, मृदा एवं जल दोनों के ह्रास को काबू में करती हैं। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि सेवण घास एवं बाजरा के साथ खरीफ में मूंग, मोठ एवं ग्वार का अंतः सस्यन एकल फसलों की तुलना में ज्यादा लाभदायक सिद्ध होता है।

जैव पदार्थों का प्रयोग

जैव पदार्थों का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से मृदा की उर्वरता को बढ़ाने के लिए होता रहा है। जैव पदार्थ मृदा की संरचना एवं मृदा जल–धारण क्षमता तथा उर्वरता को बढ़ाते हैं। मरुक्षेत्रीय मृदाओं में जैव पदार्थों के उपयोग से मृदा–संरचना को सुधारा जा सकता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यूरिया एवं गोबर की खाद का प्रयोग करने से अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है। यदि 50 प्रतिशत नत्रजन की मात्रा जैव पदार्थों से पूरित की जाये तो बाजरे की 30 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है क्योंकि इससे मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार आ जाता है।

संरक्षित जुताई

बुवाई करने के लिए खेत की तैयारी नितांत आवश्यक कृषि कार्य हैं। अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिए खेत की जुताई आवश्यक होती है। इससे खेत में खड़े खरपतवार, मिट्टी में छिपे हानिकारक कीट नष्ट हो जाते है व जैव पदार्थों का भूमि में मिलाव अच्छी तरह हो जाता है। मिट्टी भुर–भुरी हो जाने से जड़ों का विकास भी अच्छी तरह से होता है व मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। संरक्षित जुताई, मृदा एवं नमी के ह्रास को रोकती है। मरुक्षेत्रीय मिट्टियाँ जो स्वभाव से बलुई होती हैं, खरीफ के मौसम में अधिक जुताई से वातावरणीय कारकों जैसे अधिक तेज हवाओं द्वारा नमी का ह्रास हो जाता है। इस दशा में संरक्षित जुताई नितांत आवश्यक है। जुताई करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि मिट्टी में कूंड ज्यादा समय तक खुले नहीं रहने चाहिए अर्थात खेत की तैयारी एवं बुवाई के बीच बहुत ही कम समय अन्तराल होना चाहिए। बुवाई के लिए अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिए स्वीप–कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि डिस्क द्वारा जुताई करके पाटा लगाने के कारण केवल डिस्क द्वारा जुताई की तुलना में 80 गुणा अधिक मृदा–क्षरण होता है।

खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते है फलस्वरूप फसलों को आवश्यक पौषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाता है। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पौषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाइयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता है।

तालाब की तलछट का प्रयोग

बलुई मृदाओं की मृदा संरचना एवं जल धारण क्षमता प्रायः कम होती है। इन मृदाओं की जल धारण क्षमता को बढ़ाने में तालाब का तलछट बहुत ही कारगर सिद्ध हुआ है। यह देखा गया है कि 76 टन प्रति हेक्टेयर की दर से तालाब का तलछट बलुई मिट्टी में 30–40 से.मी. गहराई तक देने से मिट्टी में तलछट एवं चिकनी मिट्टी का अनुपात बढ़ जाता है जिससे मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है एवं रिसाव की दर कम हो जाती है। इससे मृदा में कुल नत्रजन, खनिज नत्रजन एवं जैव कार्बन की मात्रा भी बढ़ जाती है। प्रयोगों द्वारा

यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि यदि 76 टन प्रति हैक्टर की दर से तालाब के तलछट का प्रयोग किया जाये तो बाजरा की उपज बिना तलछट प्रयोग क्षेत्र की तुलना 40–50 प्रतिशत बढ़ जाती है क्योंकि इससे मिट्टी में नत्रजन का अवशोषण एवं उपलब्धता बढ़ जाती है।

सतही पलवार

शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय–क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार से भूमि के तापमान में कमी आती है फलस्वरूप जल वाष्पन कम हो जाता है। सतही पलवार के रुप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियां, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पोलीथीन की चादरें काम में ली जा सकती है । लगभग 6 टन प्रति हेक्टेयर की दर से घास की पलवार लगाने से फसलों की उत्पादकता दुगनी की जा सकती है। घास पलवार के उपयोग के अलावा पोलीथीन पलवार भी मृदा एवं मृदा–जल ह्रास को रोकने में सहायता करता है। प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि पोलीथीन पलवार, बिना पलवार वाली भूमि से मृदा में 5.35 मिली मीटर अधिक नमी रखता है। इसमें मिट्टी की नमी पूर्णतः सुरक्षित रहती है, क्योंकि मृदा–जल उड़कर मिट्टी से बाहर नहीं जा पाता है।

जल फैलाव

इस तकनीक के तहत बाढ़ का पानी एक बड़े क्षेत्र से स्वतः ही या नाले के उद्‌गम स्थल से छोटे क्षेत्र में मोड़ दिया जाता है। इससे मृदा में नमी की वृद्धि होती है जो फसल की बढ़वार में काफी सहायक होती है। राजस्थान राज्य के जालोर जिले में सामान्यतः इस पद्धति द्वारा खेती की जाती है जिसे स्थानीय भाषा में श्रेला खेती भी कहा जाता है। इस पद्धति को भू–जल पुनर्भरण के लिए भी काम में लिया जाता है। एक बड़ी बाड़ या मेढ़ लगाकर सतही बहाव को रोककर, जल इकट्ठा होने वाली जगह की तरफ मोड़ दिया जाता है। सामान्यतः 4 से 12 हेक्टेयर विस्तार का जल 1 हेक्टेयर में विस्तारित किया जा सकता है। जल विस्तारण के लिए एक मृदा निर्मित बाँध को भी काम में लिया जा सकता है।

उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुवाई

मरुस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमें सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरुस्थल में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती हैं । फसलों की बुआई सही समय पर करनी चाहिये । ऐसा न करने से फसलों की बढवार के लिये अनुकूल अवधि कम रह जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना करना पड़ सकता है। रेतीली मिट्टियों के लिये बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

पट्टीदार सस्यन

पट्टीदार सस्यन भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्टिकोण से मरुक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। इसमें विभिन्न बढ़वार व स्वभाव वाली फसलों की निश्चित कतारों की पट्टियाँ एकांतर क्रम में खेत में बोयी जाती है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोठ की 6 कतारों की पट्टियाँ एकांतर क्रम में बोयी जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा–क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है।

पौध संख्या एवं रक्षण

शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण पौधों की संख्या सिंचित कृषि की तुलना में 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती है। यदि अधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या 20 से 30 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। पौध संख्या कम करने से घटी हुई पौध संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम करने से उत्पादन में हुई कमी को कम पौधों को ज्यादा पानी उपलब्ध रहने से उत्पादन में हुई वृद्धि द्वारा पूरा किया जा सकता है। बुवाई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। 2–3 वर्ष के अन्तराल पर जैविक खाद का प्रयोग भी फसल उत्पादन में काफी सहायक होता है।

रेतीले खेतों में कृषक भाई इन सभी कृषि तकनीकों को अपना कर अच्छी पैदावार ले सकते है। इन तकनीकों को भूमि विशेष के अनुसार एकीकृत रुप से या अलग–अलग रुप में अपनाकर शुष्क क्षेत्रों में मृदा व जल संरक्षण किया जा सकता है व फसलों की उत्पादकता में दीर्घकालिक स्थायित्व प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

★★★

टिकाऊ खेती में सूक्ष्म जीवों का महत्व

सत्य प्रकाश त्यागी, संगीता पाल, लिवलीन शुक्ला एवं अनिल कुमार सक्सेना

सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

कृषि क्षेत्र विकासशील देशों की आर्थिक विकास दर में सुधार के अलावा विश्व स्तर पर बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है आज भी हमारी लगभग 72% आबादी गाँवों में ही रहती है जो किसी न किसी रूप से खेती पर ही निर्भर है। आज हमारी खेती का स्वरूप बहुत तेजी के साथ बदल रहा है लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या एवं घटते हुए संसाधन, तेजी से हो रहा जलवायु परिवर्तन, बढ़ता शहरीकरण व उद्योगीकरण तथा भयंकर रूप लेता पर्यावरण प्रदूषण आज की एक बहुत बड़ी चुनौती है लेकिन, यह जो भी हो रहा है इसके लिए हम खुद ही जिम्मेदार हैं। 1960 के दशक में हमारा देश बढ़ती हुई जनसंख्या की उदर पूर्ति के लिए दूसरे देशों पर निर्भर था। देश में हरित क्रांति के परिणाम स्वरूप उन्नत बीज, नियमित सिंचाई के साधन, उन्नत कृषि उपकरणों, रासायनिक खादों, कीटनाशकों, फफूँदी नाशकों एवं खरपतवार नाशकों की उपलब्धता बढ़ी। इनके प्रयोग से देश का फसलोत्पादन बढ़ा, खुशहाली बढ़ी और देश अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया लेकिन, दुर्भाग्यवश किसानों में अधिक उत्पादन लेने के लिए रासायनिक खादों, कीटनाशकों, फफूँदी नाशकों एवं खरपतवार नाशकों के अत्यधिक प्रयोग करने की एक होड़ लग गई जिसके भयंकर दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं। आज हमारा समूचा वातावरण (वायु, जल एवं मृदा) बुरी तरह प्रदूषित हो गया है। इन खतरनाक रसायनों के कण वायु तथा भोजन श्रंखला के जरिये मानव स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं तथा इसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की असाध्य बीमारियों ने मानव जीवन के लिए एक बहुत बड़ा खतरा पैदा कर दिया तथा अनेकों जीवों की प्रजातियाँ लुप्त हो गई है। आज हमारी मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है ऐसी स्थिति में वातावरण सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा के लिए मृदा स्वास्थ्य एवं टिकाऊ उत्पादन एक बहुत बड़ा सवाल बन गया। आज पूरे विश्व में जैविक एवं रासायनिक खेती को लेकर एक बहुत बड़ी बहस चल रही है, बढ़ते शहरीकरण के कारण हमारी कृषि योग्य भूमि प्रतिदिन कम होती जा रही है तथा उत्पादन गिरता जा रहा है। टिकाऊ खेती आज की सबसे बड़ी जरूरत है और टिकाऊ खेती में सूक्ष्म जीवों की बहुत बड़ी भूमिका होती है इनका उचित प्रयोग करके हम विभिन्न प्रकार के रासायनिक खादों, कीटनाशकों, फफूँदी नाशकों एवं खरपतवार नाशकों की मात्रा घटा सकते हैं। यदि हम लगातार जैविक खादें (कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, फार्म यार्ड मैन्योर गोबर की खाद, खली की खाद, हरी खाद, शहरी कम्पोस्ट आदि) जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशकों, फफूँदी नाशकों एवं खरपतवार नाशकों एवं विभिन्न जैविक क्रियाओं का प्रयोग करें तो हमारी मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा उस स्तर पर पहुँच जायेगी जहां हमारी रसायनों पर निर्भरता बहुत कम हो जायेगी। आज के इस बदलते परिवेश में हम रासायनिक खादों, खरपतवार एवं कीट नाशकों के विकल्प के रूप में जैविक खादों, जैव उर्वरकों, जैव उत्पादों एवं जैविक क्रियाओं को अपनाकर फसलोत्पादन, फसलसुरक्षा एवं मृदा की उर्वराशक्ति को बरकरार रख पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते हैं। फसलोत्पादन, फसलसुरक्षा एवं मृदा की उर्वराशक्ति को बरकरार रखने के लिए विभिन्न पौषक तत्वों, गौण तत्वों, खरपतवार एवं कीट नाशकों की आवश्यकता पड़ती है तथा सूक्ष्म जीव किसी न किसी रूप में इन सभी की किसी हद तक आपूर्ति करते है।

सूक्ष्म जीव प्रकृति के सबसे बड़े संसाधन है और प्रकृति के प्रत्येक रूप (जल, थल, वायु, गर्म झरनों एवं बर्फीले पहाड़ों आदि) में विद्यमान है। जैसे एक कहावत है की कण–कण में भगवान हैं, मैं तो यही कहूँगा कि ''कण–कण में सूक्ष्म जीव भी मौजूद है''। सूक्ष्म जीव हमारे लिए दोनों ही भूमिका निभाते हैं। यह हमारे बहुत बड़े मित्र भी हैं और बहुत बड़े शत्रु भी, आज जरूरत है इनकी उचित पहचान कर इनका दोहन, शोधन, शुद्धीकरण, प्रमाणीकरण अनुरक्षण और उचित उपयोग करने की। टिकाऊ खेती के लिए मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में स्थायीपन लाने में सूक्ष्मजीव निम्न भूमिका निभाते हैं।

- **मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने में :** स्वस्थ फसल से ही स्वस्थ उत्पादन होता है तथा पौधों का स्वास्थ्य मृदा में उपस्थित पौषक तत्वों के ऊपर निर्भर करता है। बहुत से पौषक तत्व मिट्टी में यौगिक रूप में मौजूद रहते हैं तथा मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्मजीव अपनी क्रिया से इन्हें तोड़कर एकल अवयवों में बदलकर जड़ों द्वारा पौधों को उपलब्ध कराते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव मिट्टी में पाए जाने वाले कार्बनिक पदार्थों को तोड़कर उन्हें पौषक तत्वों में परिवर्तित कर पौधों को प्रदान कराते हैं और इस प्रकार मृदा कि उर्वराशक्ति का अनुरक्षण करते है।
- **नत्रजन का स्थरीकरण करने में :** मृदा में पाए जाने वाले अनेकों सहजीवी, स्वतन्त्रजीवी तथा सहबंदी जीवाणु वायुमंडलीय नत्रजन का स्थरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। इनमें सहजीवी जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में तथा कुछ पौधों की पत्तियों एवं तनों में पाई जाने वाली ग्रंथियों में सहजीवी रूप से रहकर वायुमंडल में उपस्थित नत्रजन का स्थरीकरण करते हैं। स्वतन्त्रजीवी तथा सहबंदी जीवाणु वायुमंडलीय नत्रजन का मृदा स्थरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराते है।
- **फॉस्फोरस का विलयीकरण करने में :** हमारी मृदा में फास्फेट काफी मात्रा में अघुलनशील अवस्था में पाया जाता है जिसे पौधे ग्रहण नहीं कर पाते। मृदा में उपस्थित फॉस्फोरस विलेयी सूक्ष्मजीव अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील करके पौधों को उपलब्ध कराते है, जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ती है और उत्पादन भी बढ़ता है।

विभिन्न प्रकार के उपयोगी बैक्टेरिया

एजोस्पिरिल्म

एजोटोबैक्टर

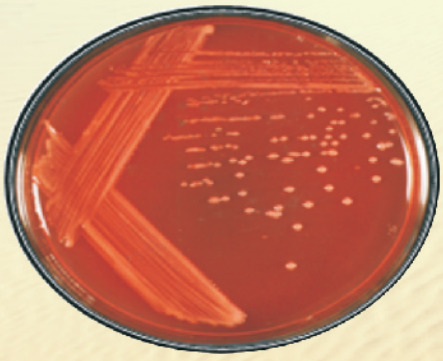

राइजोबियम

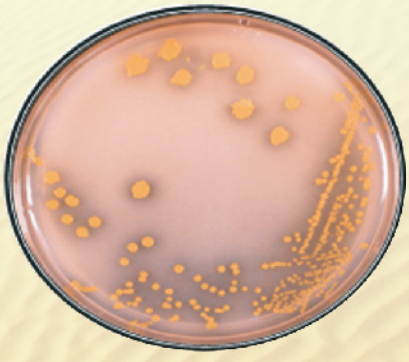

फासफोरस विलेयी

- **पौषक तत्वों के चक्रण में सहायता :** मृदा में पाए जाने वाले बहुत से सूक्ष्मजीव विशेष रूप से जीवाणु जैविक रूप से महत्वपूर्ण तत्वों जैसे नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, जिंक तथा सल्फर आदि का चक्रण करने

में अहम भूमिका निभाते हैं। इससे मृदा में पौषक तत्वों की उपलब्धता हमेशा बनी रहती है, मृदा की उर्वराशक्ति मजबूत बनी रहती है और फसलोत्पादन स्थायी बना रहता है।

विभिन्न जैव उर्वरक एवं उनकी उपयोगिता

जैव उर्वरक का नाम	उपयोगित फसलें	प्रयोग विधि	उपयोगिता	मात्रा प्रति एकड़	मूल्य प्रति पैकिट
राइजोबियम	सभी दलहनी एवं दलहनी तिलहन फसलें लेकिन प्रत्येक फसल के लिए अलग–अलग	बीज उपचार	नत्रजन 20–25 नत्रजन (दालें) 50–80 नत्रजन (चारे वाली फसलें)	200 ग्राम	20 रूपये
एजोटोबैक्टर	अनाज, सब्जियाँ व नगदी वाली फसलें	बीज एवं पौध उपचार	नत्रजन 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन/हे.	200 ग्राम	20 रूपये
एजोस्पिरिलम	ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, धान तथा गन्ना आदि फसलों के लिए	बीज एवं पौध उपचार	नत्रजन 15–20 कि.ग्रा. नत्रजन/हे.	200 ग्राम	20 रूपये
फॉस्फोरस विलेयी (माइक्रोफास)	सभी फसलों में फॉस्फोरस उपलब्ध करने के लिए	बीज एवं पौध उपचार	नत्रजन 20–30 किग्रा. फॉस्फोरस/हे.	200 ग्राम	20 रूपये
माइकोराइजा (वाम न्यूट्रीलिंक)	सभी फसलों, फूलों, बागवानी एवं वानिकी के लिए अति उपयुक्त	बिजाई के समय नर्सरी या खेत की मिट्टी में छिड़ककर या 50 ग्राम प्रति पौध एवं पेड़ की जड़ों में डालकर	नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं अन्य गौण पौषक तत्व 20–30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस/हे.	5 किग्रा.	50 रूपये/किग्रा.
नील हरित शैवाल	केवल धान की फसल के लिए	पौध रोपण के बाद पानी में छिड़ककर	नत्रजन 20–30 कि.ग्रा. नत्रजन/हे.	500 ग्राम	20 रूपये
कम्पोस्टिंग टीका	कृषिजन्य फसल अवशेषों को जल्दी सड़ाने के लिए	गड्डे में या ढ़ेर के ऊपर छिड़ककर	उत्तम गुणवत्ता वाली कम्पोस्ट बनाता है तथा उसमें नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं अन्य गौण पौषक तत्व प्रदान करना	500 ग्राम एक टन अवशेष के लिए	30 रूपये

राईजोबियम टीके के प्रयोग से उपज में प्रतिशत बढ़ोतरी

फसल का नाम	प्रतिशत बढ़ोतरी
अरहर	32
मूंग	33
चना	41
मूंगफली	49
मसूर	50
सोयाबीन	61

एजोटोबैक्टर टीके के प्रयोग से फसलोत्पादन में प्रतिशत बढ़ोतरी

फसल का नाम	प्रतिशत बढ़ोतरी
गेंहूँ	8–15
चावल	5–8
मक्का	15–20
ज्वार	15–20
आलू	10–15
गाजर	16–18
गोभी	35–40
टमाटर	5–25
कपास	7–27
गन्ना	10–25

- **कृषिजन्य जैविकीय अवशेषों का शीघ्रता से अपघटन :** हमारे देश में लगभग 3,000 मिलियन टन जैविक अपशिष्ट वार्षिक उत्पादित होता है, जिसमें मुख्य रूप से फसल अपशिष्ट, पशु बाड़े का कचरा, ग्रामीण तथा शहरी कचरा, सब्जी मंडी का अपशिष्ट, जंगलों एवं उद्योगों का कचरा आदि शामिल होता है, जिसमें फसल अवशेष लगभग 388 मिलियन टन प्रति वर्ष उत्पादित होता है। कुल फसल अवशेष का लगभग 27% गेहूँ अवशेष एवं 51% धान का अवशेष तो फिर भी पशुओं के खाने के काम आ जाता है। लेकिन धान का पुआल पशुओं के चारे के काम भी नहीं आता क्योंकि इसमें सिलिका एवं ऑगजेलिक अम्ल की मात्रा अधिक होती है और पशु इसे आसानी से नहीं पचा पाते। मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव इन जैव कार्बनिक पदार्थो के अपघटन में एक अहम भूमिका निभाते हैं और उनमें उपस्थिति हानिकारक पदार्थो को तोड़कर पौषक तत्वों के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। कम्पोस्टिंग पूर्ण रूप से एक जैविक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों द्वारा ही वायवीय दशाओं में जैविक पदार्थो का जैविक अपघटन होता है। इस प्रकार सूक्ष्म जीव कृषि जन्य अवशेषों का अपघटन कर उसकी कम्पोस्ट बनाने में, वातावरण को शुद्ध रखने में तथा मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने में सहायता करते हैं।

कृषि जन्य अवशेष को अपघटित कर शीघ्र कम्पोस्ट तैयार करने वाले जीवाणु

सेल्यूलोस	हेमीसेल्यूलोस	लिग्निन	पेक्टिन	प्रोटीन
स्यूडोमोनास	बैसिलस	स्यूडोमोनास	इर्विनिया	क्लोस्ट्रीडियम
साईटोफाया	विब्रियो	माईक्रोकाकस		प्रोटीयस
स्प्रिलियम	स्यूडोमोनास	फ्लेवोबेक्टेरियम		स्यूडोमोनास
एक्टिनोमाईसीटस	इर्विनिया	जेंथोमोनास		बैसिलस
सेल्युलोमोनास		स्ट्रेप्टोमायसिस		

हमारे संस्थान के सूक्ष्म जीव विज्ञान संभाग द्वारा निम्न फफूँदों की एक सह–व्यवस्था तैयार की है जो कृषि अवशेष को शीघ्रता से अपघटित कर कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देती हैं।

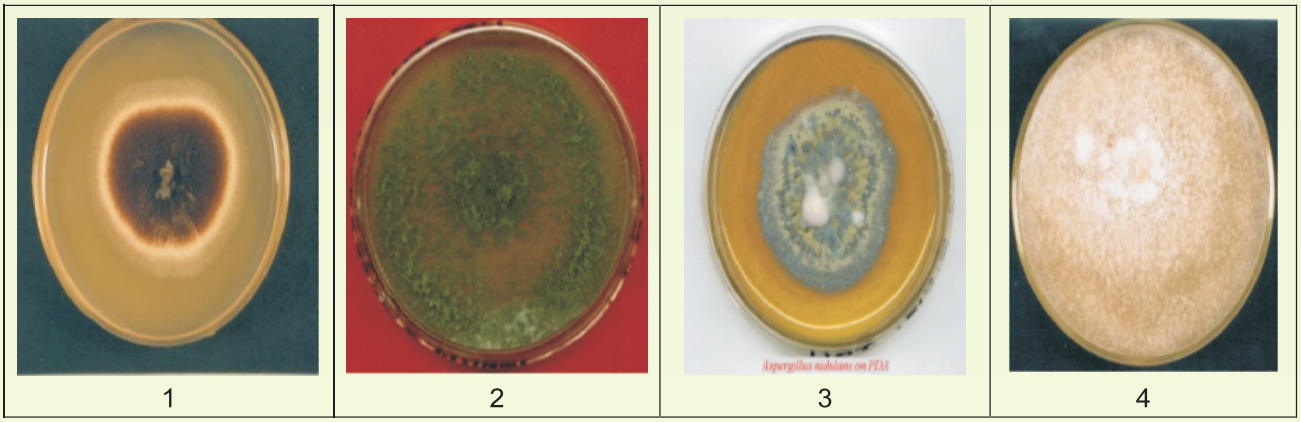

1 2 3 4

1. एस्परजिलस एवामोरी (सेल्युलोलाईटिक एवं फॉस्फोरस विलेयी फफूँदी)।
2. ट्राईकोडरमा विरिडी (सेल्युलोलाईटिक फफूँदी)।
3. एस्परजिलस निडूलेन्स (सेल्युलोलाईटिक फफूँदी)।
4. फिनेरोकीट क्राईसोस्पोरियम (लिग्नोलाईटिक फफूँदी)।

- **विषैले पदार्थों के जैविक अपघटन में :** बढ़ते शहरीकरण, उद्योगीकरण एवं कृषि के रासायनिकरण के परिणामस्वरूप प्रतिदिन भारी मात्रा में विषाक्त पदार्थो का उत्सर्जन होता है जिसके कारण हमारा समूचा वातावरण प्रदूषित हो गया है। सूक्ष्मजीवों में ऐसी शक्ति होती है कि वे इन विषाक्त पदार्थो का अपघटन कर उसे सरल यौगिकों में बदल देते है और वातावरण को शुद्ध रखने में सहायता करते हैं।

- **फसल रोग एवं कीट नियंत्रण में :** विभिन्न प्रकार के जीवाणु, कवक एवं विषाणु फसलों में बीमारी पहुँचाते हैं। इन बीमारी करने वाले सूक्ष्म जीवों एवं फसल को हानि करने वाले कीट पतंगों का सूक्ष्म जीवों से ही जैव नियंत्रण किया जाता है। जैविक नियंत्रण का मूल मन्त्र **''जीव जीवस्य भोजनम''** अर्थात जीव ही जीव का भोजन है। अतः रोग कारक सूक्ष्म जीवों को दूसरे सूक्ष्म जीवों से या उनसे निर्मित उत्पाद से नियंत्रित किया जा सकता है। अब यह साबित हो चुका है कि अनेकों जीवाणुओं में कवक विरोधी पदार्थ जैसे अमोनिया, हाईड्रोजन साईनाइड, सिडेरोफोर आदि एवं विभिन्न एंटीबायोटिक पैदा करने की क्षमता होती है जो विभिन्न कवकों की वृद्धि को रोकते है। इनके मुख्य उदाहरण है ट्राईकोडर्मा विरडी, स्यूडोमोनासफ्लोरोसेंस, बैसिलस आदि। इसी प्रकार कुछ कीड़ों को भी दूसरे कीड़ों को नियंत्रित करने के

लिए प्रयोग किया जाता है उदाहरणतः लेडिबग सरसों, गोभी आदि पर लगने वाली एफिड (चेंपा) को खाकर समाप्त कर देती है। इसी प्रकार एक जीवाणु बैसिलस थ्युरिनजेंसिस, बावेरिया बस्सिअना, मेटा राईजियम आदि विभिन्न प्रकार के कीड़ों को अपना भोजन बनाता है।

- **कृषि आधारित उद्योगों में :** अनेकों सूक्ष्म जीव अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के एंजाइम स्रावित करते हैं। ऐसे सूक्ष्म जीवों एवं ऐजाईमों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के औद्योगिक अलकोहल कार्यो जैसे डेयरी उद्योग में दूध से मक्खन, दही, पनीर आदि बनाना, अलकोहल उद्योग में बीयर व शराब बनाना, बेकरी औ चर्म उद्योग इत्यादि कार्यो में सूक्ष्म जीवों का प्रयोग किया जाता है।

- **चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिजैविक उत्पादन :** यह सत्य है कि विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ सूक्ष्म जीवों (जीवाणु, विषाणु, कवक एवं मोल्ड आदि) के द्वारा ही होती है। विभिन्न प्रकार की एंटीबायोटिक दवाएँ जैसे स्ट्रेपटोमाइसिन, टेट्रासाइक्लिन, पेनिसिलीन, केनामाईसिन एवं टेरामायिसिन आदि का निर्माण सूक्ष्म जीवों की अनेकों प्रजातियाँ जैसे एक्टिनों माईसीटस व जीवाणुओं के कुछ समूहों द्वारा किया जाता है।

- **पादप जैव प्रोद्योगिकी अपनाकर कृषि पैदावार में बढ़ोत्तरी :** आज हमारी कृषि योग्य भूमि प्रतिदिन कम होती है, मृदा की उत्पादकता निरन्तर गिरती जा रही है। तथा कृषि उत्पादन में आई स्थिरता एवं गिरावट बहुत चिंता का कारण है। प्रतिपल बढ़ती हुई जनसंख्या की उदरपूर्ति के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाना आज कृषि वैज्ञानिकों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। पादप जैव प्रौद्योगिकी तकनीकियाँ आशा की एक नई किरण हैं जिनके द्वारा किसी भी जीव के अनुवांशिक गुणों को पौधों में प्रत्यारोपण करके उन्नतशील फसलों का विकास किया जा रहा है। इन तकनीकों को अपनाकर ऐसे पौधों का विकास किया जा रहा हैं जिन्हें खाते ही कीड़ें स्वतः मर जाते है और हमें किसी कीटनाशी की जरूरत नहीं पड़ती है। बेसिलस थुरिंजीएनसीस नाकम बैक्टेरिया से बीटाजींस निकालकर पौधों में स्थानान्त्रित करके कपास, बैगन, धान एवं टमाटर आदि की रोग एवं कीट प्रतिरोधी पेजातियाँ विकसित की जा रही है। जिन पर हमें किसी कीटनाशी व खरपतवारनाशी की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी।

- **अजैविक तनावों के प्रति सहनशीलता बढ़ाना :** जलवायु परिवर्तन एवं भौगोलिक दशाओं के कारण भूमंडल पर बहुत से तनाव पैदा हो जाते है जैस अम्लीय और क्षारीय तनाव, नमी का तनाव, ठंडा और गर्म वातावरण का तनाव, पानी एवं सूखा का तनाव आदि। ऐसे वातावरण में या तो हमारी फसले उग ही नही पाती और यदि उग भी आती है तो ठीक से पनप नहीं पाती और इस प्रकार फसलोत्पादन अत्याधिक प्रभावित होता हैं अनेकों सूक्ष्म जीवों की ऐसी प्रजातियाँ हैं जो इन तनावों के प्रति सहनशील होती हैं जिन्हें प्रयोग करके हम उन दशाओं में भी फसल उगा सकते है।

निष्कर्ष : सूक्ष्मजीव कहने को सूक्ष्म होते है। लेकिन ये काम बहुत बड़े–बड़े करते हैं। ये विनाशकारी भी होते है और लाभकारी भी होते है। विनाशकारी रूप में ये सभी जीवों (मानव, वनस्पति, पशु, पक्षी आदि) में विभिन्न प्रकार की बीमारियों के जनक है, तो उन बीमारियों के नियंत्रण करने में इनका लाभकारी रूप दिखाई देता है क्योंकि जीवन रक्षक दवाईयों के निर्माण भी इन्हीं सूक्ष्म जीवों की विभिन्न प्रजातियों द्वारा होता है। फसलों की बर्बादी (कटाई से पूर्व कटाई के बाद एवं भण्डारण) में इनका विनाशकारी रूप साफ दिखाई देता है। फलों एवं सब्जियों का सड़ना, दुग्ध पदार्थो का खराब होना तथा अनाज के गोदामों में अनाज का सड़ना आदि में इनकी भूमिका होती है। दूसरी ओर सूक्ष्मजीव बहुत अधिक लाभकारी होते हैं, ये डेयरी उद्योग, चमड़ा उद्योग, फार्मा उद्योग, कृषि उद्योग, शराब व बीयर उद्योग तथा बेकरी उद्योग आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मृदा की उर्वरकता, फसल सुरक्षा एवं फसलोत्पादन में स्थायित्व लाने में सूक्ष्मजीवों की भूमिका होती है। जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशियों एवं जैव प्रोद्योगिकी के रूप में सूक्ष्मजीव मृदा की उर्वराशक्ति की सुरक्षा, फसल एवं खाद्य सुरक्षा के साथ पर्यावरण

सुरक्षा में भी अपना एक अनूठा योगदान दे रहे हैं। ये वायुमंडल में उपस्थित नत्रजन का स्थरीकरण करने, सूक्ष्म एवं स्थूल पौषक तत्वों को जुटाने, अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील कर उनकी दक्षता बढ़ाते है जिससे पौधों के लिए उनकी उपलब्धता बढ़ जाती है। इस प्रकार ये सूक्ष्मजीव मिट्टी की दीर्घकालिक उर्वरता और स्थिरता के अनुरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज विभिन्न फसलें उगाने में मिट्टी से जो पौषक तत्व फसलों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं तथा उनकी पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरक दिये जाते हैं उसके बीच दस लाख टन का अन्तर है यानिकी हम प्रत्येक वर्ष दस लाख टन पौषक तत्वों की कमी अपनी मृदा में कर रहे हैं। लागत और रासायनिक उर्वरकों के पर्यावरणीय प्रभाव दोनों के ही संदर्भ में यदि देखे तो रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता ठीक नहीं। इन पर आने वाले लागत की वजह से लम्बे समय तक इन पर निर्भर रहना व्यवहार्य रणनीति नहीं है क्योंकि रासायनिक उर्वरक संयंत्रों की स्थापना और उत्पादन को बनाए रखने में घरेलू संसाधनों और विदेशी मुद्रा दोनों की अत्यधिक हानि होती है। इस संदर्भ में मिट्टी की उत्पादकता व प्रति इकाई क्षेत्र की अन्न उत्पादकता बढ़ाने के लिए जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशकों, जैविक खाद को एवं जैव प्रोद्योगिकी अपनाना एक व्यवहार्य विकल्प होगा। अब उत्पादन बढ़ाने के लिए आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों (जीनोमिक फसलें) पर परीक्षण किए जा रहे हैं जिसमें बेसिलस थुरिंजीएनसीस नामक बैक्टेरिया की अहम् भूमिका होती है। यह स्पष्ट है कि टिकाऊ खेती के लिए स्वस्थ मृदा, स्वस्थ फसल सुरक्षा, स्वस्थ वातावरण एवं अधिक फसल उत्पादन देने वाली प्रजातियों की जरूरत है और इन सभी जरूरतों को पूरा करने में जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशकों, जैविक खाद को एवं जैव प्रोद्योगिकी के रूप में सूक्ष्मजीव अपनी अहम् भूमिका निभा रहे है। फसलोत्पादन, फसल सुरक्षा एवं मृदा की उर्वराशक्ति को बरकरार रखने के लिए विभिन्न पौषक तत्वों, गौण तत्वों, खरपतवार एवं कीट नाशकों की आवश्यकता पड़ती है तथा सूक्ष्म जीव किसी न किसी रूप में इन सभी की किसी हद तक आपूर्ति करते हैं।

★★★

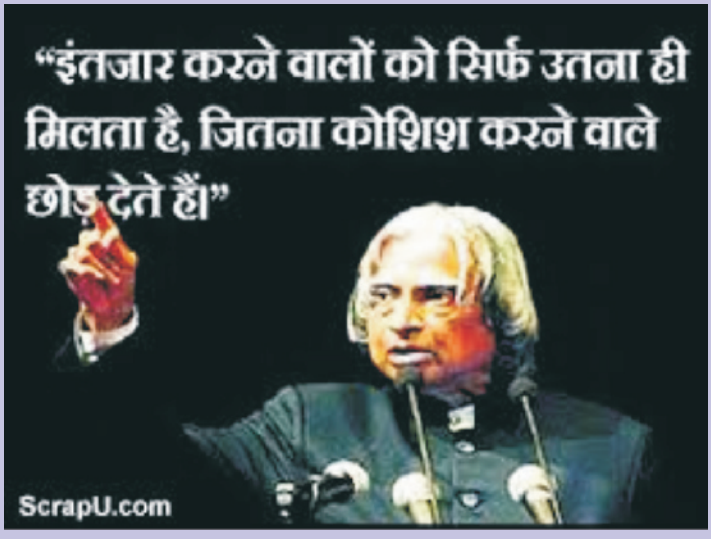

शुष्क क्षेत्रों में अधिक उपज हेतु समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन

एस.पी.एस. तँवर एवं राम नारायण कुमावत
केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर

राजस्थान में समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों के प्रचलन के पूर्व हमारे देश की खेती कार्बनिक खादों से होती थी। 60 के दशक के बाद आई हरित क्रान्ति के बाद देश में उर्वरकों का प्रयोग खेती में अधिक होने लगा तथा कार्बनिक खादों का प्रचलन कम होता गया जिसके कारण मृदा में जैविक पदार्थ की कमी होती गई एवं उसकी उर्वरा शक्ति कम होती गई। मिट्टी की गिरती उर्वरता के कारण उत्पादन में बढ़ोतरी कर पाना बड़ी समस्या है। केन्द्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है कि रसायनिक खाद और कृत्रिम कीटनाशियों के अंधा–धुंध उपयोग से न सिर्फ पर्यावरण का नुकसान हुआ है बल्कि मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। केवल यूरिया एवं लोहा डी.ए.पी. के अत्यधिक उपयोग के कारण देश के विभिन्न हिस्सों में सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमी हो गई है। जस्ता, लोहा, बोरॉन और मैग्नीज जैसे खनिजों की कमी वाला क्षेत्र पहले से ही काफी व्यापक है। तांबे एवं मोलिबिडनम की कमी भी देश के कई जिलों में देखने को मिल रही है। उर्वरकों एवं कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से कृषि उत्पादों की गुणवता प्रभावित हुई है और मानव शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ा है। राजस्थान क्षेत्र की अधिकतर भूमियाँ रेतीली हैं, जिनमें पहले से ही जैविक पदार्थ और नाइट्रोजन की कमी के कारण उर्वरा शक्ति बहुत ही कम है। इस प्रकार की मिट्टियों में रसायनिक उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मिट्टी में लवणता एवं क्षारीयता की समस्या उत्पन्न होने लगती जिसके कारण भी फसल उत्पादन प्रभावित होता है। देश के उत्तर–पश्चिमी राज्यों में मिट्टी के क्षारीय होने से फसल के लिए आवश्यक पौषक तत्वों की उपलब्धता में कमी देखने को मिल रही है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए समेकित पौषक तत्व प्रबंधन (आईएनएम) को बढ़ावा देना सही कदम है। हमें वाकई में पौषक तत्वों के सभी स्त्रोतों जैसे रासायनिक, कार्बनिक एवं जैविक खाद एवं उर्वरकों के उपयोग द्वारा मौजूदा आईएनएम को विभिन्न फसलों के लिए अपनाने की आवश्यकता है।

मृदा समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन समन्वित रूप से कार्बनिक, अकार्बनिक और जैविक घटकों के सभी संभव स्त्रोतों से संयुक्त अनुकूलन के माध्यम से मृदा की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए एक मानक स्तर पर मिट्टी की उर्वरता और संयुक्त पौषक तत्वों की आपूर्ति का बनाये रखने को संदर्भित करता है। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा प्रायः समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन की सिफारिश की जाती है। समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन का अभिप्राय फसलों में पौषक तत्वों की आपूर्ति विभिन्न स्त्रोतों यथा जैविक खाद, रासायनिक उर्वरकों, जैव उर्वरकों, हरी खाद, खलियों आदि को एक निश्चित अनुपात में देने से है। हमारे यहाँ मुख्य रूप से गोबर की खाद, मींगनी की खाद, केंचुए की खाद, कम्पोस्ट की खाद को जैविक खाद के रूप में काम में लेते है। हरी खाद के लिए वैसे तो हमारे यहाँ सिफारिश नहीं हैं फिर भी जहाँ पर सिंचाई की उपलब्धता है वहाँ पर लोबिया, मूँग तथा ग्वार की फसलें हरी खाद के रूप में उगाई जा सकती है। जैव उर्वरकों में राइजोबियम, अजोटोबेक्टर, अजोस्पाइरियम एवं पी.एस.बी. शामिल है। रासायनिक उर्वरकों में मुख्य रूप से यूरिया, डी.ए.पी. तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश है। कहीं–कहीं पर सल्फर तथा अन्य सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति के लिये जिप्सम, जिंक सल्फेट, आइरन सल्फेट आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

समन्वित पौषक तत्व प्रणाली के मुख्य घटक

- गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, मींगनी की खाद, पोल्ट्री खाद आदि।
- फसल अवशेष।
- हरी खाद।
- जैव उर्वरक
- रासायनिक खाद।

शुष्क क्षेत्रों में पशुधन की संख्या अधिक है जिसके कारण प्रथम समूह के कार्बनिक स्त्रोतों की उपलब्धता अधिक है किन्तु द्वितीय समूह के अवसर कम हो जाते है।

सड़ी हुई कार्बनिक खाद के उपयोग से लगभग सभी पौषक तत्वों की मृदा में उपलब्धता बढ़ती है। साथ ही इससे मृदाओं की भौतिक व रासायनिक दशाओं में सुधार होता है। इससे मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है, सूक्ष्म जीवाणुओं को भोजन उपलब्ध होने से उनकी गतिविधियाँ बढ़ती है व पी.एच. मान भी तटस्थ स्तर के करीब आ जाता है। कार्बनिक खादों का जिस वर्ष फसलों में प्रयोग किया जाता है उस वर्ष सिर्फ 30% नत्रजन ही फसल को उपलब्ध हो पाती है व बाकी मात्रा धीरे–धीरे फसलों को आगामी वर्षो तक मिलती रहती है। विभिन्न स्त्रोतों में उपलब्ध पौषक तत्वों की मात्रा सारणी–1 में दी गयी है। किन्तु उचित रख–रखाव के अभाव में बहुत से पौषक तत्व समाप्त हो जाते है। इन्हें संरक्षित करने हेतु सभी अपशिष्टो की कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट भी बना सकते है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि निम्नवर्णित है :–

सारणी 1. जैविक अपशिष्टों में औसत पौषक तत्व

जैविक अपशिष्ट	नाइट्रोजन (%)	फॉस्फेट (%)	पोटाश (%)
देशी खाद (एफ.वाई.एम.)	0.5–1.5	0.1–0.2	0.5–0.6
कम्पोस्ट (ग्रामीण)	0.5–1.0	0.2	0.5
वर्मीकम्पोस्ट	0.5–1.6	0.19–1.02	0.15–0.73
हरी खाद (औसत)	0.5–0.7	0.1–0.2	0.6–0.8
ढ़ैचा	0.6	–	–
सण	0.8	0.1	0.5
चँवला	0.7	0.1–0.2	0.6

वर्मीकम्पोस्ट

केंचुओं द्वारा कृषि अपशिष्ट का कम्पोस्ट में परिवर्तन 'वर्मी कम्पोस्ट' कहलाता है। इसमें विभिन्न पौषक तत्वों के अलावा हार्मोन, एन्जाइम व ह्यूमिक अम्ल होते हैं जो पौधों की बढ़वार में सहायक होते हैं। केंचुओं की खाद से खेते में हुयूमस की वृद्धि के कारण वर्षा की बूंदों का आघात सहने की क्षमता साधारण मृदा की अपेक्षा अधिक होती है, अतः मृदा क्षरण कम होता है।

केंचुए की लगभग 300 प्रजातियाँ पाई जाती है जिसमें आइसेनिया फोएटिडा प्रजाती को वर्मी कम्पोस्ट बनाने में सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु छायादार स्थल चुने, जहाँ पानी का भराव न हो 20′X3–4′X1–1.5′ आकार की क्यारियाँ बनाये या ईंट से सतह के ऊपर संरचना बनाएँ, सबसे नीचे मोटे अपशिष्ट की (कड़ब, सरसों अपशिष्ट आदि) 5–7.5 से.मी. तह (24 घंटे पूर्व भिगोई हुई) बिछाएं। इसके ऊपर 10 से.मी. कचरे की तह बनाकर पानी से नम करें। अब गोबर की 5 से.मी. तह समान रूप से बिछाऐं। अब प्रति वर्गमीटर के लिए केंचुओं की संख्या 1000 रखे। केंचुएँ अलग–अलग तह में विभाजित करे। इस सतह को मिट्टी, नीम की पत्तियों एवं राख के मिश्रण से ढ़कें। यह सतह पौषक तत्वों को स्थिर रखेगी। अब इन क्रियाओं को क्यारियाँ भरने तक दोहराएँ। अब इस ढ़ेर को जूट या टाट से ढ़क दें गर्मी में प्रतिदिन व सर्दी में 2–3 दिन में एक बार पानी देकर उचित नमी रखें। प्रति माह मिश्रण को पलटे अपशिष्ट की किस्म के अनुसार 75–90 दिन में वर्मी कम्पोस्ट तैयार हो जाता है। केंचुएँ पुनः खाद बनाने हेतु काम में लें।

फसल अवशेष

अधिक पशुधन होने से खेत में डालने हेतु फसल अवशेष प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होते किन्तु कुछ फसलें जैसे तारामीरा, सरसों, कपास आदि के अवशेष व अधिक पत्तेदार फसलों के अवशेष काम में लिए जा सकते

है। यह उचित मात्रा में नमी प्राप्त होने पर ही सड़ पाते है। जिन अवशेषों में कार्बन तथा नत्रजन अनुपात विस्तृत होता है उनमें घुलनशील नत्रजन का स्थरीकरण हो जाता है, जिससे पौधों में नत्रजन की उपलब्धता कम हो जाती है। अधिकतम् नत्रजन पौधों को 25–30 दिन तक स्थायीकृत होती है। यदि इस समय छोड़कर बुवाई की जाए तो इस फसल के अलावा अगली फसल को भी फायदा होगा।

हरी खाद

हरी खाद के रूप में मुख्यतः ढ़ैचा लोबीया एवं ग्वार की फसल ली जाती है। इनमें ढ़ेंचा का प्रयोग क्षारीय मृदा की भौतिक अवस्था सुधारने के रूप में प्रयोग हो रहा है किन्तु इसके साथ–साथ यह फसल पौषक तत्व भी उपलब्ध कराती है। क्षारीय क्षेत्रों में जहाँ सिर्फ रबी में ही निम्न गुणवत्ता वाले पानी के प्रयोग से फसल ली जा रही है। खरीफ में 45 दिन के लिए ढ़ेंचा की फसल ली जा सकती है। तत्पश्चात इसे जमीन में मिला दें। अन्य क्षेत्रों में लोबिया व ग्वार की फसल हरी खाद के रूप में ली जा सकती है, लेकिन हरी खाद का प्रयोग तभी लाभकारी है जब उसे गलने के लिए भूमि में पर्याप्त नमी उपलब्ध हो।

जैव उर्वरक

मृदा के स्वास्थ्य का आंकलन उसमें उपलब्ध जीवाणुओं की मात्रा पर निर्भर करती है। जैविक प्रक्रियाओं के कारण ही मृदा में पौषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित होती है। जीवाणु वायु मण्डल से नत्रजन का स्थिरीकरण करते हैं एवं अघुलनशील पौषक तत्वों फॉस्फोरस व सल्फर को घुलनशील बनाते है। साथ ही जैव पदार्थो को सड़ा–गलाकर उनसे पौधों को पौषक तत्व उपलब्ध करवाते है। नत्रजन स्थरीकरण दो प्रकार के जीवाणुओं द्वारा किया जाता है प्रथम सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा जिनका शुष्क जलवायु में औसत स्थिरीकरण 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है जो अनुकूल परिस्थितियों व बाहर से उनकी संख्या बढ़ाने पर 15 कि.ग्रा. तक नत्रजन स्थरीकरण कर सकते है। इनमें एजेटोबैक्टर व एजोस्पाइरीलियम है। बाजरा के बीजों का एजोस्पाइरीलियम के जैव उर्वरक से उपचार करने पर 10–15% तक उपज में वृद्धि हो सकती है।

प्रकृति में नत्रजन के स्थरीकरण का मुख्य स्त्रोत दलहन राईजोबियम सहचर्य है। ये सामान्यतः 15–20 किग्रा. नत्रजन का स्थरीकरण प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष करते है। इन सभी जीवाणुओं की मृदा में उपलब्धता बढ़ाने के लिए इन्हें बाहर से डाला जाता है जिसे जैव उर्वरक कहते है। यह मुख्यतः बीजोपचार के द्वारा दिया जाता है। जिससे अंकुरण के समय ये जीवाणु पौधों की जड़ों में उनके आस–पास कार्य करते है। जैव उर्वरकों से अच्छे परिणाम लेने के लिए स्थान विशेष के लिए उपयुक्त प्रभेदों का चयन करें व काम में लेने से पहले इसकी गुणवत्ता सुनिश्चित करें। विभिन्न फसलों के लिए विभिन्न जैव उर्वरक होते है इसलिए हर फसल के लिए उसके अनुकूल जैव उर्वरक ही उपयोग करें (सारणी–2)।

सारणी–2 फसलों के अनुकूल जैव उर्वरक

जीवाणु समूह	फसल
मटर समूह (Rhizobium leguminesarus bv.viceae)	मटर, मसूर, फैबा
सेम समूह (Rhizobium leguminesarus b.v. phaseali)	राजमा, सेम
बरसीम समूह (Rhizobium leguminesarus b.v. trifoli)	बरसीम
रिजका (Rhizobium meliloti)	रिजका
चना समूह (Rhizobium spp.)	चना

सोयाबीन समूह (Bradyrhizobium japonicum)	सोयाबीन
चँवला समूह (Bradyrhizobium spp.)	चँवला, अरहर, मूँग, मूँगफली, कुलथी, ग्वार
लासोनिया समूह (Rhizobium spp.)	ढ़ेंचा, सूबबूल, खेजड़ी
एजोस्पाइरीलम	बाजरा, अन्य अनाज वाली फसलें एवं सब्जियाँ
फास्फेट विलायक	सभी फसले एवं मृदाएँ

उर्वरकों का अन्य स्त्रोतों के साथ समन्वित उपयोग

संतुलित उर्वरक प्रयोग से तात्पर्य है कि पौषक तत्वों की आपूर्ति विभिन्न स्त्रोतों जैसे रासायनिक खाद, कार्बनिक खाद एवं जैविक खाद से समन्वित तरीके द्वारा संतुलित मात्रा में प्रयोग करना। रासायनिक उर्वरकों का कार्बनिक व जैविक उर्वरक के समायोजन से उचित उत्पाद, उचित मात्रा व उचित समय पर फसल को उपलब्ध रहते है जिससे उर्वरक उपयोग क्षमता में वृद्धि एवं पौषक तत्वों की हानि कम होती है। सतत् अनुसंधान द्वारा बहुत सी फसलों एवं चक्रों के लिए समेकित पौषक तत्व प्रणाली विकसित की गई है। बाजरा में 80 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर के स्थान पर 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन + 2.5 टन गोबर की खाद डालने पर टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार जिन क्षेत्रों में कम या बिल्कुल ही नत्रजन नहीं दे रहे वहाँ एजोस्पाइरीलम द्वारा बीजोपचार करने पर 10–15% तक उपज में वृद्धि हुई। शुष्क क्षेत्रों के विभिन्न फसल चक्रों में पौषक तत्वों की आधी–आधी मात्रा देशी खाद व उर्वरकों से देने पर अधिकतम उपज व लाभ प्राप्त हुआ। राईजोबियम व फास्फेट विलायक जीवाणुओं के उपयोग से विभिन्न दलहनी फसलों में उत्पादन बढ़ा। काजरी द्वारा उत्पादित बायोफास नामक फॉस्फोरस घोलक जैविक खाद के प्रयोग से विभिन्न फसलों का उत्पादन 10–17% तक बढ़ा और मरू खाद फसलों को अनुपलब्ध फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध कराता है जिससे पौधों की जड़ों का अधिक विकास होता है और पौधों को अधिक नमी एवं पौषक तत्व मिलने से उनकी उपज में वृद्धि होती है।

समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता

- मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए मृदा में पौधों के लिए आवश्यक पौषक तत्वों की उपलब्धता मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं द्वारा निर्धारित होती है। मृदा की इन तीनों क्रियाओं में सामंजस्य बैठाने के लिए समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन आवश्यक है।
- पौधों को सतुलित मात्रा में पौषक तत्वों की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिये प्रायः जैविक खादों में पौधों के लिए आवश्यक सभी तत्व उपलब्ध होते है परन्तु इनमें से पौषक तत्व कम मात्रा में पाये जाते है साथ में जैव उर्वरक केवल कुछ ही तत्व (नत्रजन, फॉस्फोरस) की ही आपूर्ति करते है। इसलिये पौधों के लिए आवश्यक पौषक तत्वों की सम्पूर्ण मात्रा देने के लिए समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन जरूरी है।
- मृदा में जल धारण क्षमता तत्व जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने के लिए भी समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन जरूरी है।
- दीर्घकाल तक टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए।
- मृदाक्षरण एवं लवणता/क्षारीयता को कम करने के लिए।

लाभ

- मिट्टी में पौषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।
- पौषक तत्वों की आपूर्ति के साथ फसल के पौषक तत्व मांग तथा आपूर्ति में तालमेल बिठाना।

- फसलों को संतुलित पोषण प्रदान करता है और पौषक तत्वों की कमियों और पोषण असंतुलन से उत्पन्न विरोधी प्रभाव को कम करता है।
- मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और मिट्टी के जैविक काम–काज को बनाए रखती है।
- जमीन और सतह जल निकायों के लिए और वातावरण के लिए पौषक तत्व नुकसान को कम करता है, कार्बन जब्ती बढ़ावा देने के साथ–साथ मिट्टी, पानी और पारिस्थितिकी तंत्र की गिरावट को कम करता है।

सारणी 3. विभिन्न फसलों में समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन

नाम फसल	पौषक तत्वों की आवश्यकता (कि.ग्रा/हे.)			विभिन्न फसलों में समन्वित पौषक तत्व प्रबंधन
	नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	
जीरा सिफरिश	30	20	15	एक टन तुम्बा की खली + 50% सिफरिश उर्वरकों की मात्रा अथवा 5 टन गोबर की खाद + 50% प्रस्तावित उर्वरकों की मात्रा
गेहूँ	120	40	25	50% नत्रजन जैविक खाद द्वारा + 50% नत्रजन रासायनिक उर्वरकों द्वारा + बची हुई फॉस्फोरस तथा पोटाश रासायनिक उर्वरकों द्वारा
रायडा	60	40	0	प्रस्तावित मात्रा की 25% रासायनिक उर्वरकों से + 25% वर्मी कम्पोस्ट से तथा जैव उर्वरकों राइजोबियम + पी.एस.बी. (0.60 कि.ग्रा./हे.)
चना	20	40	0	प्रस्तावित मात्रा की 75% रासायनिक उर्वरकों से + जैव उर्वरकों राइजोबियम + पी.एस.बी. (0.25 कि.ग्रा./10 किलो बीज)
ग्वार	20	30	0	गोबर की खाद 2.50 टन/हे. + (10 किलो नत्रजन तथा 25 फॉस्फोरस रासायनिक उर्वरकों से)
मूँग	15	30	0	प्रस्तावित मात्रा की 25% रासायनिक उर्वरकों से + 2.50 टन गोबर की खाद + जैव उर्वरकों राइजोबियम + पी.एस.बी. (0.60 कि.ग्रा/हे.)
मोंठ	20	30	0	प्रस्तावित मात्रा की 25% रासायनिक उर्वरकों से + 2.50 टन गोबर की खाद + जैव उर्वरकों राइजोबियम + पी.एस.बी. (0.60 कि.ग्रा/हे.)
बाजरा	40	30	0	प्रस्तावित मात्रा 50% रासायनिक उर्वरकों से + सिफरिश मात्रा की 50% गोबर की खाद से
अमेरिकन कपास	75	35	0	50% नत्रजन जैविक खाद द्वारा + 50% नत्रजन रासायनिक उर्वरकों द्वारा + बची हुई फॉस्फोरस तथा पोटाश रासायनिक उर्वरकों द्वारा
अरण्डी	80	40	0	प्रस्तावित मात्रा का 75% रासायनिक उर्वरकों से + 5 टन गोबर की खाद से
मूँगफली	20	60	0	प्रस्तावित मात्रा का 50% रासायनिक उर्वरकों से + 8 टन गोबर की खाद से
तिल	40	25	0	50% नत्रजन जैविक खाद द्वारा + 50% नत्रजन रासायनिक उर्वरकों द्वारा

★★★

शुष्क क्षेत्रों में वैकल्पिक भूमि-उपयोग द्वारा मृदा प्रबंधन

महेश कुमार गौड़

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

किसी भी देश या क्षेत्र की आजीविका के साधन, पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा के लिए मृदा का सम्पोषणीय प्रबन्धन होना आवश्यक हैं। सतत् रूप से बढ़ रही जनसंख्या की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप, अन्य संसाधनों की भाँती मृदा पर भी प्रभाव पड़ा हैं और कृषि उत्पादन में जहाँ स्थिरता आई हैं, वहीं संसाधनों का अवनयन भी हुआ हैं। भविष्य में उच्च उत्पादकता की दर को बनाये रखने और कम से कम पर्यावरणीय ह्रास के लिए मृदा की गुणवत्ता का समय–समय पर परीक्षण कर इसके प्रबन्धन की समुचित रणनीति बनाने की आवश्यकता हैं। खाद्यान्न उत्पादन से अपेक्षित आय में वृद्धि नहीं होने से किसानों के लिए मजबूरी में ही यह अनिवार्य हो गया है कि वे अब भूमि उपयोग के अन्य रास्तों की तलाश करें जिससे फसलों के वैविध्यकरण से अन्य स्त्रोतों से आय प्राप्त हो सकें। किसान, यह सब जलवायवीय और मृदायी सहसम्बन्ध को दृष्टि में रखकर गैर–परम्परागत फसलों के माध्यम से ही प्राप्त कर सकते हैं।

इन क्षेत्रों में सतत् कृषि उत्पादन और आर्थिक स्थिरता के लिए जल और मृदा का प्रबंधन कुशलतापूर्वक किया जाना अत्यावश्यक हैं। इसके लिए एकीकृत प्रयासों द्वारा, मृदा की संरचना आधारित वैकल्पिक भूमि–उपयोग से शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों की पारिस्थितिक प्रणालियों का कुशलता से संरक्षण किया जा सकता हैं। इन प्रयासों में आपदा प्रबंधन के घटक जैसे सूखा, अकाल और बाढ़, भूजल पुनर्भरण, विविध कृषि और जैव विविधता के संरक्षण और सततता विरासत में प्राप्त हैं। प्रदेश के शुष्क पश्चिमी भाग में कृषि को स्थिरता प्रदान करने के साथ–साथ मरूस्थलीकरण एवं पारिस्थितिकी ह्रास को रोकने के लिए कृषि वानिकी तथा वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धतियों की आवश्यकता हैं जिससे पर्यावरण के किसी भी स्तर के पारिस्थितिक पदानुक्रम की गुणवत्ता में बिना गिरावट आये, भूमि की अधिकतम संभावित उपज क्षमता के स्तर को न केवल प्राप्त किया जा सकता है बल्कि दीर्घावधि तक उसे बनाया भी रखा जा सकता हैं।

परिचय

पश्चिमी राजस्थान का उष्ण शुष्क क्षेत्र राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 61% क्षेत्रफल पर विस्तृत हैं और राज्य की लगभग 39.51% जनसंख्या यहाँ निवास करती हैं। यहाँ की कृषि सदैव *''मानसून का जुआ''* रही हैं। मानसून की अनियमितता, अनिश्चितता, असमानता,एवं अपूर्णता (100–450 मिमी/वर्ष, जिसमें से लगभग 90% जुलाई से सितम्बर में) हमेशा से ही क्षेत्र की कृषि को प्रभावित करती रही हैं। प्रकृति के प्रकोप जैसे उच्च तापमान (गर्मी में अक्सर 50° सेल्सियस से अधिक और सर्दी में –6° सेल्सियस से भी कम), उच्च उष्ण और तीव्रता से बहने वाली धूलभरी हवायें (>30 किमी/घंटा और कभी–कभी 100 किमी/घंटा), उच्च वाष्पोत्सर्जन दर (1500–2000 मि.मी./वर्ष), अनुपयुक्त भूमिगत पेयजल, सिंचाई के लिए भूमिगत जल का अभाव अथवा अनुपयुक्तता, इत्यादि के कारण शुष्क क्षेत्रों में खेती एक जोखिम भरा और अस्थिर कार्य रहा हैं। सूखा और अकाल, जिसकी संभावना 50 से 70 प्रतिशत तक होती है, इस क्षेत्र में कृषि का एक प्रमुख निर्धारक घटक है और सदैव रहेगा। पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर अलग से वर्षा प्रवणता हैं जो शुष्क पश्चिमी मैदान में सबसे अच्छी तरह परिलक्षित होती हैं जहाँ औसत वार्षिक वर्षा में काफी भिन्नता मिलती हैं, जैसे जैसलमेर के पश्चिमोत्तर भाग में 100 मिमी से जोधपुर के पूर्वोत्तर भाग में 456 मि.मी. हैं।

विगत चार दशकों में मानव और पशुधन की आबादी में अत्यधिक वृद्धि होने से कृषि आधारित उत्पादों की माँग में भी अपेक्षित वृद्धि हुई है। इस बढ़ती हुई माँग की आपूर्ति को पूरा करने के लिए किसान सीमान्त भूमि पर भी गहन खेती करने लगे और भूमिगत जल का भी अत्यधिक दोहन किया जाने लगा। परिणामस्वरूप, प्राकृतिक

संसाधनों के अत्यधिक व अनवरत दोहन होने से भूमि और जल संसाधनों का अवनयन हुआ हैं, अपरिवर्तनीय खतरों का उद्भव हुआ हैं और स्थानीय सूक्ष्म–पर्यावरण को भी नुकसान पहुँचा हैं।

पश्चिमी राजस्थान में वैकल्पिक भूमि-उपयोग

पश्चिमी राजस्थान में कृषि भूमि उपयोग द्वारा अधिकाधिक खाद्यान्न उत्पादन और भूमि का वैकल्पिक उपयोग के मध्य प्रतिस्पर्धा एक खतरनाक दर से बढ़ रही है। जनसंख्या, आय और नगरीकरण में निरंतर वृद्धि से खाद्यान्न और चारे के लिए माँग में भी उत्तरोत्तर बढ़ोतरी हो रही है। खाद्यान्नों के अलावा, दालों, तिलहन और अन्य खाद्य पदार्थो की माँग में भी वृद्धि हो रही है। मौसम के प्रतिकूल प्रभाव और सूखे से निजात पाने या कम करने के लिए, शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों के किसानो द्वारा मिश्रित बुवाई करना आम बात है। पश्चिमी राजस्थान में फसल मिश्रणों में सामान्यतः बाजरा + मूँग + मोंठ + ग्वारफली + तिल (48%) के बाद तिल (24%) के बिना उक्त मिश्रण की पुनरावृति की जाती है। भाटी और सिंह (2002) के अनुसार, सभी किसान (छोटे, सीमान्त और मध्यम) बीजों का यही मिश्रण मोटे रूप से उपयोग करते है क्योंकि इससे दाल + तिलहन के मिश्रण या केवल ग्वारफली बोने से होने वाले जोखिम के व्यापक खतरों से बचाव और उच्च आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

पश्चिमी राजस्थान के कुल भौगोलिक क्षेत्र 208,751 वर्ग किमी में से कृषि के अन्तर्गत कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र 208,228 वर्ग किमी है। जिसमें से कुल खेती योग्य क्षेत्र 66.56% या 13.86 मिलियन हैक्टेयर है। इसमें 52.67% क्षेत्र में कुल जोती गयी भूमि और 13.89% क्षेत्र में पड़ती भूमि भी शामिल हैं। कुल फसल क्षेत्र 64.15% और 11.48% क्षेत्र दो या इससे अधिक बार बोये गये के अन्तर्गत आता है। उष्ण मरूस्थलीय परिस्थितियाँ होने के उपरान्त भी पश्चिमी राजस्थान में राज्य के कुल जोते गये क्षेत्र के 74.5% भू–भाग पर बाजरा, 45.5% में ग्वार, 99.75% में मोठ, 77.19% में मूँग, 44.41% पर तिल, 75.53% पर मूँगफली, 33.04% पर सरसों, 97.61% पर जीरा, 98.52% पर इसबगोल, और 61.98% पर मेथी बोई जाती है (कृषि सांख्यिकी, 2009–10)।

शुष्क क्षेत्र में वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली के अन्तर्गत ले–कृषि, शुष्क क्षेत्र बागवानी, वीथि सस्यन या कृषि–वानिकी, कृषि–बागवानी, कृषि–बागवानी–चारागाह, कृषि–वानिकी–चारागाह, वानिकी–चारागाह, बागवानी–चारागाह, बागवानी–वानिकी–चारागाह और औषधीय एवं सगंध पौधों की खेती महत्वपूर्ण हैं। ये सभी तंत्र फसल उत्पादन के विकल्प है और कम जाखिम वाले, ज्यादा टिकाऊ, और सीमांत भूमि पर अधिक लाभदायक है।

कृषि वानिकी प्रणालीयों में खेत में मिलने वाली प्रजातियों में वर्षा और मृदा में उपलब्ध नमी की मात्रा के कारण विभिन्नताएँ पाई जाती है (सारणी–1) (सिंह, 2014)।

सारणी 1. पश्चिमी राजस्थान के खेतों में वर्षा का विस्तार और वृक्षों की प्रजातियों का वितरण

वर्षा	प्रजातियाँ
> 200 मि.मी.	*अकेसिया टोरटीलिस, अ. सेनेगल, प्रोसोपिस सिनेरारिया, जिजिफस न्यूमुलेरिया, केलिगोनम पोलिगोनाइड्स, प्रो. जूलिफ्लोरा, टेकोमेला अनडुलेटा, सल्वाडोरा ओलोइड्स*
250–400 मि.मी.	*प्रो. सिनेरारिया, हार्डवीकिया बिनाटा, कोलोफोर्स्पमम मोपेन, डीक्रोस्टेसिस नूटन्स, एलान्थस एक्सेल्सा, अ. ल्यूकोफ्लोईया, ग्रेविया टेनक्ष, अ. निलोटिका, जि. मौरीशीआना*
400–600 मि.मी.	*अ. निलोटिका वर. कुप्रेसीफोर्मिस, एलबीजीआ अमारा, ए. लेब्बेक, बहुहीनिया रेसिमोसा, केसिया सीमिआ, एमब्लिका ओफिसिनिलिस, हार्डविकिया बिनाटा, एलान्थस एक्सेल्सा, मोरिन्गा ओलिइफेरा, होलोप्टेलिया इन्टेग्रिफोलिया, एनोगिसस रोडन्टिफोलिया*

मुथाना एवं अरोड़ा (1977) और शंकरनारायण (1987) के अनुसार *प्रोसोपिस सिनेरारिया, होलोप्टेलिया इन्टेग्रिफोलिया,* और *हार्डविकिया बिनाटा* ही कुछ वृक्षों की प्रजातियाँ है जो की शुष्क क्षेत्र के लिए उपयोगी हैं।

सारणी 2. विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के लिए भूमि उपयोग घटक

प्राकृतवास	वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	वृक्ष–झाड़ी प्रजाति सहचर्य	संबंधित फसल घास
रेत के टिब्बे, अन्तःटिब्बे	110–150	*कोलिगोनम–हेलोक्सीलोन*	बाजरा, ग्वारफली, सेवण
चट्टानी, बजरीयुक्त मिट्टी	150–200	*जिजिफस (बेर)–केपेरिस (केर)*	चना, मोठ, धामन
रेतीले मैदान	275–325	*प्रोसोपिस–टेकोमेला*	बाजरा, चना, धामन
जलोढ़ मिट्टी (वर्षा आधारित)	300–350	*प्रोसोपिस*	बाजरा, चना, मोठ
खारी /लवणीय मिट्टी	250–300	*साल्वाडोरा–प्रोसोपिस*	ग्वारफली, तिल, स्पोरोबोलस प्रजाति

विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में किसानों द्वारा वैकल्पिक भूमि उपयोग के फलस्वरूप, कृषि वानिकी के अंतर्गत किये गये विभिन्न प्रकार से पेड़–पोधों–झाड़ियों और फसलों के युग्मीकरण से मृदा में न केवल जैविक सक्रियता आती है बल्कि उत्पादकता में निरंतर वृद्धि होती है। वास्तव में कृषि वानिकी का मुख्य उद्देश्य भूमि पर कृषि फसल एवं वृक्ष प्रजातियों को विधिपूर्वक रोपित कर दोनों प्रकार की उपज लेकर आय बढ़ाना है। कृषि वानिकी के अन्तर्गत काष्ठीय बहुवर्षीय प्रजातियां एक ही भूमि पर कृषि फसलों के साथ उगाई जाती है। यह पद्धति आर्थिक रूप से लाभप्रद, सामाजिक रूप से स्वीकार्य तथा समस्त भूमि सुधारक प्रक्रियाओं का समेकित नाम है। वास्तव में, फसल और फसल प्रणाली के चुनाव करने के संबंध में किसान के निर्णय कई पहलूओं से प्रभावित होते है, जैसे, खाद्य, चारा, ईंधन की सुरक्षा, आय के साधन और रोजगार सृजन, मृदा एवं जल संरक्षण तथा परंपरागत ज्ञान।

शुष्क क्षेत्र के लिए निम्नांकित कुछ महत्वपूर्ण वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियाँ हैं :–

कृष्य भूमि के लिए वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली

- चारे और हरी खाद के लिए वीथि सस्यन जैसे, सुबबूल, इत्यादि।
- कृषि–उद्यानिकी तंत्र जैसे, इमली, बेर, कटहल, इत्यादि।
- उद्यानिकी–पशुपालन तंत्र जैसे अंजन, धामन और स्टाइलोसेन्थस हमाटा के साथ बेर, नीम, इजरायली बबूल, और अमरूद। इससे न केवल अतिरिक्त चारे की प्राप्ति होती हैं, वरन् एकीकृत भूमि उपयोग तंत्र मे उपस्थित पेड़ों के कारण मृदा की उपजाऊपन में बढ़ोतरी होती है और चारागाह क्षेत्रों की उत्पादकता बढ़ती हैं।
- वानिकी–उद्यानिकी तंत्र जैसे बेर, अनार, सीताफल, अंजीर, फालसा के साथ समान दूरी पर वृक्षों की प्रजातियाँ।
- कृषि–वानिकी तंत्र अर्थात् वार्षिक फसलें जैसे, बाजरा, मूंगफली, महुआ, अरहर, और अन्य दालों के साथ शीशम, सूबबूल, केसूरिना इत्यादि।
- कृषि–वानिकी–उद्यानिकी तंत्र जैसे, बागवानी फसलें + शीघ्र बढ़ने वाले वृक्ष जैसे नीम, सूबबूल, केसूरिना और शीशम + वार्षिक फसलें।
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले वृक्षों की प्रजातियों को अन्तःफसल दालों के साथ लगाना जैसे मूंग, मोंठ, ज्वार के साथ धामन और सेवण तथा सूबबूल, केर, शिरीष, खेजड़ी, इत्यादि।
- ले–कृषि, जैसे *स्टाइलोसेन्थस हमाटा।*

कृषि योग्य बंजर और सीमांत भूमि के लिए वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली

- पेड़ों की खेती, उदाहरणार्थ *अकेसिया अलबिडा,* केर, नीम, *अकेसिया,* बबूल, सुबबूल, रोहीड़ा, फोग, शीशम, इत्यादि।
- वानिकी–पशुपालन तंत्र जैसे, वृक्ष + चारे की प्रजातियाँ (सल्वाडोरा परसीका, एस. ओलिओडिस, डाइकेन्थम एन्यूलेटम, सेंक्ररस सिलीयरिस और सी. सेटीजेरस)

- इमारती काष्ठ एवं रेशे तंत्र जैसे, वृक्ष जो इमारती काष्ठ प्रदान करते हैं और झाड़ीयाँ जो रेशे प्रदान करती हैं।

यद्यपि, इन वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली की स्थिरता वृक्षों की प्रजातियों, मृदा प्रकार और कृषि–जलवायवीय स्थान विशेष के कारण परिवर्तनीय है तथा इसकी प्रभावशीलता का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

कृषि-बागवानी से कई लाभ हैं जैसे, 1. उत्पादकता में वृद्धि, 2. फलों द्वारा स्वास्थ्य वर्धन, 3. फलों की बिक्री से निरन्तर आय, 4. मृदा निरन्तर पोषित होकर उपजाऊ होने लगती हैं। इसके अन्तर्गत खेतों में फलदार वृक्ष जैसे अमरूद, आँवला (कलमी), तथा बेर, आदि को एक निश्चित दूरी पर रोपित करते हैं जो सामान्यतः 6 मी. से 10 मी. होती है। वृक्षों के मध्य में कृषि फसलों की उपज प्राप्त की जाती है। वृक्षों के बड़े हो जाने पर, फलों की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए, उनकी आवश्यकतानुसार कटाई भी की जाती हैं।

कृषि-बागवानी-वन पद्धतिः इसका मुख्य कारण बागवानी से होने वाला अत्यधिक लाभ तथा ग्रामीणों की वनों पर निर्भरता की कमी है। इस पद्धति के कई लाभ हैं, जैसेः 1. सीमित क्षेत्र से अधिक लाभ की प्राप्ति, 2. स्वास्थ्य वर्धन, 3. फलों से निरन्तर आर्थिक लाभ की प्राप्ति, 4. वनों पर निर्भरता कम होना, 5. चारा पत्ती की आवश्यकता की पूर्ति, 6. जलाने की लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति। इसके अन्तर्गत कृषि फसलों के साथ–साथ फलदार प्रजातियां जैसे पपीता, आँवला, नींबू, अमरूद के साथ काष्ठ प्रजातियां जैसे शीशम, नीम, सागौन आदि को मेड़ों पर रोपित करते हैं और तीनों प्रकार के उत्पाद कृषि, फल तथा काष्ठ एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाते हैं।

पुष्प-बागवानी-कृषि एवं वन पद्धतिः यह पद्धति उन्नतशील किसानों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इस पद्धति से उगने वाले पुष्पों से किसी भी अन्य पद्धति से आय अधिक होती है। इसकी देखभाल में आने वाले कम खर्च व अधिक लाभ के कारण जन मानस में लोकप्रिय हो रही है। इस पद्धति के लाभ इस प्रकार हैंः 1. निरन्तर अधिक धन की प्राप्ति, 2. शहद उत्पादन की सम्भावना, 3. कम स्थान में भी लाभकारी, 4. कम लागत व समय में अधिक लाभ। इसके अन्तर्गत कृषक फलदार एवं काष्ठ प्रजातियों के साथ पुष्प प्रजाति की खेती करते हैं। इस प्रकार की पद्धति मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों के निकट अधिक लाभदायक होती है।

वन-सब्जी पद्धतिः इस पद्धति में कृषि फसल के स्थान पर सब्जी की फसल जैसे बैंगन, मिर्च, गोभी, भिण्डी आदि को रोपित करते हैं। काष्ठ प्रजातियों में सागौन आदि प्रजातियां रोपित की जाती हैं। इस प्रकार की खेती शहरी क्षेत्र के निकट करने पर ताजे उत्पाद को विपणन हेतु शीघ्र पहुंचाया जा सकता है।

वन-चारागाह पद्धतिः यह पद्धति मुख्य रूप से अवनत भूमि के विकास और शुष्क क्षेत्र में चारे की समस्या के निदान हेतु कृषकों द्वारा अपनायी जा रही है। चराई के दबाव को कम करने के उद्देश्य से इस पद्धति में बहुउद्देशीय वृक्षों का रोपण किया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में मुख्य रूप से घास की *सेंक्रस, क्राइसोपोगान, डाइकेथियम* तथा दलहन की स्टाइलों व सिराटो प्रजाति उपयुक्त होती है।

मृदा की उर्वरता में सुधार

सदाबहार पेड़ों की काष्ठ प्रजातियाँ कार्बनिक पदार्थों और पोषण तत्त्वों की सघनता बढ़ाकर मृदा की उपजाऊपन को उन्नत करती है। पेड़ों और झाड़ियों के विकास–रूपों की व्यापक श्रेणी के पार, विविध जलवायु परिस्थितियों में रहने वाले प्रजातियों में पौषक संवर्धन होता है। गहराई और पार्श्व के क्षेत्रो से पौषक तत्त्वों को खींचकर, पेड़ पौषक–तत्त्वों के पम्प के रूप में काम कर सकते है। विभिन्न भूमि उपयोगों के अन्तर्गत खेजड़ी, रोहीड़ा और नीम उगे हुए खेतों में मृदा के रासायनिक गुणों में कार्बनिक पदार्थों, नमी, और उपलब्ध नाइट्रोजन फॉस्फोरस की उच्च मात्रा पाई गई है। पेड़ों की संख्या बढ़ने से इन तत्त्वों में भी वृद्वि हुई।

जुताई का मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर प्रभाव पड़ता है। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि जुताई से ज्यों ही भौतिक मानदंड प्रभावित होते है, मृदा के एकत्रीकरण, तापक्रम, जल अंतःस्यंदन और अवरोधन पर प्रभाव पड़ता है। परीवर्तनों का परिमाण मृदा के प्रकार और संगठन पर निर्भर करता है। रासायनिक गुणों में होने वाले परीवर्तन मुख्यतया मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर करता है। जुताई मृदा के वातन को प्रभावित करता है जिससे कार्बनिक पदार्थों के विघटन की दर भी प्रभावित होती हैं, परिणामस्वरूप मृदा समृद्ध होकर उपजाऊ होती है।

उपसंहार

पेड़, शुष्क क्षेत्र के विभिन्न भूमि उपयोगों में पौषक चक्र में वृद्धि, मृदा संरक्षण और मृदा एवं सूक्ष्मजीवी क्रिया में सुधार लाते है। यह कृषकों के लिए सुरक्षात्मक–उत्पादक पुर्नवास रणनीति रूप से एक मॉडल की तरह काम करता है। उपलब्ध कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति और उनके अपघटन द्वारा पौषक तत्त्वों की मृदा में उपलब्धता को सुनिश्चित करता है।

वर्षा आधारित खेती में, वैकल्पिक भूमि उपयोग द्वारा ह्रासित, सीमांत और अवसीमांत भूमि में उपयुक्त सुधार किया जा सकता है। यह न केवल गैर–मौसम वाले एक फसली शुष्क क्षेत्रों में अत्यावश्यक रोजगार के साधन प्रदान करने में सहायक है, वरन् बेमौसम की वर्षा से होने वाले खतरों मे भी कमी करके भूमि अवनयन को रोकती है तथा पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बहाल करती है। पश्चिमी राजस्थान में परंपरागत तरीके से खेजड़ी, केर, कुमट, देशी बबूल, रोहीड़ा, पीपल, जाल, और बोरडी प्रधानता में है और वहाँ बाजरा, दालें, तथा तिलहन की फसलें लगाई जाती है। वृक्षारोपण के साथ फसलों के समुचित संयुग्मीकरण करके और पशु पालन द्वारा पारिस्थितिकी की क्षति को रोका जा सकता हैं, उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। मृदा का सुधार होने से उपजाऊ होगी एवं वैकल्पिक भूमि उपयोग तथा फसल वैविध्यकरण अपनाने से किसान भी लाभान्वित हो पायेगें।

★★★

मृदा प्रबंधन द्वारा कीट नियंत्रण

निशा पटेल

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

जैविक खेती के समर्थकों का मानना है कि जैविक खेती के तरीकों से फसलों में कीट प्रकोप की संभावना काफी कम हो जाती है। इन तरीकों में मृदा को स्वस्थ रखना सबसे महत्वपूर्ण बात है। अध्ययनों से पता चला है कि पौधों में कीट और रोग प्रतिरोधकता मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और सबसे अहम जैविक गुणों से जुड़ी हुई है। कई शोधकर्ताओं को मिट्टी और पौधों के बीच विभिन्न प्रकार के संकेतों के प्रमाण मिले है। इन संकेतों में मृदा में स्थित कार्बनिक पदार्थ, जिसे प्रबंधन से बढ़ाया जा सकता है की मध्यस्थता भी पाई गई। स्वस्थ मिट्टी में लगने वाले पौधे कीटों द्वारा कम क्षतिग्रस्त होते हैं। मृदा प्रबंधन के कुछ तरीकों से पौधों का सुरक्षा तंत्र मज़बूत बनता है उनमें कीटों के प्रति अधिक प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है, वे कीड़ों के लिये कम आकर्षक बन जाते है जिससे उनमें कम नुकसान होता है। कई अन्य पद्धतियों से या उनकी वजह से उत्पन्न अनुकूल परिस्थितियों से भी कीटों की संख्या कम होती है और उनको खत्म करने वाले परभक्षी जीवों की संख्या बढ़ जाती है। एकल उपाय जैसे कीटनाशकों का उपयोग करने की अपेक्षा यदि पारिस्थितिक कीट प्रबंधन जिसमें कई युक्तियों का प्रयोग किया जाता है अपनाया जाता है, तो कीड़ों का नुकसान कम होता है क्योंकि इस तरह के प्रबंधन में कीड़ों में अडाप्टेशन यानी अनुकूलन होने की संभावना नहीं होती है। पारिस्थितिक कीट प्रबंधन के बुनियादी स्तम्भों में से एक है मृदा स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले तरीके। जैविक खेती में, मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए फसल चक्र, आवरण फसलों, फसल अवशेष, पशु अपशिष्ट आदि का प्रयोग किया जाता है। इस लेख में मृदा प्रबंधन के उन बिंदुओं पर चर्चा कि गई है जिससे फसलों में कीट समस्याओं को कम करने में मदद मिल सकती है जैसे मृदा और उसकी उर्वरता प्रबंधन, पलवार का उपयोग और खेत में स्वच्छता का ध्यान।

मृदा संरचना और उसके भौतिक व रासायनिक गुण

मिट्टी की भौतिक स्थिति, संघनन, जल धारण क्षमता और जल निकासी का स्तर, सब मिट्टी और पादप स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। मिट्टी के रासायनिक पहलू (पीएच, नमक सामग्री, पौषक तत्वों आदि की उपलब्धता) फसल स्वास्थ्य और कीट प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए, मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाने पर जोर होना चाहिए जिससे मिट्टी की संरचना सुधरे और उसमें मौजूद सूक्ष्म जीवों को और उन से पौधों को पौषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो सकें। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाने के लिए आवरण और हरी खाद फसलों को बदल–बदल कर लगाना (रोटेशन) किसान की प्राथमिक रणनीति होनी चाहिए। अन्य पूरक पौषक तत्व प्रदान करने के लिए पशुओं से उपलब्ध खाद और कम्पोस्ट का भी उपयोग किया जा सकता है।

स्वस्थ मृदा के गुण

एक स्वस्थ मिट्टी बिना या न्यूनतम बाहरी आदानों के और बिना कोई प्रतिकूल पारिस्थितिक प्रभाव के स्वस्थ फसलों का उत्पादन करती है। स्वस्थ मृदा में संतुलित, जैविक, भौतिक और रासायनिक गुण होते हैं। एक जैविक रूप से स्वस्थ मृदा में विभिन्न प्रकार के जीव जंतु रहते है, सूक्ष्म जीव जैसे बैक्टीरिया, कवक, अमीबा, नेमाटोड, बड़े जीव जैसे कीट लटे, चींटिया, भृंग, मकड़ियाँ केंचुए आदि। इनमें से अधिकांश पौधों की बढ़त के लिए सहायक होते हैं, इनमें से अधिकतर पौषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं और पौधों की वृद्धि के लिए सहायक रसायनों का उत्पादन करके, पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। एक स्वस्थ, जैविक रूप से विविध मृदा में लाभदायक जीवों की संख्या अधिक और हानिकारक जीवों कि संख्या न्यूनतम रहती है। पौध अवशेषों में समृद्ध और स्वस्थ मृदा में विविध जीवों की बड़ी संख्या को पोषण देने कि क्षमता होती है और इसमें प्रचुर मात्रा में जैविक गतिविधि चलती रहती है।

मृदा में रहने वाले जीव अनेक महत्वपूर्ण कार्य करते हैं जिनमें से प्रमुख है

- भूमि पर पड़े कूड़े कचरे को पुर्नचक्रित करके इसके पौषक तत्वों को पुनः मृदा में मिलाना।
- वायु मंडलीय नाइट्रोजन को जैविक रूपों में परिवर्तित और जैविक नाइट्रोजन को फिर से अकार्बनिक रूपों में परिवर्तित करना जिससे वह पौधों के लिए उपलब्ध हो सकें।
- विटामिन, हार्मोन, एंजाइमों और अन्य महत्वपूर्ण पदार्थों का निर्माण करना।
- मिट्टी की संरचना में फेरबदल।
- मिट्टी में पड़े जैव पदार्थ जैसे फसल अवशेषों, कचरे, बीज आदि को खाना या अपघटित करना।
- मिट्टी जनित पौध रोग जनकों और पौध परजीवी नेमाटोड का नाश करना।

जीव जीवस्य भोजनम, मृदा में रहने वाले विविध जीवों की एक दूसरे पर निर्भरता है। जब खेतों में कीड़ों की संख्या कम हो उस समय मिट्टी में रहने वाले कुछ जीव लाभकारी कीटभक्षी जीवों के वैकल्पिक भोजन के रूप में काम आते हैं जिससे खेतों में उनकी कुछ आबादी हमेशा बनी रहती है। लाभकारी जीवों की आबादी बढ़ाने के लिये फसल चक्र, आवरण फसलें, कवर फसलों, पशु अवंशिष्ट, खाद आदि का उपयोग किया जाना चाहिये जिससे लाभकारी जीवों को अतिरिक्त भोजन मिल सकें।

पौधों के नैसर्गिक संरक्षण तंत्र को मजबूत बनाना : जब पौधों में किसी प्रकार का तनाव नहीं होता है तो उनमें कीट प्रतिरोध करने की निहित क्षमता बेहतर व्यक्त होती है। पारिस्थितिक कीट प्रबंधन में कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की ''प्रतिरक्षा'' में वृद्धि करने वाली निवारक रणनीतियों पर जोर दिया जाता है। किसानों को उन तरीकों से सतर्क रहना होना चाहिए जो फसल की प्रतिरक्षा में बाधा डालती हो। स्वस्थ मृदा में विभिन्न प्रकार के जीवों की संख्या और विविधता अधिक होती है जो नुकसान पहुँचने वाले जीवों से प्रतिस्पर्धा करते है और अन्ततः मिट्टी जनित कीड़ों पर अंकुश लगाते हैं।

बहुत अधिक नाइट्रोजन के उपयोग से होने वाली समस्याएँ

हालाँकि स्वस्थ पौधें कीटों द्वारा किये जाने वाले नुकसान को झेलने में अधिक समर्थ होते हैं, परन्तु अधिक रासायनिक खाद का उपयोग फसलों में कीट समस्याओं को बढ़ा सकता है। अनुसंधानों से पता चला है कि पौधों में घुलनशील नाइट्रोजन का स्तर बढ़ने से कीटों के लिए उनका प्रतिरोध कम होता है जिसके परिणामस्वरूप कीटों का प्रकोप और फसल क्षति बढ़ जाती है। कई फसलों में जैसे कपास, टमाटर, मिर्च आदि में नाइट्रोजन खाद की अधिक मात्रा के कारण रस चूसने वाले कीटों और मकड़ियों की संख्या में वृद्धि पाई गई है।

मृदा खाद्य जाल

कम कार्बनिक पदार्थ और सूक्ष्म जीव विविधता वाली मिट्टी की तुलना में अच्छे स्वास्थ्य वाली मृदा जिसमें कार्बनिक पदार्थ एवं सूक्ष्म जीव विविधता अधिक हो, पौधों के उचित पोषण एवं विकास के लिए ज्यादा सहायक होती है। ऐसी मृदा में लगने वाले पौधे कीट क्षति को सहन करने में बेहतर सक्षम होते है। इसके अलावा ऐसी मिट्टी कीट परभक्षी, रोगजनक कवक और कीट परजीवी नेमाटोड सहित कीटों के कई प्राकृतिक दुश्मन के लिए भी अधिक उपयुक्त होती है।

जुताई

कई हानिकारक कीट जमीन में अण्डे, वयस्क या प्यूपा के रूप में पड़े रहते है और अनुकूल मौसम आने पर फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। अनुकूल जुताई करना फायदे मंद होता है क्योंकि जुताई द्वारा कीट के जीवन चक्र को बाधित किया जा सकता हैं। जुताई के दौरान कीट मिट्टी के ऊपर आ जाते है जिस की अनावृत हो कर वे धूप से नष्ट होते है या उनके परभक्षी जीवों जैसे पक्षियों, गिरगिट आदि द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। जुताई द्वारा फसलों के अवशेष भी मिट्टी मिल में जाते हैं और उनमें अत्यधिक गर्मी या सर्दी में शरण लेने वाले हानिकारक कीट

भी नष्ट हो जाते हैं। हालाँकि, अत्यधिक जुताई हानिकारक है क्योंकि इससे मिट्टी में स्थित कार्बनिक पदार्थ का अपघटन तेजी से होता है। अत्यधिक और असामयिक जुताई मिट्टी के कटाव को भी बढ़ाती हैं।

पलवार

वाष्पीकरण और मृदा क्षरण को कम करने के लिए जमीन पर फैलाई जाने वाली प्लास्टिक या जैव अवशेष की सुरक्षा परत को पलवार कहते हैं। जैविक और कृत्रिम सिंथेटिक दोनों प्रकार के मल्च, कीट समस्याओं को काफी हद तक कम कर सकते हैं। पौधों के शीघ्र जल्दी विकास के लिये अक्सर प्लास्टिक की परत का प्रयोग किया जाता है जिससे पौधें कीट का आक्रमण झेलने में सक्षम बनते हैं। रिफ्लेक्टिव या परावर्तन वाली मल्चस थ्रिप्स और एफिड्स जैसे कीटों के प्रति निरोधक का काम करती हैं और सब्जियों की फसलों में कीट संचारित वायरस रोगों को कम कर सकती हैं। अनुसंधान के द्वारा पता चला है की भूसे से जमीन को ढ़क कर सूक्ष्म वातावरण पैदा करके जमीन में स्थित परभक्षियों जैसे लेडी बर्ड बीटल, लेस विंग आदि की संख्या को बढ़ाया जा सकता है। जमीन को घास–पात से ढ़क देने से हानिकारक कीटों की पौधों का पता लगाने की क्षमता भी प्रभावित होती है। ऐसे परीक्षणों में बिना मल्च की अपेक्षा मल्च वाले प्लॉट में पौधों में पत्ते कीटों द्वारा कम खाये गये और पैदावार एक तिहाई अधिक पायी गई।

जैविक खेती में भी रोगों और कीट नियंत्रण के लिए प्लास्टिक या अन्य कृत्रिम मल्चस का उपयोग किया जा सकता है बशर्ते उन्हें फसल के बढ़ने या कटाई के बाद खेत से हटा लिया जाये।

स्वच्छता

खेतों में साफ–सफाई का ध्यान रखने से भी कीटों की समस्या को कम किया जा सकता है। इससे शुरूआत को रोकने में, कीटों की आवाजाही कम करने में और शीतकालीन/ग्रीष्मकालीन छिपने वाले या प्रजनन शीलों को हटाने या कम करने में जा सकता है :–

- खेतों में लगाये जाने वाले बीज या पौधों का निरीक्षण करके यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि पौधे यथा संभव रोग व कीट मुक्त हों ताकि खेत में रोग या कीट की शुरूआत ही ना हो सकें।
- फसल अवशेषों को या तो हटाया जाये या उनका भूमि में समावेश करके कुछ कीटों के शीतकालीन/ग्रीष्मकालीन छुपने के स्थान अथवा प्रजनन सिलों को खत्म किया जा सकता है।
- रोग व कीट प्रभावित पौधों को जल्द से जल्द नष्ट करके हटा देना चाहिए। उसे या तो भूमि में गाढ़ दिया जाना चाहिये या उसका कम्पोस्ट (खाद) बना देना चाहिये।
- खेतों के बाहर या मेड़ पर लगी हुई जंगली घास या प्राकृतिक वनस्पति कुछ कीटों के लिए वैकल्पिक भोजन का काम करते हैं। परन्तु कुछ पौधें कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को भी शरण देते हैं। इसलिये जंगली घास पौधें हटा ने से पहले किसानों को इनमें संभावित फायदे और हानि का आंकलन करना चाहिए।
- कई बार कीट जैसे सफेद मक्खी या रोग के कण खेत में काम करने वाले मजदूर लोगों के कपड़ों या उपकरणों पर चिपक कर दूसरे खेत में फैल सकता है। इसलिये एक खेत से दूसरे में जाने से पहले उपकरण और कपड़ों की सफाई का भी ध्यान रखना चाहिये।

★★★

मानवीय गतिविधियों द्वारा मृदा अपक्षय

आर.के. गोयल एवं मीना मांगलिया

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर

मृदा का मानव जीवन और उसके क्रिया कलापों से गहरा संबंध है। मृदा अत्यन्त आवश्यक तत्व है मनुष्य जीवन में दैनिक प्रयोग में आने वाले क्रिया कलाप जैसे खेंती, वन संरक्षण, औद्योगिकीकरण सभी मृदा से संबंधित है, मानव जीवन मृदा के बिना संभव नहीं है।

मनुष्य की जीविका तथा भोजन का मुख्य आधार मिट्टी ही है। सभी प्रकार की वनस्पतियों का विकास मिट्टी में होता है, शाकाहारी प्राणीयों को भोजन मृदा से ही मिलता है। कही न कही मांसाहारी भी मिट्टी से उत्पन्न शाकाहारी से जुड़े है। अतः हम कह सकते है कि मृदा मनुष्यों पक्षियों, पशुओं आदि का गहरा संबंध है उपजाऊ मिट्टी ही कृषि के लिये (अति उत्तम है) मूलाधार है। अनके प्रकार के खाद्य पदार्थ, खाद्य तेलों, पेय पदार्थो, दालों आदि का उपयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है।

खेती से संबंधित उद्योग में जूट उद्योग, आटा पीसने, धान कूटने, दाल बनाने, सूती व रेशमी वस्त्र बनाने जैसे कार्यो में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह सभी वस्तुएँ हमें मृदा से ही प्राप्त होती है। जहाँ–जहाँ पर उपजाऊ मिट्टी, नदियाँ पानी की प्रचुरता रहेगी वहाँ–वहाँ पर जनसंख्या का विकास होगा, रोजगार होंगे ओद्योगिकरण होगा। मिट्टी का संबंध मानव सभ्यता के विकास में बहुत महत्वपूर्ण है। विलवॉक्स ने लिखा है कि सभ्यता का इतिहास मिट्टी का इतिहास है और व्यक्ति की शिक्षा मिट्टी से आरम्भ होती है। मानव मिट्टी से उत्पन्न होता है तथा मिट्टी में ही मिल जाता है। अतः मानव सभ्यता का प्रारम्भ एवं अन्त मिट्टी है।

प्राचीन मानव सभ्यता का विकास जैसे सिन्धु घाटी मिस्र, हवोगहो घाटी, मेसोपोटामिया सभ्यताओं का विकास विविध नदियों के किनारे वाली उपजाऊ मिट्टी व जल प्रचुरता के कारण हुआ।

भूमि की गुणवता में कमी आने के दो कारण माने जा सकते है :–प्राकृतिक : प्राकृतिक कारण जैसे बाढ़, सूखा, भूस्खलन आदि।मानवीय : रासायनिक खाद, कीट नाशक का अति उपयोग, औद्योगिकरण का कचरे का अनियोचित ढ़ंग से निस्तारण, खनन, वृक्षों की अनियमित ढ़ंग से कटाई।

भूमि की गुणवत्ता बनाये रखने के लिये हमें कुछ उपाय सुनियोजित ढ़ंग से करने चाहिये जैसे :–

- रासायनिक खादों की जगह जैविक खाद का इस्तेमाल।
- रासायनिक कीट नाशक की जगह जैविक उत्पाद।
- चारागाह विकसित करना।
- वृक्षारोपण करना।
- खनन के उपरान्त गड्डों को पुनः भरना व वहाँ पेड़ पौधें लगाना।

मिट्टियों का कटाव व मृदा क्षरण की समस्याएँ अनादि काल से चली आ रही है। रासायनिक खादों व कीट नाशक उपयोग में लाने से कुछ समय के लिये तो फसल ली जा सकती है, परन्तु बाद में उर्वरकता में कमी आती है। अतः ज्यादा से ज्यादा जैविक खाद व उत्पाद उपयोग में लाने चाहिये इससे मृदा की उर्वरकता बनी रहती है व मनुष्यों को भी खाद्य सामग्री से नुकसान नहीं होता है। आजकल कैंसर जैसी बीमारी बहुत बढ़ रही है उसके पीछे मुख्य कारण रसायनिक खाद व पेस्टीसाइट का ज्यादा उपयोग है। जो मृदा के साथ–साथ मनुष्यों को भी नुकसान पहुँचाती है।

मृदा के प्रकार : मिट्टियाँ जब अपने पौषक जैवीय तत्व, भौतिकीय बनवाट व रसायनिक संरचना खो देती है तब मिट्टी का विघटन होता है। इसे मृदा क्षरण कहा जाता है। मृदा क्षरण मुख्य रूप से तीन प्रकार से होता है।

जलीय : नदियों में बाढ़ के आने से मृदा क्षरण बहुत होता है। पानी के प्रवाह की गति यदि तीव्र होती है तो उससे बहुत सी उपजाऊ मिट्टी बह जाती है व कटाव आ जाते है। यदि पानी का बहाव धीमी गति से होता है तो भी मृदा क्षरण होता है। कभी–कभी तेज बहाव से पानी दूर तक जाता है बहाव के साथ मिट्टी के पौषक तत्व एक स्थान से दूसरे स्थान जाते हैं।

वायु : मरूस्थल में हवा चलती है तो मिट्टी उड़ाकर उनके कणों को अपने साथ उड़ा ले जाती है। मरूस्थल व अर्द्ध–मरूस्थल में तो हवा व आँधी के वेग से मृदा क्षरण बहुत होता है, अतः मरूस्थल में ज्यादा से ज्यादा वृक्षारोपण कर मृदाक्षरण को रोका जा सकता है।

समुद्र : समुद्र के तट पर लहरों व ज्वार भाटा के कारण मृदाक्षरण होता है।

मृदा क्षरण के कारण

वर्षा की भिन्नता से मिट्टी में कटाव होता है कहीं अत्यधिक वर्षा होती है तो भी मृदा क्षरण होता है। शुष्क क्षेत्रों में पानी से दरारें व मिट्टी भुर–भुरी होकर बिखर जाती है। प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन से, सूर्य की प्रचण्ड गर्मी, वर्षा की भिन्नता के कारण वनस्पतियाँ अच्छी तरह से नही हो पाती है। इससे वनस्पति के नष्ट होने से तापमान का सीधा प्रभाव मिट्टी पर पड़ता है तो वहाँ की नमी नष्ट हो जाती है इससे शुष्कता बढ़ती है व मृदा क्षरण होता है। एक जगह पर लगातार खेती करने से मिट्टी के पौषक तत्व में कमी आती है अतः जैविक खादों का बराबर उपयोग करं व उर्वरकता का ध्यान रखें तो मृदा में पौषकता बनी रहेगी अन्यथा खेती में उत्पादन में कमी आयेगी। पशुओं के चरण से पशु चरते समय मिट्टी में पौधों को नुकसान पहुँचता है। अतः चराई के लिये चारागाह क्षेत्र विकसित करने चाहिये। खेती करते है तो समय–समय बुवाई–जुताई वैज्ञानिक तरिके से की जाय सिंचाई के वैज्ञानिक तरीके अपनाये तो मिट्टी क्षरण कम होगा।

मिट्टियों के कटाव एवं क्षरण से हानियाँ

- भूमि की उर्वरकता में कमी होती है। जिसका सीधा प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है
- मृदा क्षरण के कारण वनस्पतियाँ नही पनपती तथा वनस्पति की कमी से ईंधन व लकड़ी की कमी होती है एवं पर्यावरण को भी नुकसान होता है।
- भूमि कटाव एवं उड़ी हुई मिट्टी का अन्यत्र जमाव से यातायात में बाधा उत्पन्न होती है।

मृदा संरक्षण : जल से मृदा अपरदन रोकने के लिये समोच्चय रेखीय मेड़बंदी सबसे उपयुक्त है इसमें मेड़बंदी वनस्पतियों द्वारा की जाती है जैसे घास एवं उपयुक्त प्रकार के वृक्षों का रोपण आदि। मेड़बंदी बनाते समय भूमि के ढ़ाल व संरचना का ध्यान रखा जाये। वानस्पतिक मेड़बंदी जल से होने वाली मृदा क्षरण को रोकने में बहुत सहायक है व वनस्पति के कारण जल भी रिस–रिस कर भूमि में जाता है इससे मृदा में नमी बनी रहती है व उर्वरकता भी रहती है।

★★★

स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती: सफलता की एक कहानी

धीरज सिंह, एम.के. चौधरी, एम.एल. मीणा एवं पी.के. तोमर

कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, पाली

वर्तमान में सघन कृषि प्रणाली तथा असंतुलित रासायनिक उर्वरकों एवं पौध संरक्षण रसायनों के निरंतर एवं अंधाधुंध प्रयोग के कारण जहाँ मृदा उर्वरता का दिनों दिन ह्यास हो रहा है वही उत्पादन की गुणवत्ता भी घटती जा रही है। पौधों की वृद्धि एवं उत्पादकता के लिए सामान्यतः 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता पड़ती है जिनकी पूर्ति पहले गोबर की खाद, खेत पडत रख कर की जाती थी लेकिन सघन खेती के दौर में जहाँ एक खेत से ज्यादा से ज्यादा फसल लेने की कोशिश की जा रही है क्योंकि एक और जोत का आकार दिन ब दिन छोटा होता जा रहा है वहीं खेती की उर्वरता को टिकाऊ बनाये रखने में सक्षम देशी खाद की पूर्ति न के बराबर हो रही है अर्थात लगातार उत्पादन प्राप्त करने के लिए मृदा की सेहत का ध्यान न रखते हुए प्रतिवर्ष पौधों के लिए आवश्यक पौषक तत्वों की पूर्ति के लिए सिर्फ और सिर्फ रासायनिक उर्वरकों से की जा रही है जिसका परिणाम यह देखने में आ रहा है कि मृदा उर्वरता में गिरावट के साथ–साथ मृदा के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुणों में निरंतर ह्यास के साथ ही सभी प्रकार की फसलों का उत्पादन स्थिर हो गया है या घटता जा रहा है।

अतः अपने पुरखों की खेती की पुरानी परम्परा को पुनः मूर्त रूप देने की ठानी जागरूक प्रगतिशील जुझारू कृषक दसवीं पास चैन सिंह बलाडा ने क्योंकि वे उन पुराने दिनों को याद कर जाने कौन से अतीत में खो जाते हैं फिर थोडा संभल कर बताते हैं कि पहले जहां धान (अनाज) की रोटी बनाते थे तो आटा गुंथने/ओसने में पानी ज्यादा लगता था जिसमें रोटी लम्बे समय तक नरम तथा बेहद स्वाद युक्त लगती थी जबकि अब रोटी तवे से उतरते–उतरते ही ठण्डी सूखने जैसी लगने लग जाती है। पहले जहां दो रोटी खाने से ही पूर्ण तृप्ती मिल जाती थी वहीं आज 4–5 रोटियां खाने पर भी वो तृप्ती कहां। पहले जहां रोटी पर घी लगाकर रखने पर रोटी शाम तक नरम रहती थी वहीं आज घी लगाने के बाद भी सूखी ही लगती है।

अतः इन परिस्थितियों को देखकर चैन सिंह ने सोचा कि क्यों न पहले जैसा अन्न उपजाया जाए जिसमें खुद के साथ ही गांव के दूसरे जागरूक लोगों को जो गुणवत्तायुक्त अनाज के जानकार हैं, उनको भी देकर जहां ग्रामवासियों के स्वास्थ्य को संबल मिलेगा वहीं मुझे अतिरिक्त आय भी हो सकती है। यहीं सोच कर कृषि विज्ञान केंद्र, काजरी, पाली के संपर्क में आकर फार्म को ऑर्गेनिक फार्म में बदलने की नींव रखी।

मैंने लोगो से सुना था कि उवर्रक एवं रसायनों से मानव शरीर में बहुत बीमारियां फैलती हैं और सभी बीमारियों की एक ही जड़ यही उर्वरक है तो मेरे मन में एकदम से आया कि उर्वरक का सस्ता विकल्प अपने घर पर पशुओं से होने वाला गोबर का खाद है जो सस्ता भी है और आसानी से उपलब्ध भी है। घर के पशुओं से थोड़ी मात्रा में मिलने वाली खाद की मात्रा को कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट से आसानी से अधिक मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। यह सोच कर ही मैंने जैविक खेती की तरफ कदम बढ़ाया है। पाली जिले की जैतारण पंचायत समिति के छोटे से गांव बलाड़ा के चैन सिंह ने बताया कि उस समय घर की आर्थिक स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं थी। दसवी पढ़ने के बाद प्राईवेट कम्पनी में नौकरी करने चला गया। 4–5 साल नौकरी करने के बाद लगा कि इतना तो गांव में उपलब्ध अपनी जमीन से आसानी से कमाया जा सकता है क्योंकि उस समय वर्षा अधिक होती थी, पशु बहुत थे, खाद पर्याप्त होता था, बैलों से खेती अर्थात् जुताई व पानी आदि सम्पूर्ण कार्य, कृषि आदान काफी सस्ते थे। घरेलु खर्चा गांव स्तर पर कम ही होता था। अतः यह सोच कर गांव में आकर खेती करने लगा।

इस पहल से चैन सिंह को गुणवत्तायक्त उत्पादन अर्थात जैविक उत्पादन से बाजार में अच्छा मुनाफा मिलने के साथ ही मृदा का स्वास्थ्य सुधारने का अवसर भी मिल गया। उसने मृदा उर्वरता को बनाये रखने के

साथ ही मृदा कटान को नियंत्रित कर तथा समय पर आवश्यक भुपरिष्करण क्रियाएँ अपनाकर अपनी खेती में आधारभूत परिवर्तन कर दिया। चैन सिंह ने भूमि में उचित वायु संचार, अवांछित पौधे अर्थात उचित खरपतवार नियंत्रण, फसल चक्र, जीवाणु खाद, दलहन फसलों का फसल चक्र में समावेश, उचित सिंचाई जल प्रबंध, भूमि जनित कीट एवं रोगों का उचित समय पर नियंत्रण, देशी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट एवं हरी खाद का समुचित उपयोग के साथ ही जैविक तरल खाद के साथ ही पौध व्याधि एवं कीट नियंत्रण के लिए जैविक स्तर पर नियंत्रण कर मृदा उर्वरता के साथ–साथ पर्यावरण के संतुलन एवं उत्पादन के स्तर को भी व्यापक रुप से बढाया है।

3–4 साल पहले छोटे स्तर पर खरीफ में तिल, बाजरा व रबी में गेहूँ सरसों का जैविक उत्पादन करना शुरू किया। इसके लिये खेत पर पहले, कम्पोस्ट नेडप कम्पोस्ट, सुपर कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट खाद बनाना शुरू किया जिससे जमीन को ताकत मिले। वर्मी कम्पोस्ट उत्पाद के लिए चैन सिंह छायादर जगह में सबसे पहले 3 फीट चौड़ी एवं 8 फीट लम्बी क्यारियों में पत्तियों की 5–6 इंच मोती परत बिछा देता है और इस पर 4–5 दिन तक ठंडा किया हुआ गोबर डाल देता है। इस परत पर सुबह और शाम पानी डालकर नरम कर लेता है। 5 दिन उपरांत किसान इसमें आधा किलो के लगभग केचुएँ समान रुप से छोड़ देता है। क्यारी को ढकने के लिए ऊपर से घास–फूस, सुखी पत्तियां, खेत से निकला हुआ खरपतवार आदि बिछा देता है। अब इनको बोरी या टाट से अच्छी तरह ढक देता है तथा समय समय पर पानी छिड़क कर ठंडा एवं गीला रखता है। लगभग डेढ़ माह के अंदर यह मिश्रण केंचुओं द्ववारा वर्मीकम्पोस्ट में बदल जाता है, केंचुए अकार्बनिक पदार्थों को खाते रहते हैं तथा अपनी कास्टिंग ढेर के ऊपर छोड़ते जाते हैं। ऊपर की परतों से प्राप्त वर्मीकम्पोस्ट को एक जगह एकत्रित कर लिया जाता है तथा आवश्यकतानुसार काम में लिया जाता है। अब रहा कीट एवं बीमारी नियंत्रण के लिए गौ–मुत्र आधारित दवाई बनाई जिसमें 10 लीटर गौ मुत्र, 1/2 किलो तांबा तार, 1 किलो नीम की पत्ती, 1/2 किलो आक की पत्ती, 1/4 किलो तम्बाकु रंज, तथा 1/2 किलो लहसुन आदि को मिलाकर तैयार किया जाता है और जरूरत पड़ने पर फसलों पर पानी मिलाकर छिड़काव किया जाता है।

आज चैन सिंह तथा उसके परिवार को आवश्यकतानुसार प्राकृतिक, शुद्ध व स्वादयुक्त उत्पादन आराम से मिल जाते हैं। इस किसान के खेतों में उत्पादित हर अनाज या चारा शुद्ध व सात्विक होता है।

समय (वर्ष)	फसल उत्पादन क्विंटल प्रति हैक्टेयर				लगभग कुल आय (रूपये)	
	बाजरा	तिल	गेहूँ	सरसों	खरीफ	रबी
35–40	17.5	6.2	37.5	17.5	10000–16000	30000–40000
10–15	12.5	3.7	25	12.5	50000–60000	90000–110000
अब	26.2	7.5	50.4	24.3	100000–140000	200000–220000

बाजरे का उत्पादन 35–40 साल पूर्व जब खेती शुरू की तब 17.5 क्विंटल, 10–15 साल पूर्व 12.5 क्विंटल तथा अब 26.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो रहा है। तिल का शुरूआती उपज 6.2 क्विंटल, बीच में 3.7 क्विंटल तथा आज 7.5 क्विंटल, गेहूँ की शुरूआती उपज 37.5 क्विंटल, बीच में 25.0 क्विंटल तथा अब 50.4 क्विंटल जबकि सरसों की उपज 17.5 क्विंटल बीच में 12.5 क्विंटल तथा आज 24.3 क्विंटल मण प्रति हेक्टेयर हो रही है।

जैसा कि उन्होंने बताया वर्ष भर में जब खेती शुरू की तब 40,000–60,000 रुपये मिल जाते थे तब आदान सस्ता, खाद बीज घर का, मजदूर सस्ते, खेती करने व पानी निकालने में बैलों का प्रयोग और बैलों के चरने के लिये जमीन जंगल पर्याप्त, कोई खर्चा नहीं आता था। आज से 10–15 वर्ष पूर्व 1,10,000 से 1,60,000 रुपये की आय हो जाती थी पर खर्चा बढा, आदान महंगे, श्रम महंगा, उत्पादन स्थिर या दिनों दिन कम व गुणवत्ताहीन जबकि आज आय हो जाती है 3,00,000–3,50,000 रुपये प्रति वर्ष। क्योंकि ये सम्भव हुआ सब कुछ नियोजित करने से, पशु पाले, पशुओं से जो खाद मिला उसमें वर्मी कम्पोस्ट बनाना, ऐसा खाद खेत में देने से पानी की बचत, मजदूरों की बचत, साल भर खेत पर कुछ न कुछ कार्य चलने से श्रम का भरपुर उपयोग, साल भर हरा चारा पशुओं को मिलता रहे जिसमें खाद भी साल भर भूमि को मिलता रहे। यदि भूमि ताकतवर होगी तो कम मेहनत, कम श्रम के भी अधिक उत्पादन देगी।

श्री चैन सिंह का कहना है कि जैविक खेती अपनाने से मुझे व आसपास के किसानों को बहुत फायदा हुआ है। जैविक उत्पादन जहां मैं अपने लिये काम में लेता हूँ वहीं मेरे रिश्तेदार मुझसे ये उत्पाद अपने खाने के लिये ले जाते हैं। आज जब दूसरे गांव के लोग जैव उत्पाद को यहां से ले जाते देखते है तो गांव के जागरूक व बुजुर्ग भी यह कहने लगे कि ''भले ही थोड़ा खाये पर खायेंगे चैन सिंह के फार्म का जैविक अन्न ही।''

जैव उत्पाद का मूल्य गांव स्तर पर विभिन्न फसलों के लिये 100–200 रुपये प्रति क्विंटल अधिक मिलता है जबकि गेंहू में 400–450 रुपये प्रति क्विंटल तक अधिक आराम से मिल जाते हैं क्योंकि गांव वाले आज भी पुराने गेंहू के स्वाद को पहचानते हैं। इसी प्रकार 25–30 प्रतिशत उत्पाद गांव के आसपास वाले जागरूक लोग ले जाते हैं जबकि 20–30 प्रतिशत गांव में तथा 30–40 प्रतिशत स्वयं तथा बचा हुआ उत्पाद कृषकों को बीज के रूप में देकर भी अतिरिक्त आय अर्जित करते हैं। वर्मी कम्पोस्ट खाद जहां ये खुद काम में लेते वहीं आसपास वालो को प्रोत्साहन के लिये न्यूनतम मूल्य पर दे देते हैं जिससे उन लोगों का भी जैविक खेती की तरफ रुझान बढ़ रहा है।

★★★

काजरी समाचार

- **पश्चिमी राजस्थान के लिए खरीफ कृषि योजना पर प्रशिक्षण :** काजरी में *पश्चिमी राजस्थान के लिए खरीफ कृषि योजना पर तीन दिवसीय प्रशिक्षण* कार्यक्रम 9 से 11 मई, 2012 तक ''एम. पॉवर'' पश्चिमी राजस्थान में गरीबी घटाओं परियोजना के तहत् मास्टर ट्रेनर्स एवं परियोजना अधिकारियों के लिए आयोजित किया गया। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में बाजरा, ज्वार, तिल, मूंग, मोठ की उन्नत खेती तथा सतत् फसल पद्धति द्वारा उत्पादन बढ़ाना, खरीफ फसल में जल प्रबंधन, खरीफ फसलों में समन्वित कीट एवं व्याधि प्रबंधन के बारे में जानकारी दी गई। इसमें 6 जिलों से 91 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

- **नागौर में क्षेत्र दिवस :** राजस्थान के नागौर जिले के हर्सोलाव गाँव की संत भूरिया बाबा गौशाला में 30 सितम्बर, 2012 को राष्ट्रीय वर्षा आधारित क्षेत्र प्राधिकरण द्वारा वित्त पोषित आजीविका सुधार के लिए पशुधन केन्द्रित परियोजना के तहत *क्षेत्र दिवस* का आयोजन किया गया। डॉ. वी.एन. शारदा, सदस्य कृषि वैज्ञानिक चयन मण्डल, नई दिल्ली इस समारोह के मुख्य अतिथि थे।

- **राष्ट्रीय सघन विचार मंथन कार्यशाला :** यूनेस्को पोषित सूमोमाड परियोजना के तहत थार रेगिस्तान में सतत् आजीविका के लिए अवह्रासित चारागाह भूमि के पुनरूद्धार पर एक कार्यशाला का आयोजन 5 सितम्बर, 2012 को क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, जैसलमेर में किया गया।

- **लेह लद्दाख (जम्मू काश्मीर) में शीत शुष्क क्षेत्र अनुसंधान हेतु काजरी के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र का शिलान्यास :** श्री रिगजिन स्पालदर मुख्य अधिशासी सलाहकार लद्दाख स्वायत पर्वतीय विकास परिषद् एवं डॉ. एस. अयप्पन महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् एवं सचिव डेयर तथा ए. के. सिंह उप–महानिदेशक एन.आर.एम., भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने 18 अगस्त, 2012 को लेह लद्दाख (जम्मू काश्मीर) में शीत शुष्क क्षेत्र अनुसंधान हेतु *काजरी के क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र का शिलान्यास* किया।

- **काजरी में किसान मेला एवं कृषि नवचार दिवस :** 12 सितम्बर, 2012 को काजरी में *किसान मेला एवं कृषि नवचार दिवस* आयोजित किया गया। इसमें विभिन्न जिलों से 650 कृषक महिलाओं सहित 2000 से अधिक किसानों ने भाग लिया। मुख्य अतिथि डॉ. ए.के. धामा, कुलपति एस.के.आर.ए.यू., बीकानेर एवं विशिष्ट अतिथि श्रीमती दुर्गा देवी बलाई, जिला प्रमुख, जोधपुर ने मेले का उद्घाटन किया एवं किसानों को उच्च कृषि आय के लिए बागवानी फसलों को अपनाने पर बल दिया। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा इसमें उन्नत तकनीक प्रदर्शन हेतु 45 स्टाले लगाई गई।

- **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, क्षेत्रीय समिति की 22वीं बैठक :** आई.सी.ए.आर. क्षेत्र षष्टम् के राज्य राजस्थान, गुजरात, दादरा और नगर हवेली व दीप की *क्षेत्रीय समिति की 22वीं बैठक* काजरी में 16–17 नवम्बर, 2012 को आयोजित की गई। डॉ.एस. अयप्पन, महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने बैठक की अध्यक्षता की और फसल एवं पशुधन की उत्तम नस्लों के संरक्षण, जलवायु प्रतिरोधक क्षमता वाली किस्मों का विकास आदि पर बल दिया। उप महानिदेशक, कुलपति, निदेशकों, वैज्ञानिकों, कृषि अधिकारियों सहित 150 से अधिक वरिष्ठ अधिकारियों ने इस बैठक में भाग लिया।

- **जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के तहत शुष्क क्षेत्र में तनाव प्रबंधन पर संगोष्ठी :** भारतीय कृषि अनुसंधान संघ के स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष में 1–2 दिसम्बर, 2012 को अजराई व काजरी के संयुक्त तत्वावधान में *जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के तहत शुष्क क्षेत्र में तनाव प्रबंधन पर* संगोष्ठी आयोजित की गई। इसमें भारत से 200 व सीरिया से 2 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके मुख्य अतिथि राष्ट्रीय विधि विश्व विद्यालय, जोधपुर के कुलपति न्यायपूर्ति श्रीमान् एन.एन. माथुर तथा सम्मानीय अतिथि इक्रीसेट के क्षेत्रीय संयोजक डॉ. पीटर क्राफर्ड रहें।

- **क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र भुज में कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापना दिवस और किसान मेला आयोजित :** काजरी, आत्मा और किसान प्रशिक्षण केन्द्र भुज के सहयोग से 17 जनवरी, 2013 को तीन दिवसीय *किसान मेला* आयोजित किया गया। निदेशक, राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर, जिलाधीश कच्छ, निदेशक प्रसार एवं शिक्षा, एस.डी., कृषि विश्व विद्यालय दांतीवाड़ा, कुलपतिएस.के.वी. कच्छ विश्वविधालय, भुज के कृषकों आदि ने इस मेले में भाग लिया। करीब 1000 किसानों ने प्रतिदिन मेले में भाग लिया। 30 प्रगतिशील किसानों को सम्मानित किया गया। उर्वरक, बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति, ट्रेक्टर, कृषि यंन्त्र और अन्य कृषि से संबंधित लगभग 50 दुकाने लगाई गई। डॉ. के.डी. कोकटे उपमहानिदेशक, (कृषि प्रसार) भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने कृषि विज्ञान केन्द्र, भुज के भवन की नींव 18 जनवरी, 2013 को रखी।

- **राष्ट्रीय विज्ञान दिवस :** 28 फरवरी, 2013 को *प्रजनन गत सुधरी फसलों और खाद्य सुरक्षा* की थीम काजरी में राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर मनाया गया। डॉ. एम.एम. रॉय ने इसकी अध्यक्षता की, प्रो. एन. एस. शेखावत, डॉ. पी.एस. देशमुख तथा डॉ. डी. कुमार ने कृषि उत्पादकता व कुपोषण, जलवायु परिवर्तन तथा ग्वार सुधार पर प्रकाश डाला।

- **राजस्थान के राज्यपाल का काजरी भ्रमण :** माननीय श्रीमती मारग्रेट आल्वा राज्यपाल राजस्थान सरकार ने 29 जनवरी, 2013 को काजरी का भ्रमण किया तथा काजरी की विभिन्न तकनीकों एवं क्षेत्र को आपने गहरी रूचि से देखा माननीय राज्यपाल ने काजरी की विभिन्न तकनीकों की सराहना की।

राजस्थान राज्यपाल द्वारा काजरी तकनीकों का निरीक्षण

- **थार मरूस्थल में संसाधनों के उचित प्रबंधन पर जैसलमेर क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र में राष्ट्रीय कार्यशाला :** भूमि से अधिकाधिक उत्पादन लेने पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला 19 जुलाई, 2013 को क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, काजरी, जैसलमेर में आयोजित की गई। महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर के कुलपति डॉ. ओ.पी. गिल ने इस कार्यशाला का उद्घाटन किया।

- **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् 'कृषि शिक्षा दिवस' :** 17 अगस्त, 2013 को *कृषि शिक्षा दिवस* का आयोजन कृषि शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने हेतु काजरी में किया गया। इसमें महिला पी. जी. विश्वविद्यालय से 70 बी.एस.सी. के तथा चौपासनी विद्यालय से 30 कृषि शिक्षा के छात्रों ने भाग लिया। छात्रों को संस्थान भ्रमण तथा विभिन्न तकनीकों, प्रयोगशालाओं उपकरणों आदि से अवगत करवाया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जोन परियोजना के निदेशक डॉ. युद्धवीर सिंह थे। इस अवसर पर विद्यार्थियों हेतु एक क्विज का आयोजन किया गया।

- **ब्रेन स्टार्मिंग सेशन :** इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना क्षेत्र में 'फसल–जल की उत्पादकता सुधार' पर क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर में 19 अगस्त, 2013 को ब्रेन स्टार्मिंग सेशन आयोजित किया गया। इसमें भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के विभिन्न संस्थाओं, स्वामी केशवानन्द कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर एवं गैर सरकारी संगठनों ने भाग लिया। इस अवसर पर निदेशक काजरी ने क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर की नई फार्म भवन का उद्घाटन किया।

- **कृषि मेला व कृषि नवाचार दिवस :** 19 सितम्बर, 2013 को श्री राजेन्द्र सोलंकी अध्यक्ष जोधपुर विकास प्राधिकरण ने मेले कृषि का उद्घाटन किया। इसमें विभिन्न जिलों से 2000 कृषकों ने भाग लिया। इसमें लगभग 35 कृषि से संबंधित जानकारी देने वाले स्आल्स लगाई गई।

काजरी कृषि मेला व कृषि नवाचार दिवस

- **काजरी स्थापना दिवस :** 1 अक्टूबर, 2013 को काजरी का 55वाँ स्थापना दिवस मनाया गया इसके मुख्य अतिथि डॉ. पंजाबसिंह पूर्व महानिदेशक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् थे। इस अवसर पर विभिन्नकर्मचारियों को एवार्ड दिये गये। डॉ. एल.एन. हर्ष जोधपुर कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति सम्मानीय अतिथि थे डॉ. एम.एम. रॉय, निदेशक काजरी ने सभी का स्वागत किया इस अवसर पर 7 प्रकाशन का विमोचन किया गया।

भारतीय मृदा संघ की 78वीं बैठक और राष्ट्रीय कार्यशाला

- **भारतीय मृदा संघ की 78वीं बैठक और राष्ट्रीय कार्यशाला :** 23–26 अक्टूम्बर, 2013 को काजरी में भारतीय मृदा संघ के 78वीं बैठक व कार्यशाला आयोजित की गई इसमें 500 प्रतिभागियों ने भाग लिया। पद्मभूषण डॉ. आर.बी. सिंह, अध्यक्ष नास ने इस संगोष्ठी का उद्घाटन किया।

★★★

शांति-क्रांति-समृद्धि-वृद्धि-
श्री सिद्धि सभी कुछ है उनसे,
उनसे नजर चुराओगे तो
किसका मान बढ़ाओगे?

सहगल-रफी-किशोर-मुकेश
और मन्ना दा के दीवानों!
बेटी नहीं बचाओगे तो
लता कहां से लाओगे?

अनुसंधान के बढ़ते चरण.....

संकर बेर छांटने की मशीन

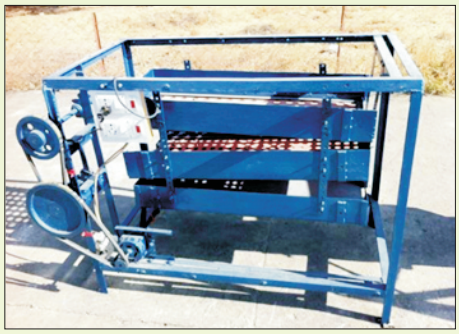

मिश्रित विद्युतमय प्रकाश वोल्टीय चलित बेर श्रेणीकरण मशीन (कार्य क्षमता 500 किलोग्राम प्रति घंटा) का विकास किया गया है। इस मशीन से बेरों को तीन आकारों (> 35 मिमी., 25–35 मिमी. ओर < 25 मिमी.) में श्रेणीकरण किया जा सकता है तथा अलग–अलग रबर युक्त जालियों के द्वारा क्षति के बिना संग्रहण करने का प्रावधान भी है। इस मशीन में विशेष रूप से डिजायन की हुई दोलायमान जालियाँ (0.48 वर्ग मी.) लगी हैं और मशीन का संचालन 200 वॉट अतुल्यकालिक एकल चरण 220 वोल्ट, 50 हर्ट्ज ए.सी. मोटर द्वारा किया जाता है।

बरनिया (डूंगरपुर) जलग्रहण क्षेत्र का समन्वित विकास

जनजातिय उप परियोजना के तहत डूंगरपुर जिले के आदिवासी बहुल जनसंख्या वाले में एक जलग्रहण क्षेत्र बरनिया को विकास के लिए चयनित किया गया। जलग्रहण क्षेत्र के चयन के लिए दूर संवेदी उपग्रह से प्राप्त जानकारी व भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र में अंकित जानकारी का, भौगोलिक सूचना प्रणाली तकनीक द्वारा उपयोग किया गया। जलग्रहण क्षेत्र की समस्याओं और क्षमता का आकलन करने के लिए विस्तृत सर्वेक्षण भी किया गया। जलग्रहण क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 620 हेक्टेयर है जिसमें कृषि योग्य भूमि 145 हैक्टेयर (23.4%) व बंजर भूमि व तालाब क्षेत्र के अंतर्गत 289 (46.6%) हैक्टेयर क्षेत्रफल है। जलग्रहण क्षेत्र की कुल आबादी 1015 और घरों की संख्या 175 है।

सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि पानी की कमी एवं फसलों और पशुओं की कम उत्पादकता, क्षेत्र की प्रमुख समस्याएं है। गाँव में पानी की उपलब्धता में सुधार के लिए मौजूदा नाडी की क्षमता खुदाई के द्वारा 4000 घन मीटर से बढ़ाकर 12500 घन मीटर कर दी गई है। खरीफ फसलों की उत्पादकता में सुधार के लिए चावल की उन्नत किस्म पूसा–सुगंधा–5 का 263 कि.ग्रा. बीज व उड़द की उन्नत किस्म पी.यू.–31 का 250 किलोग्राम बीज किसानों को वितरित किए गए। उन्नत किस्म के बीजों के अलावा 18 क्विंटल यूरिया, 12 क्विंटल डी.ए.पी. एवं 7.5 क्विंटल एन.पी.एस. खाद प्रति किसान क्रमशः 30, 20 और 15 कि.ग्रा. की दर से बाँटा गया। बागवानी विकास के तहत अनार (भागवा) के 450 और नींबू (कागजी) के 350 पौधे वितरित किए गए। उन्नत किस्म के बीजों के द्वारा चावल में 18 से 36 क्विंटल प्रति हैक्टेयर व उड़द में 2.4 से 3.6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से उपज में वृद्धि देखी गई। रबी फसलों की उत्पादकता में सुधार के लिए गेहूँ की उन्नत किस्म (राज–4037) के 40 क्विंटल बीज और चने की उन्नत किस्म (प्रताप चना–1) के 9.9 क्विंटल बीज 100 किसानों को वितरित किए गए। गाँव में ऊर्जा प्रबंधन के लिए प्रत्येक घर में एक सौर लालटेन प्रदान की गयी। मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए जलग्रहण क्षेत्र के किसानों को जिप्सम वितरित किया गया तथा पशुधन सुधार के लिए उन्नत नस्ल के बकरे व मेढ़े चयनित किसानों को दिये गए। मानव संसाधन विकास के लिए प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम भी किसानों के लिए आयोजित किए गए।

★★★

राजभाषा गतिविधियाँ

श्री आर.के. जैन, सम्भागीय आयुक्त, जोधपुर की उपस्थिति में आयोजित हिन्दी सप्ताह उद्घाटन समारोह

"हमारी बेटी - हमारी शान" राजभाषा संगोष्ठी

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)

जोधपुर - 342 003, राजस्थान, भारत

CENTRAL ARID ZONE RESEARCH INSTITUTE

(Indian Council of Agricultural Research)

JODHPUR - 342 003, RAJASTHAN, INDIA

http://www.cazri.res.in

भाकृअनुप
ICAR